सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का ५१ वाँ रत्न

उत्तराध्ययन सूत्र

(अन्वयार्थ युक्त)

भाग-२

(अध्ययन १५ से २८ तक)

अनुवादक

पं० श्री घेवरचन्दजी बांठिया 'वीरपुत्र'
न्यायतीर्थ, व्याकरणतीर्थ, सिद्धान्त शास्त्री

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन
संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
शाखा-नेहरू गेट बाहर-३०५ ९०१
✆ : (०१४६२) ५१२१६, २०६९१

द्रव्य सहायक

सुश्राविका श्रीमती मंगलाबहन जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई

प्राप्ति स्थान

१. श्री अखिल भारतीये सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर (राज.)
२. शाखा – श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, ब्यावर
३. महाराष्ट्र शाखा – माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल
आंवेडकर पुतले के वाजू में, मनमाड़ (नासिक) ✆ : २५२५१
४. कर्नाटक शाखा – नं० ९६/१ जुम्मामस्जिद रोड़, देवंगा मार्केट के पीछे,
बैंगलोर- २ ✆ : २२१७५५०
५. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोवी तलावलेन
पो. वॉ. नं. २२१७, बम्बई-२
६. श्रीमान् हस्तीमलजी किशनलालजी जैन ६७ वालाजीपेठ, जलगांव-१
७. श्री एच. आर. डोशी जी-३९ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, दिल्ली-६
८. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, अहमदावाद
९. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, वुलडाणा
१०. श्री श्रुतज्ञान स्वाध्याय समिति सांगानेरी गेट, भीलवाड़ा
११. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी
साउथ तुकोगंज, इन्दौर

मूल्य : १०-००

छठी आवृत्ति
२०००

वीर संवत् २५२७
विक्रम संवत् २०५७
फरवरी २००१

मुद्रक :- स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर

निवेदन

उत्तराध्ययन सूत्र, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की अंतिम देशना एवं बत्तीस आगमों में मूल सूत्र के रूप में प्रसिद्ध है । इस सूत्र में उत्तम साधकों के आचार विचार एवं उनके जीवन से संबंधित विशद वर्णन है जो प्रत्येक मुमुक्षु आत्मा के लिये अध्ययन एवं मनन करने योग्य है । चतुर्विध संघ में उत्तराध्ययन सूत्र के पठन पाठन व स्वाध्याय का विशेष प्रचलन है । इसके कई अध्ययन तो ऐसे हैं जिनका स्वाध्याय नित्य कई साधकों द्वारा किया जाता है ।

इस सूत्र में मूल गाथाओं के साथ-साथ इसका अन्वयार्थ भी दिया गया है ताकि स्वाध्यायकर्त्ता को मूल पाठ के साथ-साथ इसका अर्थ और रहस्य भी ध्यान में आ सके । इसी को मध्य नजर में रखते हुए इसका अन्वयार्थ सहित अनुवाद समाज के जाने माने विद्वान् पं. र. श्री घेवरचन्द जी बांठिया न्यायतीर्थ व्याकरण तीर्थ, सिद्धान्त शास्त्री (स्वर्गीय पूज्य पंडित रत्न श्री वीरपुत्र जी म. सा.) ने अपने गृहस्थ जीवन में किया । इसे विशेष उपयोगी समझ कर संघ ने इसका प्रकाशन किया । समाज में इसकी लोक प्रियता विशेष हुई, परिणाम स्वरूप पांच आवृत्तियाँ पूर्व में संघ द्वारा प्रकाशित हो चुकी है । समाज में

****

इसकी मांग निरन्तर बनी रहने के कारण पुनः यह संशोधित छठी आवृत्ति प्रकाशित की जा रही है।

पूर्ववत् इस छठी आवृत्ति का प्रकाशन पाठकों की सुविधा के लिये तीन खण्डों (भागों) में किया जा रहा है जिनमें इस प्रकार अध्ययन रखे हैं ताकि पाठकों को स्वाध्याय एवं पठन पाठन में अनुकूलता रहे ।

प्रथम भाग में १ से १४ अध्ययन तक

दूसरे भाग में १५ से २८ अध्ययन तक

तीसरे भाग में २९ से ३६ अध्ययन तक

दृढ़धर्मी प्रियधर्मी श्राविका रत्न श्रीमती मंगला बहन जशवंतलाल भाई शाह, बम्बई के आर्थिक सहयोग की वजह से कागज एवं प्रकाशन सामग्री के मूल्य में अप्रत्याशित वृद्धि के बावजूद भी इस आवृत्ति के मूल्य में कोई वृद्धि नहीं की गई है। समाज एवं पाठक वर्ग इस आर्थिक सहयोग के लिए शाह दम्पत्ति का हार्दिक आभारी है।

छठी आवृत्ति अपने नये परिवेश में पाठकों के लिये उपयोगी सिद्ध होगी, इसी शुभ भावना के साथ ।

ब्यावर (राज.)
दिनांक : १५ फरवरी २००१

संघ सेवक
नेमीचन्द बांठिया
श्री. अ. भा. सु. जैन सं. र. संघ ब्यावर

अस्वाध्याय

निम्नलिखित चौंतीस असज्झाय के कारणों को टाल कर स्वाध्याय करना चाहिये ।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	**काल मर्यादा**
१. बड़ा तारा टूटे तो	एक प्रहर
२. उदय अस्त के समय लाल दिशा	जब तक रहे
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो	दो प्रहर
४. अकाल में बिजली चमके तो	एक प्रहर
५. बिजली कड़के तो	आठ प्रहर
६. शुक्ल पक्ष की १-२-३ की रात	प्रहर रात्रि तक
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो	जब तक दिखाई दे
८-९. काली और सफेद धूंअर	जब तक रहे
१०. आकाश मण्डल धूलि से आच्छादित हो	जब तक रहे

नोट - बिजली कडकने की अस्वाध्याय कुछ सम्प्रदाय दो प्रहर का रखते हैं किन्तु ग्रन्थों में ८ प्रहर का लिखा है अतः ग्रन्थानुसार आठ प्रहर का असज्झाय रखना उचित है ।

नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनसे होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय

११-१३ हड्डी, रक्त और मांस, ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो तो तीन प्रहर । मनुष्य के हो

****

तो १०० हाथ के भीतर एक दिन रात । मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो तो १२ वर्ष तक ।

१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे — तब तक

१५. श्मशान भूमि — सौ हाथ से कम दूर हो तो

१६. चन्द्र ग्रहण — खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर

१७. सूर्य ग्रहण — खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो तो १६ प्रहर

१८. राजा का अवसान होने पर, — जब तक नया राजा घोषित न हो

१९. युद्ध स्थान के निकट — जब तक युद्ध चले

२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो, — जब तक पड़ा रहे

२१-२५. आषाढ़, भाद्रपद, आश्विन,
कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा — दिन रात

२६-३०. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा — दिन रात

३१-३४. प्रातः मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि — १-१ मुहूर्त्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टाल कर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुँह नहीं बोलना तथा दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए ।

नोट - चन्द्र ग्रहण और सूर्य ग्रहण जब प्रारम्भ हो उस समय से अस्वाध्याय गिनना चाहिये, पहले नहीं । चन्द्र और सूर्य ज्योतिषी देव हैं । इसलिए इनका अस्वाध्याय आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय में होना चाहिये । परन्तु इनके विमान रत्नों के बने हुए हैं । रत्न पृथ्वीकाय के हैं । पृथ्वीकाय का शरीर औदारिक है इसलिये इनको औदारिक अस्वाध्याय में लिया गया है । (ठाणांग सूत्र १०)

संघ के प्रकाशन

क्रं. नाम	मूल्य
१. अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	१४-००
२. अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	अप्राप्य
३. अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग ३	अप्राप्य
४. अंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	अप्राप्य
५. अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	३५-००
६. अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
७. अनंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
८. अंतगडदसा सूत्र	८-००
९. अनुत्तरोववाइय सूत्र	३-५०
१०. आयारांग सूत्र भाग १	२५-००
११. आयारांग सूत्र भाग २	२०-००
१२. आयारो	८-००
१३. आवश्यक सूत्र (सार्थ)	७-००
१४. उत्तरज्झयणाणि (गुटका)	६-००
१५. उत्तराध्ययन सूत्र	३०-००
१६. उपासक दशांग सूत्र	१५-००
१७. उववाइय सुत्त	२०-००
१८. दसवेयालिय सुत्तं (गुटका)	३-००
१९. दशवैकालिक सूत्र	१०-००
२०. णंदी सुत्तं	३-००
२१. नन्दी सूत्र	२०-००
२२. प्रश्नव्याकरण सूत्र	२५-००
२३-२९. भगवती सूत्र भाग १-७	३००-००
३०-३१. स्थानाङ्ग सूत्र भाग १-२	४०-००
३२. समवायांग सूत्र	२५-००
३३. सुखविपाक सूत्र	२-००
३४. सूयगडो	६-००
३५. सूयगडांग सूत्र भाग १	२०-००
३६. सूयगडांग सूत्र भाग २	२०-००
३७. मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग १	३०-००
३८. मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग २	३०-००
३९-४१.तीर्थंकरचरित्र भा० १,२,३	१३५-००
४२. तीर्थंकर पद प्राप्ति के उपाय	५-००
४३. सम्यक्त्व विमर्श	१०-००
४४. आत्म साधना संग्रह	२०-००
४५. आत्म शुद्धि का मूल तत्त्वत्रयी	१५-००
४६. नव तत्त्वों का स्वरूप	१३-००
४७. सामण्ण सड्ढिधम्मो	अप्राप्य
४८. अगार-धर्म	१०-००
४९-५१. समर्थ समाधान भाग १,२,३	४७-००
५२. तत्त्व-पृच्छा	१०-००
५३. तेतली-पुत्र	३०-००

५४. शिविर व्याख्यान	१०-००
५५. जैन स्वाध्याय माला	१५-००
५६. स्वाध्याय सुधा	५-००
५७. आनुपूर्वी	१-००
५८. भक्तामर स्तोत्र	१-५०
५९. जैन स्तुति	६-००
६०. मंगल प्रभातिका	१-२५
६१. सिद्ध स्तुति	३-००
६२. संसार तरणिका	५-००
६३. आलोचना पंचक	२-००
६४. विनयचन्द चौबीसी	१-००
६५. भवनाशिनी भावना	२-००
६६. स्तवन तरंगिणी	५-००
६७. सुधर्म स्तवन संग्रह भाग १	१५-००
६८. सुधर्म स्तवन संग्रह भाग २	१५-००
६९. सुधर्म चरित्र संग्रह	१०-००
७०. सामायिक सूत्र	१-००
७१. सार्थ सामायिक सूत्र	२-००
७२. प्रतिक्रमण सूत्र	२-००
७३. जैन सिद्धान्त परिचय	२-००
७४. जैन सिद्धान्त प्रवेशिका	२-००
७५. जैन सिद्धान्त प्रथमा	३-००
७६. जैन सिद्धान्त कोविद	३-००
७७. जैन सिद्धान्त प्रवीण	४-००
७८. १०२ बोल का बासठिया	०-५०
७९. तीर्थंकरों का लेखा	१-००
८०. जीव-धड़ा	१-००
८१. लघु-दण्डक	१-००
८२. महा-दण्डक	१-००
८३. तेतीस-बोल	१-००
८४. गुणस्थान स्वरूप	१-००
८५. गति-आगति	१-००
८६. कर्म-प्रकृति	१-००
८७. समिति-गुप्ति	१-५०
८८. समकित के ६७ बोल	१-५०
८९. २५ बोल	२-००
९०. नव-तत्त्व	६-००
९१. जैन सिद्धान्त थोक संग्रह भाग १	८-००
९२. जैन सिद्धान्त थोक संग्रह भाग २	७-००
९३. जैन सिद्धान्त थोक संग्रह भाग ३	१०-००
९४. जैन सिद्धान्त थोक संग्रह संयुक्त	१५-००
९५. पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग १	८-००
९६. पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग २	६-००
९७. पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग ३	६-००
९८. Saarth Saamaayik Sootra	10-00

सभिक्खु पन्द्रहवाँ अध्ययन

मोणं चरिस्सामि समिच्च धम्मं,
सहिए उज्जुकडे णियाणछिण्णे ।
संथवं जहिज्ज अकामकामे,
अण्णायएसी परिव्वए स भिक्खू ॥ १ ॥

- **धम्मं** - जिसने विवेकपूर्वक सच्चे धर्म का, **समिच्च** - विचार कर के, **मोणं** - मुनिवृत्ति, **चरिस्सामि** - अंगीकार करूँगा। इस प्रकार के विचार वाला **सहिए** - जो सम्यग्दर्शनादि से युक्त है, **उज्जुकडे** - जो माया-रहित होकर सरल और, **णियाणछिण्णे**- नियाणा-रहित तप-संयमादि क्रिया करने वाला है, **संथवं** - जिसने अपने गृहस्थाश्रम के सम्बन्धियों के परिचय का, **जहिज्ज** - त्याग कर दिया है, **अकामकामे** - जो विषय-भोगों की अभिलाषा से रहित है, तथा, **अण्णायएसी** - अज्ञात कुलों में गोचरी करता हुआ, **परिव्वए** - अप्रतिबद्ध विहार करता है, **स** - वह, **भिक्खू** - भिक्षु-मुनि कहलाता है ॥ १ ॥

विवेचन - प्रश्न - भिक्षु किसे कहते हैं ?

उत्तर - भिक्षु शब्द की व्युत्पत्ति (अन्वर्थ) इस प्रकार की है-"**यमनियम व्यवस्थितः कृतकारितानुमोदितपरिहारेण भिक्षते इत्येवंशीलो भिक्षु**" अर्थात् - पांच महाव्रत रूप यम (मूल गुण) तथा पिण्ड विशुद्धि आदि नियम (उत्तर गुण) का जो पालन करता हुआ और आहार आदि के (४२) बयालीस दोष टालकर शुद्ध संयम का पालन करता है उसे भिक्षु कहते हैं ।



भिक्षु शब्द की इस व्युत्पति दूसरे प्रकार से भी की गई है - **"ज्ञान दर्शन चारित्रतया अष्ट प्रकारं कर्म भिनत्ति इति भिक्षुः"** अर्थात् ज्ञान दर्शन चारित्र का पालन कर जो आठ प्रकार के कर्मों का भेदन (विनाश-क्षय) करता है, उसको भिक्षु कहते हैं ।

राओवरयं चरेज्ज लाढे,
विरए वेयवियायरक्खिए ।
पण्णे अभिभूय सव्वदंसी,
जे कम्हि वि ण मुच्छिए स भिक्खू ॥ २॥

- **राओवरयं** - राग-रहित और, **लाढे** - लाढ-प्रधान संयम मार्ग में दृढ़ता पूर्वक, **चरेज्ज** - विचरने वाला, **विरए** - विरत, असंयम से निवृत्त, **वेयविय** - वेदवित्-शास्त्रों का ज्ञाता, **आयरक्खिए** - आत्मरक्षक, **पण्णे** - बुद्धिमान्, **अभिभूय** - परीषह उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करने वाला, **सव्वदंसी** - सर्वदर्शी, सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखने वाला तथा, **जे** - जो, **कम्हि वि** - किसी भी पदार्थ में, **ण मुच्छिए** - ममत्व नहीं रखता है, **स** - वह, **भिक्खू** - भिक्षु है ॥ २॥

अक्कोसवहं विइत्तु धीरे,
मुणी चरे लाढे णिच्चमायगुत्ते ।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे,
जे कसिणं अहियासए स भिक्खू ॥ ३॥

- यदि कोई साधु को, **अक्कोस वहं** - कठोर वचन कहे अथवा मारे-पीटे तो उसे, **विइत्तु** - अपने पूर्वकृत कर्मों का फल जान कर, **मुणी** - जो मुनि, **धीरे** - समभावपूर्वक सहन करता

है और जो, **लाढे**-श्रेष्ठ कार्यों में, **चरे** - प्रवृत्ति करता है तथा, **णिच्चं** - सदा, **आयगुत्ते** - आत्मगुप्त-पापकार्यों से अपनी आत्मा की रक्षा करता है और, **जे** - जो, **अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे** - चित्त में किसी प्रकार का हर्ष-विषाद न लाते हुए, **कसिणं** - कृत्स्न-संयम मार्ग में आने वाले सभी कष्टों को, **अहियासए** - समभावपूर्वक सहन करता है, **स**-वह, **भिक्खू** - भिक्षु है ॥ ३ ॥

पंतं सयणासणं भइत्ता,
सीउण्हं विविहं च दंसमसगं ।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे,
जे कसिणं अहियासए स भिक्खू ॥ ४ ॥

पंतं - प्रान्त-जीर्ण, **सयणासणं** - शय्या और आसन के, **भइत्ता**- मिलने पर, **च** - तथा, **सीउण्हं** - शीत-उष्ण, **दंसमसगं** - डांस-मच्छर आदि, **विविहं** - अनेक प्रकार के परीषहों के उत्पन्न होने पर, **जे** - जो, **अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे** - चित्त में किसी प्रकार की व्याकुलता न लाता हुआ एवं हर्ष-विषाद न करता हुआ, **कसिणं** - कृत्स्न-सभी कष्टों को, **अहियासए** - समभाव पूर्वक सहन करता है, **स** - वह, **भिक्खू** - भिक्षु है ॥ ४ ॥

णो सक्कियमिच्छइ ण पूयं,
णो वि य वंदणगं कुओ पसंसं ।
से संजए सुव्वए तवस्सी,
सहिए आयगवेसए स भिक्खू ॥ ५ ॥

- जो **सक्कियं** - सत्कार, **य** - और, **पूयं** - पूजा प्रतिष्ठा की, **णो इच्छइ** - इच्छा नहीं रखता है, **वंदणगं** - वन्दना और,



पसंसं - प्रशंसा की, **कुओ वि** - किञ्चिन्मात्र भी, **णो इच्छइ** - इच्छा नहीं रखता है, **से** - वह, **संजए** - संयत-संयति, **सुव्वए** - सुव्रती, **तवस्सी** - तपस्वी, **सहिए** - सहित सम्यग् ज्ञानवान् एवं, **आयगवेसए** - आत्मगवेषक है, **स** - वह, **भिक्खू** - भिक्षु है ॥ ५ ॥

जेण पुणो जहाइ जीवियं,
मोहं वा कसिणं णियच्छइ ।
णरणारिं पजहे सया तवस्सी,
ण य कोऊहलं उवेइ स भिक्खू ॥ ६ ॥

- **जेण** - जिनका संग करने से, **जीवियं** - संयम रूप जीवन का, **पुणो** - सर्वथा, **जहाइ** - विनाश हो जाता हो, **वा** - अथवा, **कसिणं** - सम्पूर्ण, **मोहं** - मोहनीय कर्म का, **णियच्छइ** - बन्ध होता हो, **णरणारिं** - ऐसे नर और नारी की संगति को, **तवस्सी** - जो तपस्वी मुनि, **सया** - सदा के लिए, **पजहे**-छोड़ देता है, **य** - और जो, **कोऊहलं** - कुतूहल को, **ण उवेइ** - प्राप्त नहीं होता एवं पूर्व भोगे हुए भोगादि का स्मरण नहीं करता है, **स** - वह, **भिक्खू** - भिक्षु है ॥ ६ ॥

छिण्णं सरं भोममंतलिक्खं,
सुमिणं लक्खण-दंड-वत्थुविज्जं ।
अंगवियारं सरस्स विजयं,
जे विज्जाहिं ण जीवइ स भिक्खू ॥ ७॥

- **छिण्णं** - छिन्न-वस्त्र-काष्ठादि छेदने की विद्या, **सरं** - स्वर विद्या, **भोमं** - भूकम्प विद्या, **अंतलिक्खं** - अन्तरिक्ष-आकाश



सम्बन्धी विद्या, **सुमिणं** - स्वप्न-विद्या (स्वप्नों का फल बताने वाली विद्या) **लक्खण** - लक्षण शरीर के लक्षणों द्वारा सुख-दुःख बताने वाली विद्या, **दंड** - दंड-विद्या, **वत्थुविज्जं** - वास्तु-विद्या, मकान बनाने की विद्या, **अंगवियारं** - अंग-स्फुरण के शुभाशुभ फल बताने वाली विद्या और, **सरस्स विजयं** - पशु-पक्षियों की बोली जानने की विद्या, **विज्जाहिं** - इन कुत्सित एवं निन्दित विद्याओं से, **जे** - जो, **ण जीवइ** - अपनी आजीविका नहीं करता है, **स** - वह, **भिक्खू** - भिक्षु है ॥७॥

मंतं मूलं विविहं वेज्जचिंतं,
वमण-विरेयण-धूमणेत्त-सिणाणं ।
आउरे सरणं तिगिच्छियं च,
तं परिण्णाय परिव्वए स भिक्खू ॥ ८॥

- **मंतं** - मंत्र-तंत्रादि का प्रयोग, **मूलं** - मूल-जड़ी-बूँटी, **विविहं**- अनेक प्रकार के, **वेज्जचिंतं** - वैद्यक प्रयोग, **वमण** - वमन, **विरेयण** - विरेचन, **धूम** - धूम्र प्रयोग, **णेत्त** - आँख का अञ्जन, **सिणाणं** - स्नान, **आउरे सरणं** - रोग से पीड़ित होने पर 'हा मात! हा तात !' इत्यादि विलाप करना, **च** - और, **तिगिच्छियं** - चिकित्सा इत्यादि प्रयोग, जो अपने लिए नहीं करे तथा दूसरों के लिए भी न करे-करावे, **तं** - इन सब को, **परिण्णाय** - ज्ञ-परिज्ञा से जान कर, **परिव्वए** - प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग देता है, **स** - वह, **भिक्खू** - भिक्षु है ॥८॥

खत्तियगण-उग्गरायपुत्ता,
माहण-भोइय विविहा य सिप्पिणो ।



णो तेसिं वयइ सिलोग-पूयं,

तं परिण्णाय परिव्वए स भिक्खू ॥ ९॥

– **खत्तिय** – क्षत्रिय, **गण** – मल्ल-योद्धा, **उग्ग** – उग्र-कोतवाल, **रायपुत्ता** – राजपुत्र, **माहण** – ब्राह्मण, **भोइय** – प्रधान, **य** – और, **विविहा** – नाना प्रकार के, **सिप्पिणो** – कलाकार, **तेसिं** – इन सब की, **सिलोगपूयं णो वयइ** – जो प्रशंसा नहीं करता और पूजा भी नहीं करता, किन्तु, **तं** – इन कार्यों को साधुओं लिए अयोग्य, **परिण्णाय** – जान कर, **परिव्वए** – छोड़ देता है, **स** – वह, **भिक्खू** – भिक्षु है ॥ ९॥

गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा,

अपव्वइएण व संथुया हविज्जा ।

तेसिं इह - लोइय - फलट्ठा,

जो संथवं ण करेइ स भिक्खू ॥ १०॥

– **पव्वइएण** – प्रव्रजित-दीक्षा लेने के पश्चात्, जे – जिन, **गिहिणो** – गृहस्थों को, **दिट्ठा** – देखने का प्रसंग आया हो और जिनके साथ परिचय हुआ हो, **व** – अथवा, **अपव्वइएण** – अप्रव्रजित-गृहस्थावस्था में रहते समय जिन गृहस्थों के साथ, **संथुया** – संस्तुत-परिचय, **हविज्जा** – हुआ हो, **तेसिं** – इस प्रकार दोनों अवस्था में परिचय में आने वाले गृहस्थों के साथ, **इहलोइयफलट्ठा** – इहलौकिक फल की प्राप्ति के लिये, जो – जो, **संथवं** – संस्तव-विशेष परिचय, **ण करेइ** – नहीं करता है, **स** – वह, **भिक्खू** – भिक्षु है ॥ १०॥



सयणासणपाणभोयणं,
विविहं खाइमं-साइमं परेसिं ।
अदए पडिसेहिए णियंठे,
जे तत्थ ण पउस्सइ स भिक्खू ॥ ११॥

- **सयणासणपाणभोयणं** - शय्या, आसन, पानी और आहार तथा, **विविहं** - अनेक प्रकार के, **खाइमं** - खादिम और, **साइमं** - स्वादिम पदार्थ, **परेसिं** - गृहस्थ के घर में रहे हुए हों, किन्तु मुनि द्वारा उन पदार्थों की याचना करने पर भी यदि वह, **अदए** - न दे और, **पडिसेहिए** - मना कर दे तो भी, **जो** - जो, **णियंठे** - निर्ग्रंथ मुनि, **तत्थ** - उस गृहस्थ पर, **ण पउस्सइ** - द्वेष न करे, **स** - वह, **भिक्खू** - भिक्षु है ॥ ११ ॥

जं किंचि आहारपाणगं,
विविहं खाइमं-साइमं परेसिं लद्धुं ।
जो तं तिविहेण णाणुकंपे,
मणवयकाय सुसंवुडे जे स भिक्खू ॥ १२॥

- **परेसिं** - गृहस्थों के घर से, **जं किंचि** - जो कुछ, **आहार पाणगं** - आहार-पानी और, **विविहं** - अनेक प्रकार के, **खाइमं साइमं** - खादिम और स्वादिम, **लद्धुं** - प्राप्त करके, **जो** - जो, **णा** - ना - नर (साधु), **तिविहेण** - मन-वचन काया से, **अणुकंपे**- बाल, वृद्ध और ग्लान साधुओं पर अनुकम्पा करता है, अर्थात्, **तं** - उस आहारादि का संविभाग करने के पश्चात् स्वयं आहार करता है, **जे** - जो, **मणवयकाय सुसंवुडे** - मन-वचन और काया को वश में रखता है, **स** - वह, **भिक्खू** - भिक्षु है ।



(इस गाथा में आये हुए 'णाणुकंपे' का अर्थ टीका में इस प्रकार भी किया है कि भिक्षु द्वारा प्राप्त हुए आहारादि का जो, **ण** - नहीं, **अणुकंपे** - साथी साधुओं में संविभाग नहीं करता है वह भिक्षु नहीं है, जो संविभाग करता है वह भिक्षु कहलाता है। ऐसा करने में 'न' की पुनरावृत्ति करनी पड़ती है, यह क्लिष्ट कल्पना है। इसलिए पहला अर्थ ही ठीक है क्योंकि दोनों तरह से वही अर्थ है, फिर सरल अर्थ को छोड़ कर क्लिष्ट कल्पना करना व्यर्थ है) ॥ १२ ॥

आयामगं चेव जवोदणं च,
सीयं सोवीर जवोदगं च ।
णो हीलए पिंडं णीरसं तु,
पंत-कुलाइं परिव्वए स भिक्खू ॥ १३ ॥

- गृहस्थों के घर से मिले हुए निर्दोष, **आयामगं** - ओसामण-(चावल आदि का पानी) **चेव** -और, **जवोदणं** - यवोदन-जौ का दलिया, **च** - और, **सीयं** - ठंडा आहार, **सोवीर** - काँजी आदि का पानी, **च** - और, **जवोदगं** - यवोदक-जौ का पानी, **तु** - और, **णीरसं** - नीरस, **पिंडं** - आहारादि के मिलने पर जो, **णो हीलए** - उसकी अवहेलना (निन्दा) नहीं करता तथा, **पंतकुलाइं** - प्रान्त कुल (दरिद्र कुल) एवं सामान्य स्थिति के घरों में भी, **परिव्वए** - भिक्षावृत्ति करता है, **स** - वह, **भिक्खू** - भिक्षु है ॥ १३ ॥

सद्दा विविहा भवंति लोए,
दिव्वा माणुस्सगा तहा तिरिच्छा ।



भीमा भयभेरवा उराला,
सोच्चा ण विहिज्जइ स भिक्खू ॥ १४॥

– **लोए** – लोक में, **दिव्वा** – देव सम्बन्धी, **माणुस्सगा** – मनुष्य सम्बन्धी, **तहा** – और, **तिरिच्छा** – तिर्यंच सम्बन्धी, **विविहा** – नाना प्रकार के, **भीमा** – भयंकर, **भयभेरवा** – भयोत्पादक और, **उराला** – उदार-महान्, **सद्दा** – शब्द, **भवंति** – होते हैं, उन्हें, **सोच्चा**– सुन कर, **ण विहिज्जइ** – जो भयभीत हो कर धर्मध्यान से चलित नहीं होता, **स** – वह, **भिक्खू** – भिक्षु है ॥ १४॥

वादं विविहं समिच्च लोए,
सहिए खेयाणुगए य कोवियप्पा ।
पण्णे अभिभूय सव्वदंसी,
उवसंते अविहेडए स भिक्खू ॥ १५॥

– **लोए** – लोक में प्रचलित, **विविहं** – नाना प्रकार के, **वादं** – वादों को, **समिच्च** – जान कर जो, **कोवियप्पा** – कोविद आत्मा-विचक्षण साधु, **सहिए** – अपने आत्मधर्म में स्थिर रहता हुआ, **खेयाणुगए** – संयम में दत्तचित्त रहता है, **य** – और, **पण्णे**– जो बुद्धिमान् साधु, **अभिभूय** – सभी परीषहों को समभाव पूर्वक सहन करता है, तथा, **सव्वदंसी** – समस्त जीवों को अपनी आत्मा के समान देखता हुआ, **उवसंते** – कषायों पर विजय प्राप्त करता है और, **अविहेडए** – किसी जीव को पीड़ा नहीं पहुँचाता, **स** – वह, **भिक्खू** – भिक्षु है ॥ १५॥

असिप्पजीवी अगिहे अमित्ते,
जिइंदिए सव्वओ विप्पमुक्के ।



अणुक्कसाई लहु अप्पभक्खी,
चिच्चा गिहं एगचरे स भिक्खू ॥ १६॥

॥ त्ति बेमि॥

– **असिप्पजीवी** – शिल्प-कला द्वारा अपना निर्वाह न करने वाला, **अगिहे** – घरबार से रहित, **अमित्ते** – मित्र एवं शत्रु-रहित (रागद्वेष-रहित), **जिइंदिए** – जितेन्द्रिय, **सव्वओ विप्पमुक्के** – सर्वतः विप्रमुक्त-अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तर बन्धनों से सर्वथा रहित, **अणुक्कसाई** – अल्प कषाय वाला, **लहु अप्पभक्खी** – अल्प एवं परिमित आहार करने वाला, **गिहं** – द्रव्य और भाव परिग्रह को, **चिच्चा** – छोड़ कर **एगचरे** – रागद्वेष-रहित हो कर जो विचरता है, **स** – वह, **भिक्खू** – भिक्षु है । **त्तिबेमि** – ऐसा मैं कहता हूँ ॥ १६॥

॥ पन्द्रहवां अध्ययन समाप्त ॥



ब्रह्मचर्य-समाधि नामक सोलहवाँ अध्ययन

सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं । इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेर-समाहि-ठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सुच्चा णिसम्म संजमबहुले संवर-बहुले समाहिबहुले गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ॥

– श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि, **आउसं** – हे आयुष्मन् ! **मे** – मैंने, **सुयं** – सुना है, **तेणं** – उन, **भगवया** – भगवंतों ने, **एवं** – इस प्रकार, **अक्खायं** – फरमाया है, **इह** – इस जिन-शासन में, **थेरेहिं** – स्थविर, **भगवंतेहिं**– भगवंतों ने, **दस बंभचेर समाहिठाणा** – ब्रह्मचर्य समाधि के दस स्थान, **पण्णत्ता** – बताये हैं, **जे** – जिन्हें, **सुच्चा** – सुन कर और, **णिसम्म** – हृदय में धारण करके, **भिक्खू** – साधु, **संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले** – संयम संवर और समाधि में दृढ़ हो कर, **गुत्ते** – मन-वचन-काय से गुप्त, **गुत्तिंदिए** – गुप्तेन्द्रिय और, **गुत्तबंभयारी** – गुप्त ब्रह्मचारी होकर (ब्रह्मचर्य का रक्षक), **सया** – सदा, **अप्पमत्ते** – अप्रमत्त भाव से, **विहरेज्जा** – विचरे ।

विवेचन – संयम में खेदित होते हुए तथा धर्म से डिगते हुए प्राणी को जो धर्म में स्थिर करे उसे 'स्थविर' कहते हैं । ठाणांगसूत्र ३ उद्देशा ३ में स्थविर के तीन भेद बतलाएं हैं । यथा -

१. वयःस्थविर (जन्म स्थविर, जाति स्थविर) साठ वर्ष की अवस्था के साधु वयः स्थविर कहलाते हैं ।



२. श्रुत स्थविर (सूत्र स्थविर-ज्ञान स्थविर) श्री स्थानां (ठाणांग) और समवायांग सूत्र के ज्ञाता सूत्र स्थविर कहलाते हैं।

३. प्रव्रज्या स्थविर (दीक्षा स्थविर-पर्याय स्थविर) बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले साधु प्रव्रज्या स्थविर कहलाते हैं।

तीर्थङ्कर भगवन्तों के गणधरों को भी स्थविर कहते हैं।

कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेर-समाहि ठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सुच्चा णिसम्म संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ॥

– शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन् ! **खलु** – निश्चय ही, **ते** – वे, **दस बंभचेर समाहिठाणा** – ब्रह्मचर्य के दस समाधि स्थान, **कयरे** – कौन से जिन्हें, **थेरेहिं** – स्थविर, **भगवंतेहिं** – भगवंतों ने, **पण्णत्ता** – प्रतिपादन किये हैं। '**जे भिक्खू**' से '**विहरेज्जा**' तक का शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥ (गुप्त अर्थात् रक्षक)

इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेर-समाहिठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सुच्चा णिसम्म संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ॥

– गुरु कहते हैं कि, **खलु** – निश्चय ही, **ते** – वे, **दस बंभचेर समाहिठाणा** – ब्रह्मचर्य-समाधि के दस स्थान, **थेरेहिं** – स्थविर, **भगवंतेहिं** – भगवंतों ने, **इमे** – इस प्रकार, **पण्णत्ता** – फरमाये हैं। '**जे भिक्खू**' से '**विहरेज्जा**' तक का शब्दार्थ पूर्ववत् है ।



तंजहा - विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ से णिग्गंथे । णो इत्थीपसुपंडग संसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ से णिग्गंथे । तं कहमिति चे ? आयरियाह-णिग्गंथस्स खलु इत्थीपसुपंडग-संसत्ताइं सयणासणाइं सेवमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीपसुपंडग-संसत्ताइं सयणासणाइं सेविज्जा ॥ १ ॥

- **तंजहा** - जैसे कि, **विवित्ताइं** - जो विविक्त अर्थात् स्त्री, पशु और नपुंसक रहित, **सयणासणाइं** - शय्या और आसनादि का, **सेवित्ता** - सेवन करता है, **से** - वह, **णिग्गंथे** - निर्ग्रंथ, **हवइ** - होता है और, **इत्थीपसुपंडग संसत्ताइं** - जो स्त्री, पशु और नपुंसक से युक्त, **सयणासणाइं** - शय्या और आसनादि का, **सेवित्ता हवइ**- सेवन करता है, **से** - वह, **णो णिग्गंथे** - निर्ग्रंथ नहीं है । **तं कहमिति चे** - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन् ! निर्ग्रंथ को स्त्री पशु और नपुंसक युक्त शय्या - आसनादि का सेवन क्यों नहीं करना चाहिए ? **आयरियाह** - आचार्य महाराज उत्तर देते हैं कि, **खलु** - निश्चय से, **इत्थीपसुपंडग संसत्ताइं** - स्त्री, पशु और नपुंसक युक्त, **सयणासणाइं** - शय्या और आसनादि का, **सेवमाणस्स** - सेवन करने वाले, **णिग्गंथस्स** - निर्ग्रंथ,

बंभयारिस्स - ब्रह्मचारी को, **बंभचेरे** - ब्रह्मचर्य में, **संका** - शंका, **वा** - अथवा, **कंखा**- कांक्षा-भोग-भोगने की इच्छा, **वा** - अथवा, **विइगिच्छा वा** - विचिकित्सा-ब्रह्मचर्य के फल के प्रति सन्देह, **समुप्पज्जिज्जा** - उत्पन्न हो सकता है, **वा** - अथवा विषयेच्छा जागृत होने से, **भेदं** - संयम का एवं ब्रह्मचर्य का विनाश, **लभेज्जा** - होने की, **वा** - तथा, **उम्मायं** - उन्माद की, **लभेज्जा** - प्राप्ति होने की संभावना रहती है, **वा** - और ऐसे कुविचारों के तथा दुष्कार्य के फल स्वरूप, **दीहकालियं** - दीर्घकाल तक रहने वाला, **रोगा** - शारीरिक रोग, **आयंका** - आतंक-शीघ्र मृत्यु करने वाले रोग हैजा, प्लेग आदि, **हविज्जा** - उत्पन्न हो जाता है, **वा** - इस प्रकार क्रमशः पतित होते हुए वह, **केवलिपण्णत्ताओ** - केवलज्ञानियों द्वारा प्ररूपित, **धम्माओ** - धर्म से, **भंसिज्जा** - भ्रष्ट हो जाता है, **तम्हा** - इसलिए, **खलु** - निश्चय से, **णिग्गंथे** - निर्ग्रन्थ मुनि को, **इत्थीपसुपंडग संसत्ताइं** - स्त्री, पशु और नपुंसक से युक्त, **सयणासणाइं** - शय्या और आसनादि का, **णो सेविज्जा**- सेवन नहीं करना चाहिए ॥ १ ॥

णो इत्थीणं कहं कहित्ता हवइ से णिग्गंथे । तं कहमिति चे ? आयरियाह-णिग्गंथस्स खलु इत्थीणं कहं कहेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीणं कहं कहेज्जा ॥ २ ॥

– जो, इत्थीणं – स्त्रियों की, कहं – कथा एवं स्त्रियों के श्रृंगारादि की कथा, णो कहित्ता हवइ – नहीं कहता है, से – वह, णिग्गंथे – निर्ग्रंथ है । 'तं कहमिति' से 'कहेज्जा' तक का शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥ २ ॥

णो इत्थीहिं सद्धिं सण्णिसेज्जागए विहरित्ता हवइ से णिग्गंथे । तं कहमिति चे ? आयरियाह-णिग्गंथस्स खलु इत्थीहिं सद्धिं सण्णिसेज्जागयस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीहिं सद्धिं सण्णिसेज्जागए विहरेज्जा ॥ ३ ॥

– जो, इत्थीहिं सद्धिं – स्त्रियों के साथ, सण्णिसेज्जागए – एक आसन पर, णो विहरित्ता हवइ – नहीं बैठता है, से – वह, णिग्गंथे – निर्ग्रंथ है । 'तं कहमिति' से 'विहरेज्जा' तक का शब्दार्थ पूर्ववत् है ।

टीकाकार लिखते हैं कि जिस स्थान पर स्त्री बैठी हो, उसके उठ जाने पर भी एक मुहूर्त तक ब्रह्मचारी पुरुष को वहां नहीं बैठना चाहिए ॥ ३ ॥

णो इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता णिज्झाइत्ता हवइ से णिग्गंथे । तं कहमिति चे ? आयरियाह-णिग्गंथस्स खलु इत्थीणं

इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोयमाणस्स णिज्झायमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा, तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोएज्जा णिज्झाएज्जा॥ ४॥

– जो **इत्थीणं** – स्त्रियों की, **मणोहराइं** – मनोहर और, **मणोरमाइं** – मनोरम (सुन्दर), **इंदियाइं**–नाक–आँख–मुख आदि इन्द्रियों को, **णो आलोइत्ता णिज्झाइत्ता हवइ** – विकार दृष्टि से नहीं देखता, तथा उनका ध्यान नहीं करता है, **से** – वह, **णिग्गंथे** – निर्ग्रंथ है । '**तं कहमिति**' से '**णिज्झाएज्जा**' तक शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥ ४॥

णो इत्थीणं कुडुंतरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुइयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा कंदियसद्दं वा विलवियसद्दं वा सुणित्ता हवइ से णिग्गंथे । तं कहमिति चे ? आयरियाह- णिग्गंथस्स खलु इत्थीणं कुडुंतरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुइयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा कंदियसद्दं वा विलवियसद्दं वा सुणेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं

वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीणं कुडुंतरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुइयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा कंदियसद्दं वा विलवियसद्दं वा सुणेमाणे विहरेज्जा ॥५॥

कुडुंतरंसि - जो बाँस आदि टाटी की ओट से, **वा** - अथवा, **दूसंतरंसि** - वस्त्र के पर्दे की आड से, **वा** - अथवा, **भित्तंतरंसि** - भींत की ओट से, **इत्थीणं** - स्त्रियों के, **कूइयसद्दं** - कूजित (कोयल के समान मीठे) शब्द, **रुइयसद्दं** - प्रेममिश्रित रुदन का शब्द, **गीयसद्दं** - गीत का शब्द, **हसियसद्दं** - हँसने का शब्द, **थणियसद्दं** - स्तनित शब्द, **कंदियसद्दं** - क्रन्दित (विरह से व्याकुल होकर किया गया) शब्द, **वा** - अथवा, **विलवियसद्दं** - विलाप करने के शब्द को, **णो सुणित्ता हवइ** - जो नहीं सुनता है, **से** - वह, **णिग्गंथे** - निर्ग्रंथ है । **'तं कहमिति'** से **'विहरेज्जा'** तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है ॥५॥

णो णिग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरित्ता हवइ से णिग्गंथे । तं कहमिति चे ? आयरियाह-णिग्गंथस्स खलु इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं



हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरेज्जा ॥ ६ ॥

इत्थीणं - स्त्रियों के साथ, **पुव्वरयं** - गृहस्थाश्रम में पहले भोगे हुए काम-भोगों को तथा, **पुव्वकीलियं** - पूर्व अवस्था में की हुई क्रीड़ा को, **णो अणुसरित्ता हवइ** - जो स्मरण नहीं करता, **से** - वह, **णिग्गंथे** - निर्ग्रंथ है । **'तं कहमिति'** से **'अणुसरेज्जा'** तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है ॥ ६ ॥

णो पणीयं आहारं आहारित्ता हवइ से णिग्गंथे । तं कहमिति चे ? आयरियाह-णिग्गंथस्स खलु पणीयं आहारं आहारेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु णो णिग्गंथे पणीयं आहारं आहारेज्जा ॥ ७ ॥

- **पणीयं** - जो गरिष्ठ (जिसमें से घी की बूंदें टपक रही हों-ऐसा सरस और काम को उत्तेजित करने वाला) **आहारं**-आहार, **णो आहारित्ता हवइ** - नहीं खाता है, **से** - वह, **णिग्गंथे** - निर्ग्रंथ है । **'तं कहमिति'** से **'आहारेज्जा'** तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है ॥ ७ ॥

णो अइमायाए पाणभोयणं आहारित्ता हवइ से णिग्गंथे । तं कहमिति चे ? आयरियाह-णिग्गंथस्स



खलु अइमायाए पाणभोयणं आहारेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु णो णिग्गंथे अइमायाए पाणभोयणं आहारेज्जा ॥ ८ ॥

- **अइमायाए** - जो अतिमात्रा (शास्त्र में बतलाये हुए परिमाण ❂ से अधिक) **पाणभोयणं** - आहार-पानी का, **णो आहारित्ता हवइ** - सेवन नहीं करता, **से** - वह, **णिग्गंथे** - निर्ग्रंथ कहलाता है । '**तं कहमिति**' से '**आहारेज्जा**' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है । ॥ ८ ॥

णो विभूसाणुवादी हवइ से णिग्गंथे । तं कहमिति चे ? आयरियाह - णिग्गंथस्स खलु विभूसावत्तिए विभूसियसरीरे इत्थीजणस्स अभिलसणिज्जे हवइ । तओ णं तस्स इत्थीजणेणं अभिलसिज्जमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा । तम्हा खलु णो णिग्गंथे विभूसाणुवादी हवेज्जा ॥ ९ ॥

❂ टीकाकार ने टीका में पुरुष के लिये ३२ कवल (ग्रास), स्त्री के लिये २८ और नपुंसक के लिये २४ कवल आहार का परिमाण बतलाया है ।



- **णो विभूसाणुवादी हवइ** - जो शरीर की विभूषा नहीं करता, **से** - वह, **णिग्गंथे** - निर्ग्रंथ कहलाता है, **तं** - यह, **कहं** - कैसे ? **इति चे** - ऐसा प्रश्न करने पर, **आयरिय** - आचार्य महाराज, **आह** - कहते हैं कि, **विभूसावत्तिए** - विभूषा करने वाला और, **विभूसियसरीरे** - विभूषित शरीर वाला, **णिग्गंथस्स** - निर्ग्रंथ, **इत्थीजणस्स** - स्त्रियों का, **अभिलसणिज्जे** - अभिलषणीय, **हवइ** - होता है अर्थात् स्त्रियाँ उसे चाहने लगती है, **तओ णं** - इसके पश्चात्, **इत्थीजणेणं** - स्त्रियों द्वारा, **अभिलसिज्जमाणस्स**- प्रार्थना किये गये, **तस्स** - उस, **बंभयारिस्स** - ब्रह्मचारी साधु के, **बंभचेरे** - ब्रह्मचर्य में शंकादि दोष उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है । '**संका वा**' से '**हवेज्जा**' तक शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥ ९॥

णो सद्दरूवरसगंधफासाणुवादी हवइ से णिग्गंथे । तं कहमिति चे ? आयरियाह - णिग्गंथस्स खलु सद्दरूवरसगंध फासाणुवादिस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे सद्दरूवरसगंध-फासाणुवादी हवेज्जा । दसमे बंभचेर-समाहिठाणे हवइ ॥ १०॥ भवंति य इत्थ सिलोगा तं जहा-

- **णो सद्दरूवरसगंधफासाणुवादी हवइ** - जो मनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श का सेवन नहीं करता, **से** - वह, **णिग्गंथे**-

निर्ग्रंथ है । '**तं कहमिति**' से '**हवेज्जा**' तक शब्दार्थ पूर्ववत् है । **दसमे** - यह दसवाँ, **बंभचेर समाहिठाणे** - ब्रह्मचर्य समाधिस्थान, **हवइ** - है, **य** - और, **इत्थ** - इन दस ब्रह्मचर्य समाधिस्थानों के विषय में, **सिलोगा** - श्लोक भी, **भवंति** - हैं, **तंजहा** - वे इस प्रकार हैं :-

जं विवित्तमणाइण्णं, रहियं इत्थी जणेण य ।
बंभचेरस्स रक्खट्ठा, आलयं तु णिसेवए ॥ १ ॥

- **जं** - जो स्थान, **विवित्तं** - विविक्त (एकान्त) हो अर्थात् जहाँ स्त्री आदि का निवास न हो, **अणाइण्णं** - जो स्त्री आदि से आकीर्ण-व्याप्त न हो, **य** - और जो स्थान, **इत्थी जणेण**- स्त्री, पशु, नपुंसक से, **रहियं** - रहित हो, **बंभचेरस्स** - ब्रह्मचर्य की, **रक्खट्ठा** - रक्षा के लिये साधु, **तु** - ऐसे, **आलयं** - स्थान का, **णिसेवए** - सेवन करे ॥ १ ॥

मणपल्हायजणणिं, कामरागविवड्ढणिं ।
बंभचेररओ भिक्खू, थीकहं तु विवज्जए ॥ २ ॥

- **बंभचेररओ** - ब्रह्मचर्य में रत, **भिक्खू** - भिक्षु, **मणपल्हायजणणिं** - मन में विकारी-भावजन्य आनन्द उत्पन्न करने वाली, **तु** - तथा, **कामरागविवड्ढणिं** - कामभोगों में आसक्ति बढ़ाने वाली, **थीकहं** - स्त्री-कथा को, **विवज्जए** - त्याग दे ॥ २ ॥

समं च संथवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं ।
बंभचेररओ भिक्खू, णिच्चसो परिवज्जए ॥ ३ ॥



- **बंभचेररओ** - ब्रह्मचर्य में रत, **भिक्खू** - साधु को चाहिए कि, **थीहिं** - स्त्रियों के, **समं** - साथ, **संथवं** - परिचय **च** - और, **अभिक्खणं** - बारम्बार, **संकहं** - स्त्रियों के साथ वार्तालाप, **च** - और, उनके साथ एक आसन पर बैठने आदि कार्यों को, **णिच्चसो** - सदा के लिए, **परिवज्जए** - त्याग दे ॥ ३ ॥

अंग-पच्चंग संठाणं, चारुल्लवियपेहियं ।
बंभचेररओ थीणं, चक्खुगिज्झं विवज्जए ॥ ४॥

- **बंभचेररओ** - ब्रह्मचर्य में रत साधु को चाहिए कि **थीणं** - स्त्रियों के, **अंगपच्चंगसंठाणं** - अंग (मस्तक आदि) तथा (कुच-कक्षादि) को, **चारुल्लवियपेहियं** - बोलने का मनोहर ढंग एवं कटाक्षपूर्वक देखना इत्यादि बातें, **चक्खुगिज्झं** - जो कि चक्षु - इन्द्रिय के विषय हैं उन्हें, **विवज्जए** - वर्जे अर्थात् उन पर दृष्टि पड़ने पर तत्काल दृष्टि पीछी हटा ले, किन्तु रागवश हो कर बार-बार उनकी ओर न देखे तथा निरखें नहीं, टकटकी लगाकर देखे नहीं ॥ ४॥

कूइयं रुइयं गीयं, हसियं थणियकंदियं ।
बंभचेररओ थीणं, सोयगिज्झं विवज्जए ॥ ५ ॥

- **बंभचेररओ** - ब्रह्मचर्य में रत साधु, **थीणं** - स्त्रियों का, **कूइयं**- कोयल के समान मीठा शब्द, **रुइयं** - प्रेममिश्रित रोना, **गीयं** - गाना, **हसियं** - हँसना, **थणियं** - काम विषयक सराग शब्द, **कंदियं** - क्रन्दित एवं विलाप का शब्द, **सोयगिज्झं** - जो श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है, उनको, **विवज्जए** - वर्जे, भींत - पर्दे आदि के अन्तर से भी स्त्रियों के उपरोक्त शब्दों को न सुने ॥ ५ ॥

हासं किड्डुं रइं दप्पं, सहसावित्तासियाणि य ।
बंभचेररओ थीणं, णाणुचिंते कयाइ वि ॥ ६ ॥

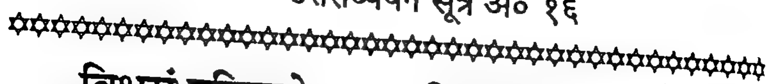
- **बंभचेररओ** - ब्रह्मचर्य में रत साधु, **थीणं** - पहले गृहस्थाश्रम में स्त्रियों के साथ किये गये, **हासं** - हास्य, **किड्डुं** - क्रीड़ा, **रइं** - रति-विषय सेवन, **दप्पं** - दर्प अहंकार, **य** - और, **सहसा** - एकदम, **वित्तासियाणि** - त्रास उत्पन्न करने के लिए की गई क्रिया इत्यादि का, **कयाइ वि** - कदापि, **णाणुचिंते** - चिन्तन न करे अर्थात् पहले भोगे हुए भोगों का स्मरण कभी नहीं करे ॥ ६ ॥

पणीयं भत्तपाणं तु, खिप्पं मयविवड्ढणं ।
बंभचेर रओ भिक्खू, णिच्चसो परिवज्जए ॥ ७ ॥

- **बंभचेररओ** - ब्रह्मचर्य में रत, **भिक्खू** - साधु, **खिप्पं** - शीघ्र ही, **मयविवड्ढणं** - मद (काम) विकार को बढ़ाने वाले, **पणीयं** - गरिष्ठ, **भत्तपाणं** - आहार-पानी को, **णिच्चसो** - सदा के लिए, **परिवज्जए** - वर्जे (त्याग दे) ॥ ७ ॥

धम्मलद्धं मियं काले, जत्तत्थं पणिहाणवं ।
णाइमत्तं तु भुंजेज्जा, बंभचेररओ सया ॥ ८ ॥

- **सया** - सदा, **बंभचेररओ** - ब्रह्मचर्य में रत साधु, **काले**- भिक्षा के समय, **धम्मलद्धं** - शुद्ध एषणा से प्राप्त हुए आहार को, **पणिहाणवं**-चित्त को स्वस्थ रख कर, **जत्तत्थं**-संयम-यात्रा के निर्वाह के लिए, **मियं** - परिमित मात्रा में भोगवे, **तु** - किन्तु, **अइमत्तं** - शास्त्रोक्त परिमाण से अधिक आहार, **ण भुंजेज्जा**- नहीं करे ॥ ८ ॥



विभूसं परिवज्जेज्जा, सरीरपरिमंडणं ।
बंभचेररओ भिक्खू, सिंगारत्थं ण धारए ॥ ९ ॥

- **बंभचेररओ** - ब्रह्मचर्य में रत, **भिक्खू** - साधु, **विभूसं** - शरीर की विभूषा और, **सरीर परिमंडणं** - शरीर संस्कार को, **परिवज्जेज्जा** - छोड़ दे अर्थात् केश-श्मश्रु आदि को न संवारे एवं, **सिंगारत्थं** - श्रृंगार के लिए, **ण धारए** - कोई कार्य न करे ॥ ९ ॥

सद्दे रूवे य गंधे य, रसे फासे तहेव य ।
पंचविहे कामगुणे, णिच्चसो परिवज्जए ॥ १० ॥

- ब्रह्मचारी साधु, **पंचविहे** - पाँच प्रकार के, **कामगुणे** - कामगुण अर्थात् पांच इन्द्रियों के मनोज्ञ विषय, **सद्दे** - शब्द, **रूवे** - रूप, **गंधे** - गन्ध, **रसे** - रस, **य** - और, **तहेव** - इसी प्रकार, **फासे**- स्पर्श इनका, **णिच्चसो** - सदा, **परिवज्जए** - त्याग करे ॥ १० ॥

आलओ थीजणाइण्णो, थीकहा य मणोरमा ।
संथवो चेव णारीणं, तासिं इंदियदरिसणं ॥ ११ ॥
कूइयं रुइयं गीयं, हासभुत्तासियाणि य ।
पणीयं भत्तपाणं च, अइमायं पाणभोयणं ॥ १२ ॥
गत्तभूसणमिट्ठं च, काम-भोगा य दुज्जया ।
णरस्सत्तगवेसिस्स, विसं तालउडं जहा ॥ १३ ॥

- १ **थी जणाइण्णो** - स्त्रियों से व्याप्त, **आलओ** - स्थान, **य** - और, **मणोरमा** - मनोरम (मन को आनन्द देने वाली) २ **थी कहा** - स्त्री-कथा, ३ **णारीणं** - स्त्रियों के साथ, **संथवो** -

☆☆

परिचय, ४ **चेव** - और, **तासिं** - उनकी, **इंदिय दरिसणं** - नाक, आँख आदि इन्द्रियों को देखना, ५ **कूइयं** - कूजित अर्थात् कोयल के समान मीठे शब्द, **रुइयं** - रुदन, **गीयं** - गायन, **हास** - हंसी का शब्द, ६ **य** - और, **भुत्तासियाणि** - पहले भोगे हुए भोगों को, तथा स्त्री के साथ एक आसन पर बैठना आदि कार्यों का स्मरण करना, ७ **च** - तथा, **पणीयं** - गरिष्ठ, **भत्तपाणं** - आहार-पानी का सेवन करना, ८ और, **अइमायं** - शास्त्रोक्त मर्यादा से अधिक, **पाणभोयणं** - आहार-पानी का सेवन करना, ९ **गत्तभूसणं** - शरीर की विभूषा करना, १० **च** - और, **इट्ठं** - मनोज्ञ शब्दादि विषय, **य** - एवं, **दुज्जया** - दुर्जय अर्थात् कठिनाई से जीते जाने योग्य, **कामभोगा** - कामभोग-ये दस बातें, **अत्तगवेसिस्स** - आत्मगवेषी, **णरस्स** - पुरुष के लिए, **तालउडं** - तालपुट, **विसं** - विष के, **जहा**- समान हैं अर्थात् जिस प्रकार तालपुट विष, होठों के भीतर जा कर तालु के लगते ही प्राणों का नाश कर देता है, उसी प्रकार ये पूर्वोक्त दस स्थान संयम रूपी जीवन का नाश करने वाले हैं । इसलिए ब्रह्मचारी पुरुष को इनका सेवन कदापि नहीं करना चाहिए ।। ११-१२-१३ ।।

दुज्जए कामभोगे य, णिच्चसो परिवज्जए ।
संकाठाणाणि सव्वाणि, वज्जेज्जा पणिहाणवं ॥

- **पणिहाणवं** - संयम में एकाग्र मन रखने वाले ब्रह्मचारी पुरुष को चाहिए कि, **दुज्जए** - दुर्जय (कठिनाई से जीते जाने योग्य) **कामभोगे** - कामभोगों को, **णिच्चसो** - सदा के लिए, **परिवज्जए** - त्याग दे, **य** - और, **संकाठाणाणि** - जिन-जिन बातों से ब्रह्मचर्य में किसी प्रकार की हानि पहुँचने की संभावना हो ऐसे

शंका के , **सव्वाणि** – सभी स्थानों को भी, **वज्जेज्जा** – सदैव के लिए त्याग दे ॥ १४॥

धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइमं धम्मसारही ।
धम्मारामे रए दंते, बंभचेर-समाहिए ॥ १५॥

– **धिइमं** – धैर्यवान्, **धम्मसारही** – धर्म रूप रथ को चलाने में सारथि के समान, **धम्मारामे** – पाप के ताप से संतप्त प्राणियों को शान्ति देने वाले धर्म रूपी बगीचे में, **रए** – अनुरक्त, **दंते** - इन्द्रियों को दमन करने वाला, **बंभचेर समाहिए** – ब्रह्मचर्य में समाधिवंत, **भिक्खू** – साधु, **सया** – सदैव, **धम्मारामे** – धर्म (संयम रूपी) बगीचे में ही, **चरे** – रमण करे ॥ १५ ॥

देवदाणवगंधव्वा, जक्ख-रक्खस-किण्णरा ।
बंभयारिं णमंसंति, दुक्करं जे करंति तं ॥ १६॥

– **जे** – जो, **दुक्करं** – दुष्कर ब्रह्मचर्य व्रत का, **करंति** - पालन करता है, **तं** – उस, **बंभयारिं** – ब्रह्मचारी पुरुष को, **देवदाणवगंधव्वा** – वैमानिक और ज्योतिषी देव, दानव-भवनपति देव और गन्धर्व देव तथा, **जक्ख रक्खस किण्णरा** – यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि व्यन्तर जाति के देव इस प्रकार चारों जाति के देव, **णमंसंति** – नमस्कार करते हैं ॥ १६॥

एस धम्मे धुवे णिच्चे,
सासए जिणदेसिए ।
सिद्धा सिज्झंति चाणेणं,
सिज्झिस्संति तहावरे ॥ १७॥ त्ति बेमि ।



- **एस** - यह, **धम्मे** - ब्रह्मचर्य रूप धर्म, **धुवे** - ध्रुव है, **णिच्चे** - नित्य है, **सासए** - शाश्वत है अर्थात् त्रिकाल स्थायी है और, **जिणदेसिए** - जिनेश्वर भगवान् द्वारा कहा हुआ है, **अणेणं** - इसका पालन करने से, **सिद्धा** - अनेक जीव भूतकाल में सिद्ध हुए हैं, **च** - तथा, **सिज्झंति** - वर्तमान काल में सिद्ध हो रहे हैं और, **तहा** - इसी प्रकार, **अवरे** - भविष्यत् काल में भी, **सिज्झिस्संति** - सिद्ध होंगे। **त्तिबेमि** - ऐसा मैं कहता हूँ ॥ १७॥

॥ सोलहवाँ अध्ययन समाप्त॥



पापश्रमणीय नामक सत्तरहवां अध्ययन

जे केइ उ पव्वइए णियंठे,
धम्मं सुणित्ता विणओववण्णे ।
सुदुल्लहं लहिउं बोहिलाभं,
विहरेज्ज पच्छा य जहासुहं तु ॥

– **धम्मं** – श्रुत–चारित्र रूप धर्म को, **सुणित्ता** – सुन कर **विणओववण्णे** – ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपी विनय से युक्त होकर, **सुदुल्लहं** – अत्यन्त दुर्लभ, **बोहिलाभं** – बोधि अर्थात् समकित, **लहिउं** – प्राप्त करके, **जे केइ** – कोई एक, **पव्वइए** – दीक्षा लेकर, **णियंठे** – निर्ग्रंथ बना है, **तु** – किन्तु, **पच्छा** – दीक्षा लेने के बाद, **जहासुहं** – जिस प्रकार सुख प्रतीत हो उस प्रकार स्वच्छन्दता पूर्वक, **विहरेज्जा** – विचरता है अर्थात् कोई–कोई पुरुष पहले तो सिंह की भांति शूरवीर होकर दीक्षा लेता है, किन्तु पीछे श्रृगाल के समान कायर बन जाता है ॥ १ ॥

सेज्जा दढा पाउरणम्मि अत्थि,
उप्पज्जइ भोत्तुं तहेव पाउं ।
जाणामि जं वट्टइ आउसुत्ति,
किं णाम काहामि सुएण भंते ! ॥ २॥

– उपरोक्त रीति से स्वच्छन्दता पूर्वक विचरने वाले मुनि से जब गुरु आदि हितबुद्धि से, शास्त्र अध्ययन के लिए प्रेरणा करते हैं, तब वह उन्हें उत्तर देता है – **भंते** – हे पूज्य गुरुदेव ! रहने के

लिए **मे** - मुझे, **दढा** - दृढ़-वर्षा, धूप, ठंड आदि से रक्षा करने वाला, **सेज्जा** - स्थान, **अत्थि** - मिला हुआ है और, **पाउरणं** - ओढ़ने के लिए वस्त्र भी मेरे पास हैं, **तहेव** - इसी प्रकार, **भोत्तुं** - खाने के लिए आहार और, **पाउं** - पीने के लिए पानी भी, **उप्पज्जइ**- मिल जाता है, **आउसं** - हे आयुष्मन् ! गुरुदेव ! **जं** - वर्तमान काल में जो, **वट्टइ** - हो रहा है उसे, **जाणामि** - मैं जानता हूँ अर्थात् जैसे आप अधिक पढ़ कर भी वर्तमान कालीन भावों को ही जानते हैं और भूत-भविष्यत् के अतीन्द्रिय भावों को नहीं जान सकते, वैसे ही वर्तमान काल के भावों को मैं भी जानता हूँ, **त्ति** - तो फिर, **सुएण** - शास्त्र पढ़ कर, **किं णाम** - क्या, **काहामि** - करूँगा ?

जे केइ उ पव्वइए, णिद्दासीले पगामसो ।
भोच्चा पेच्चा सुहं सुवइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥

- **जे केइ** - जो कोई, **पव्वइए** - दीक्षा लेकर, **पगामसो** - बहुत, **णिद्दासीले** - निद्रालु हो जाता है अर्थात् खूब नींद लेता है एवं, **भोच्चा पेच्चा** - खूब खा-पीकर, **सुहं** - सुख से, **सुवइ** - सो जाता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ ३ ॥

विवेचन - श्रमण मुनि के अठारह ही पापों का त्याग होता हैं किन्तु दीक्षा लेने के बाद जो साधु जो रस लोलुपी बन जाता है । संयम की क्रियाएं यथावत् नहीं करता है तथा पाप स्थानों का सेवन करता है, वह पाप श्रमण कहलाता है ।

आयरिय-उवज्झाएहिं, सुयं विणयं च गाहिए ।
ते चेव खिंसइ बाले, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ ४॥

- **आयरियउवज्झाएहिं** - जिन आचार्य तथा उपाध्यायजी महाराज से, **सुयं** - शास्त्र, **च** - और, **विणयं** - विनय, **गाहिए** - ग्रहण किया है, **ते चेव** - उन्हीं की, **बाले** - जो बाल-अज्ञानी, **खिंसइ** - निन्दा करता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ ४॥

आयरिय-उवज्झायाणं, सम्मं ण पडितप्पइ ।
अपडिपूयए थद्धे, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ ५॥

- **आयरियउवज्झायाणं** - जो आचार्य तथा उपाध्यायजी की, **सम्मं** - सम्यक् प्रकार से, **ण पडितप्पइ** - सेवा नहीं करता और, **अपडिपूयए** - गुणी जनों के एवं अरिहंतादि के गुणग्राम नहीं करता तथा उपकारी पुरुषों के उपकार को नहीं मानता और, **थद्धे** - अभिमान करता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ ५॥

सम्मद्दमाणो पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य ।
असंजए संजयमण्णमाणो, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥

- **पाणाणि** - बेइन्द्रियादि प्राणियों को, **बीयाणि** - बीजों को, **य** - और, **हरियाणि** - हरी वनस्पति को, **सम्मद्दमाणो** - मर्दन करता हुआ अर्थात् चलते समय इनको पैरों तले कुचल कर चलने वाला तथा, **असंजए** - स्वयं असंयत (असंयति) होकर भी अपने आपको, **संजय** - संयत (संयति) **मण्णमाणो** - मानने वाला **पावसमणे त्ति** - पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ ६॥

संथारं फलगं पीढं, णिसिज्जं पाय-कंबलं ।
अप्पमज्जियमारुहइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ ७॥



- **संथारं** - संस्तारक-तृणादि की शय्या, **फलगं** - फलक-बाजोठ (पाटा) **पीढं** - पीढ़ा (आसन) **णिसिज्जं** - स्वाध्याय करने का स्थान तथा, **पायकंबलं** - पाँव पोंछने का वस्त्र, इन सभी पर जो, **अप्पमज्जियं** - बिना पूंजे, **आरुहइ** - बैठता है अर्थात् धर्मोपकरण को बिना पूंजे उपयोग में लेता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ ७ ॥

दवदवस्स चरइ, पमत्ते य अभिक्खणं ।
उल्लंघणे य चंडे य, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ ८ ॥

- **दवदवस्स** - जो ईर्यासमिति का उपयोग रखे बिना अयतना पूर्वक दड़बड़-दड़बड़ शीघ्रता से, **चरइ** - चलता है, **य** - तथा, **पमत्ते** - धर्म-साधना में प्रमाद करता है, **य** - और, **अभिक्खणं** - बारबार, **उल्लंघणे** - मर्यादा का उल्लंघन करता है अथवा बालक आदि का उल्लंघन कर चलता है, **य** - और, **चंडे** - चण्ड-सुशिक्षा देने पर क्रोध करता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ ८ ॥

पडिलेहेइ पमत्ते, अवउज्झइ पाय-कंबलं ।
पडिलेहा-अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ ९ ॥

- **पमत्ते** - जो प्रमाद युक्त हो कर बिना उपयोग, **पडिलेहेइ**- पडिलेहणा करता है और, **पाय कंबलं** - पाँव पोंछने के वस्त्र को अथवा पात्र और कम्बल एवं सभी धर्मोपकरणों को, **अवउज्झइ** - इधर-उधर बिखेरे रखता है और, **पडिलेहा** - पडिलेहणा में, **अणाउत्ते** - उपयोग नहीं रखता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ ९ ॥



पडिलेहेइ पमत्ते, से किंचि हु णिसामिया ।
गुरु-परिभासए णिच्चं, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥

- **पमत्ते** - जो प्रमादी हो कर, **पडिलेहेइ** - पडिलेहणा करता है, **हु** - और, **किंचि** - कुछ विकथा आदि, **णिसामिया** - सुनने में दत्तचित्त रहता है और इसीलिए पडिलेहणा (प्रतिलेखना) के विषय में उपयोग शून्य हो जाता है और गुरु महाराज द्वारा प्रेरणा करने पर, **णिच्चं** - सदैव, **गुरुपरिभासए (गुरु परिभावए)** - गुरु के सामने बोलता है अथवा उनका तिरस्कार करता है या उनके साथ विवाद करता हुआ असभ्य वचन बोलता है कि 'आपने हमको पडिलेहणा करना इसी प्रकार सिखाया था अथवा हम भली प्रकार पडिलेहणा करना नहीं जानते तो आप स्वयं कर लें' इस प्रकार जो बोलता है, **से** - वह, **पावसमणे त्ति** - पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ १० ॥

बहुमाई पमुहरे, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।
असंविभागी अवियत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥

- **बहुमाई** - बहुत छल-कपट करने वाला, **पमुहरे** (पमुहरी) - वाचाल (बहुत बोलने वाला) **थद्धे** - अभिमानी, **लुद्धे** - आसक्ति रखने वाला, **अणिग्गहे** - इन्द्रियों को वश में नहीं करने वाला, **असंविभागी** - आहार का संविभाग न करने वाला, **अवियत्ते** - अप्रीतिकारी एवं साथी साधुओं के साथ प्रेम वात्सल्य का व्यवहार न करने वाला, **पावसमणे त्ति** - पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ ११ ॥



विवादं च उदीरेइ, अहम्मे अत्तपण्णहा ।
वुग्गहे कलहे रत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ १२ ॥

– **विवादं** – जो क्लेश शान्त हो चुका है उसे, **उदीरेइ** – फिर से उत्पन्न करने वाला, **अहम्मे** – सदाचार रहित, **अत्तपण्णहा**– आत्मा के अस्तित्व एवं परलोकादि के प्रश्न का नाश करने वाला अथवा कुतर्कों द्वारा अपनी और दूसरों की बुद्धि को मलिन बनाने वाला और, **वुग्गहे** – विग्रह–दंडादि द्वारा लड़ाई करने वाला तथा, **कलहे** – वचन द्वारा कलह करने वाला, **पावसमणे त्ति** – पापश्रमण, **वुच्चइ** – कहलाता है ॥ १२ ॥

अथिरासणे कुक्कुइए, जत्थ–तत्थ णिसीयइ ।
आसणम्मि अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥

– **अथिरासणे** – अस्थिर आसन वाला, **कुक्कुइए** – कुचेष्टा करने वाला अथवा अयतना पूर्वक हाथ–पाँव इधर–उधर हिलाने वाला **जत्थ तत्थ** – सचित्त–अचित्त का विचार किये बिना जहाँ–तहाँ, **णिसीयइ** – बैठ जाने वाला और, **आसणम्मि** – आसनादि के विषय में, **अणाउत्ते** – उपयोग न रखने वाला, **पावसमणे त्ति** – पापश्रमण, **वुच्चइ** – कहलाता है ॥ १३ ॥

ससरक्खपाए सुवइ, सेज्जं ण पडिलेहइ ।
संथारए अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ १४ ॥

– **ससरक्खपाए** – जो सचित्त रज से भरे हुए पाँव को पूंजे बिना ही, **सेज्जं** – शय्या की, **ण पडिलेहइ** – प्रतिलेखना भी नहीं करता है तथा, **संथारए** – संस्तारक के विषय में, **अणाउत्ते** –

उपयोग नहीं रखता है ऐसा साधु, **पावसमणे त्ति** - पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ १४॥

दुद्ध-दही-विगईओ, आहारेइ अभिक्खणं ।
अरए य तवोकम्मे, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ १५॥

- **दुद्ध-दही-विगईओ** - दूध, दही आदि विगयों का, **अभिक्खणं** - जो बारबार, **आहारेइ** - आहार करता है, **य** - और इसीलिए, **तवोकम्मे** - तपस्या करने में, **अरए** - अरत-जो अप्रीति रखता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ १५ ॥

विवेचन - ठाणाङ्ग सूत्र के पांचवें ठाणे में पांच प्रकार के विगय (विगइ-विकृति) बताये गये हैं यथा - दूध, दही, घी, तेल, मीठा । साधु साध्वी को प्रतिदिन पांचों विगयों का सेवन नहीं करना चाहिये । पांच विगय में "दही" का नाम भी है । इससे स्पष्ट होता है कि दही अचित्त है । उसमें जीव नहीं होते । इसी प्रकार दही के साथ मूंग, मोठ, चने आदि की दाल और बेसन का सम्मिश्रण हो जाने पर भी जीव उत्पन्न नहीं होते हैं । द्वि दल में जो 'जीवों की उत्पत्ति होती है' यह मान्यता आगम सम्मत्त नहीं है । इसी प्रकार २२ प्रकार के अभक्ष्य की मान्यता भी आगम सम्मत्त नहीं है । वैसे निश्चय नय की अपेक्षा तो जीव का स्वभाव तो अनाहारक (किसी प्रकार का आहार नहीं लेना) होना है । सिद्ध भगवान् अनाहारक हैं । इस दृष्टि से जीव के लिये सब पदार्थ अभक्ष्य हैं । किन्तु जब तक संसारी है, शरीर धारी है । तब तक शरीर निर्वाह के लिये उसे आहार लेना पड़ता



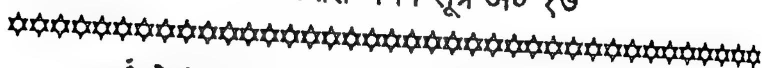
है उसमें अल्प पाप और महापाप का विवेक तो जिनवचनानुरागी बुद्धिमान् को करना ही चाहिये । जो वैज्ञानिकों का नाम लेकर दही में ''बैक्टेरिया'' नामक जीव बतलाते हैं (दुर्बीन के द्वारा) यह उनका भ्रम है । वह तो दही के अंश रूप रेशे दिखाई देते हैं । जैसे धूप में उड़ते हुए रजकण दिखाई देते हैं किन्तु वे जीव नहीं हैं । जीव की तरह पुद्गल भी गति करता है । वे दही में नीचे ऊपर होते रहते हैं ।

अत्थंतम्मि य सूरम्मि, आहारेइ अभिक्खणं ।
चोइओ पडिचोएइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ १६ ॥

- **सूरम्मि** - सूर्य के, **अत्थंतम्मि** - अस्त होने तक जो, **अभिक्खणं** - बार-बार, **आहारेइ** - आहार करता है अर्थात् प्रातःकाल से संध्या तक आहार करने में ही लगा रहता है, **य** - और, **चोइओ** - ऐसा न करने के लिए अथवा तपस्यादि करने के लिए गुरु महाराज द्वारा प्रेरणा करने पर, **पडिचोएइ** - उनके वचन का अनादर करते हुए प्रत्युत्तर देता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ १६ ॥

आयरियपरिच्चाई, परपासंड-सेवए ।
गाणं-गणिए दुब्भूए, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥

- **आयरिय परिच्चाई** - आचार्य महाराज को छोड़ कर, **परपासंड सेवए** - अन्यमत में जाने वाला, **गाणं-गणिए** - छह महीनों के भीतर एक गच्छ को छोड़ कर दूसरे गच्छ में जाने वाला, **दुब्भूए** - दुर्भूत-निन्दनीय साधु, **पावसमणे त्ति** - पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ १७ ॥



सयं गेहं परिच्चज्ज, परगेहंसि वावरे ।
णिमित्तेण य ववहरइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥

- **सयं** - अपना, **गेहं** - घर अर्थात् गृहस्थाश्रम, **परिच्चज्ज** - छोड़ कर जो संयमी बना है, फिर भी रसलोलुपी होकर जो, **परगेहंसि** - गृहस्थों के घरों में, **वावरे** - फिरता है और गृहस्थ के कार्य करता है **य** - और, **णिमित्तेण** - शुभाशुभादि निमित्त-विद्या बता कर, **ववहरइ** - द्रव्य उपार्जन करता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ १८ ॥

सण्णाइपिंडं जेमेइ, णेच्छइ सामुदाणियं ।
गिहिणिसेज्जं च वाहेइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥

- **सण्णाइपिंडं** - जो स्वज्ञातिपिंड अर्थात् अपनी जाति एवं सगे-सम्बन्धियों के घर से ही, **जेमेइ** - आहार लेता है किन्तु, **सामुदाणियं** - सामुदानिकी भिक्षा, **णेच्छइ** - नहीं लेना चाहता, **च** - और, **गिहिणिसेज्जं** - गृहस्थ की शय्या पर, **वाहेइ** - बैठता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ १९ ॥

एयारिसे पंचकुसीलसंवुडे,
रूवंधरे मुणिपवराण हेट्ठिमे ।
अयंसि लोए विसमेव गरहिए,
ण से इहं णेव परत्थ लोए ॥ २० ॥

- **एयारिसे** - इस प्रकार, **पंचकुसीलसंवुडे** - पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील, संसक्त और स्वच्छन्द, इन पाँच प्रकार के कुशीलों का अनुसरण करने वाला, संवर से रहित - **रूवंधरे** -

मुनि का वेष धारण करने वाला, **मुणिपवराण** - श्रेष्ठ मुनियों में, **हेट्ठिमे** - हीन अर्थात् संयम का यथावत् पालन करने वाले मुनियों की अपेक्षा हीन, **से** - वह मुनि, **अयंसि** - इस, **लोए** - लोक में, **विसमेव** - विष (जहर) के समान, **गरहिए** - निन्दनीय होता है और, **ण इहं**- उसका न तो यह लोक सुधरता है और, **णेव परत्थ लोए** - न परलोक सुधरता है अर्थात् उसके दोनों लोक बिगड़ जाते हैं ॥ २० ॥

विवेचन - पापश्रमण को इस गाथा में "**पंचकुसील संवुडे**" कहा है । जो साधु की समाचारी का बराबर पालन नहीं करता उसे कुशील (संवृत) श्रमण कहते हैं । उसके पांच भेद हैं वे इस प्रकार हैं -

१. पासत्थ (पार्श्वस्थ या पासस्थ) - जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और प्रवचन में सम्यग् उपयोग वाला नहीं है । ज्ञानादि के समीप रहकर भी जो उन्हें अपनाता नहीं हैं । वह पासस्थ (पार्श्वस्थ) कहलाता है ।

२. ओसन्न (अवसन्न) - जो एक पक्ष के अन्दर पीठ फलक आदि बन्धन खोल कर उनकी पडिलेहणा नहीं करता अथवा बार-बार सोने के लिए संथारा बिछाये रखता हैं तथा जो स्थापना आदि दोष से दूषित आहार आदि लेता है जो साधु समाचारी का पालन करते हुए थक गया है वह सर्वअवसन्न या देश अवसन्न कहलाता है ।

३. कुशील - कुत्सित अर्थात् निन्दनीय शील आचार वाले साधु को कुशील कहते हैं । ज्ञान कुशील, दर्शन कुशील व चारित्र कुशील के भेद से यह तीन प्रकार का है ।



४. संसक्त – मूल गुण और उत्तर गुण तथा इनके जितने दोष हैं वे सभी जिसमें मिले रहते हैं । उसे संसक्त श्रमण कहते हैं।

५. यथाच्छन्द – जो अपनी इच्छानुसार उत्सूत्र (सूत्र विपरीत) प्ररूपणा और आचरण करता है ऐसे स्वच्छन्दाचारी साधु को यथाच्छन्द कहते हैं ।

जे वज्जए एए सया उ दोसे,
से सुव्वए होइ मुणीण-मज्झे ।
अयंसि लोए अमयं व पूइए,
आराहए लोगमिणं तहापरं ॥ २१ ॥ त्तिबेमि ॥

– **जे** – जो मुनि, **एए** – इन उपरोक्त, **दोसे** – दोषों को, **सया** – सदा के लिए, **वज्जए** – छोड़ देता है, **से** – वह, **मुणीण मज्झे** – मुनियों में, **सुव्वए** – सुव्रत–सुन्दर व्रत वाला अर्थात् श्रेष्ठ मुनि, **होइ** – होता है, **अयंसि** – इस, **लोए** – लोक में, **अमयं व** – अमृत के समान, **पूइए** – पूजनीय होता है, **तहा** – इस प्रकार, **इणं** – इस लोक और, **परं लोगं** – परलोक दोनों की, **आराहए** – वह सम्यक् आराधना करता है । **त्तिबेमि** – ऐसा मैं कहता हूँ ॥ २१ ॥

॥ सत्तरहवां अध्ययन समाप्त ॥



'संयतीय' नामक अठारहवाँ अध्ययन

कंपिल्ले णयरे राया, उदिण्ण-बलवाहणे ।
णामेणं संजओ णामं, मिग्गवं उवणिग्गए ॥ १ ॥

- **कंपिल्ले** - कम्पिलपुर, **णयरे** - नगर में, **उदिण्णबलवाहणे** - विस्तीर्ण सेना तथा हाथी घोड़े और वाहनादि युक्त, **णामेणं संजओ (संजए) णामं** - संजय (संयति) नाम का, **राया** - राजा राज्य करता था । एक बार वह, **मिग्गवं** - मृगया-शिकार खेलने के लिए, **उवणिग्गए** - नगर से बाहर निकला ॥ १ ॥

हयाणीए गयाणीए रहाणीए तहेव य ।
पायत्ताणीए महया, सव्वओ परिवारिए ॥ २ ॥
मिए छुहित्ता हयगओ, कंपिल्लुज्जाण-केसरे ।
भीए संते मिए तत्थ, वहेइ रसमुच्छिए ॥ ३ ॥

- **हयाणीए** - हयानीक (घोड़ों की सेना) **गयाणीए** - गजानीक (हाथियों की सेना), **तहेव** - तथा, **रहाणीए** - रथानीक (रथों की सेना) **य** - और, **पायत्ताणीए** - पदाति अनीक (पैदल सेना) इन चार प्रकार की, **महया** - बड़ी सेनाओं से, **सव्वओ** - चारों ओर से, **परिवारिए** - घिरा हुआ वह राजा, **हयगओ** - घोड़े पर सवार होकर, **कंपिल्लुज्जाण केसरे** - कम्पिलपुर के केसर नामक उद्यान में पहुँचा और, **रसमुच्छिए** - रसमूर्छित अर्थात् मांस खाने में गृद्ध बना हुआ वह संजय राजा, **तत्थ** - उस उद्यान में,



मिए - हिरणों को, **छुहित्ता** - क्षुभित कर के, **भीए** - भयभीत बने हुए, तथा, **संते** - श्रान्त-थके हुए, **मिए** - हिरणों को, **वहेइ** - मारने लगा ॥ २-३ ॥

अह केसरम्मि उज्जाणे, अणगारे तवोधणे ।
सज्झायज्झाणसंजुत्ते, धम्मज्झाणं झियायइ ॥ ४ ॥

- **अह** - उस, **केसरम्मि** - केसर नाम के, **उज्जाणे** - उद्यान में, **तवोधणे** - तपोधनी, **सज्झायज्झाण संजुत्ते** - स्वाध्याय और ध्यान में लगे हुए, **अणगारे** - एक अनगार महात्मा **धम्मज्झाणं** - धर्मध्यान, **झियायइ** - ध्याते थे ॥ ४ ॥

अप्फोवमंडवम्मि, झायइ खवियासवे ।
तस्सागए मिगे पासं, वहेइ से णराहिवे ॥ ५ ॥

- **खवियासवे** - कर्मबन्ध के हेतु स्वरूप हिंसादि आस्रवों का क्षय करने वाले वे महात्मा, **अप्फोवमंडवम्मि** - वृक्ष-गुच्छ-गुल्म-लताओं से युक्त तथा नागरवेल आदि से आच्छादित मंडप में, **झायइ** - ध्यान कर रहे थे, **मिगे** - राजा से भयभीत हुए कुछ मृग दौड़ कर, **तस्स** - उन मुनि के, **पासं** - पास, **आगए** - चले आये किन्तु, **से** - वह, **णराहिवे** - नराधिप (राजा), **वहेइ** - उन मृगों पर भी बाण चला कर मारने लगा ॥ ५ ॥

अह आसगओ राया, खिप्पमागम्म सो तहिं ।
हए मिए उ पासित्ता, अणगारं तत्थ पासइ ॥ ६ ॥

- **अह** - इसके बाद, **आसगओ** - घोड़े पर बैठा हुआ, **सो** - वह, **राया** - राजा, **खिप्पं** - शीघ्र, **तहिं** - वहाँ, **आगम्म** -

परिचय, ४ **चेव** - और, **तासिं** - उनकी, **इंदिय दरिसणं** - नाक, आँख आदि इन्द्रियों को देखना, ५ **कूइयं** - कूजित अर्थात् कोयल के समान मीठे शब्द, **रुइयं** - रुदन, **गीयं** - गायन, **हास** - हंसी का शब्द, ६ **य** - और, **भुत्तासियाणि** - पहले भोगे हुए भोगों को, तथा स्त्री के साथ एक आसन पर बैठना आदि कार्यों का स्मरण करना, ७ **च** - तथा, **पणीयं** - गरिष्ठ, **भत्तपाणं** - आहार-पानी का सेवन करना, ८ और, **अइमायं** - शास्त्रोक्त मर्यादा से अधिक, **पाणभोयणं** - आहार-पानी का सेवन करना, ९ **गत्तभूसणं** - शरीर की विभूषा करना, १० **च** - और, **इट्ठं** - मनोज्ञ शब्दादि विषय, **य** - एवं, **दुज्जया** - दुर्जय अर्थात् कठिनाई से जीते जाने योग्य, **कामभोगा** - कामभोग-ये दस बातें, **अत्तगवेसिस्स** - आत्मगवेषी, **णरस्स** - पुरुष के लिए, **तालउडं** - तालपुट, **विसं** - विष के, **जहा**- समान हैं अर्थात् जिस प्रकार तालपुट विष, होठों के भीतर जा कर तालु के लगते ही प्राणों का नाश कर देता है, उसी प्रकार ये पूर्वोक्त दस स्थान संयम रूपी जीवन का नाश करने वाले हैं । इसलिए ब्रह्मचारी पुरुष को इनका सेवन कदापि नहीं करना चाहिए ।।११-१२-१३ ।।

दुज्जए कामभोगे य, णिच्चसो परिवज्जए ।
संकाठाणाणि सव्वाणि, वज्जेज्जा पणिहाणवं ॥

- **पणिहाणवं** - संयम में एकाग्र मन रखने वाले ब्रह्मचारी पुरुष को चाहिए कि, **दुज्जए** - दुर्जय (कठिनाई से जीते जाने योग्य) **कामभोगे** - कामभोगों को, **णिच्चसो** - सदा के लिए, **परिवज्जए** - त्याग दे, **य** - और, **संकाठाणाणि** - जिन-जिन बातों से ब्रह्मचर्य में किसी प्रकार की हानि पहुँचने की संभावना हो ऐसे

शंका के, **सव्वाणि** – सभी स्थानों को भी, **वज्जेज्जा** – सदैव के लिए त्याग दे ॥ १४॥

धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइमं धम्मसारही ।
धम्मारामे रए दंते, बंभचेर-समाहिए ॥ १५॥

– **धिइमं** – धैर्यवान्, **धम्मसारही** – धर्म रूप रथ को चलाने में सारथि के समान, **धम्मारामे** – पाप के ताप से संतप्त प्राणियों को शान्ति देने वाले धर्म रूपी बगीचे में, **रए** – अनुरक्त, **दंते** - इन्द्रियों को दमन करने वाला, **बंभचेर समाहिए** – ब्रह्मचर्य में समाधिवंत, **भिक्खू** – साधु, **सया** – सदैव, **धम्मारामे** – धर्म (संयम रूपी) बगीचे में ही, **चरे** – रमण करे ॥ १५ ॥

देवदाणवगंधव्वा, जक्ख-रक्खस-किण्णरा ।
बंभयारिं णमंसंति, दुक्करं जे करंति तं ॥ १६॥

– **जे** – जो, **दुक्करं** – दुष्कर ब्रह्मचर्य व्रत का, **करंति** - पालन करता है, **तं** – उस, **बंभयारिं** – ब्रह्मचारी पुरुष को, **देवदाणवगंधव्वा** – वैमानिक और ज्योतिषी देव, दानव-भवनपति देव और गन्धर्व देव तथा, **जक्ख रक्खस किण्णरा** – यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि व्यन्तर जाति के देव इस प्रकार चारों जाति के देव, **णमंसंति** – नमस्कार करते हैं ॥ १६ ॥

एस धम्मे धुवे णिच्चे,
सासए जिणदेसिए ।
सिद्धा सिज्झंति चाणेणं,
सिज्झिस्संति तहावरे ॥ १७॥ त्ति बेमि ।



- **एस** - यह, **धम्मे** - ब्रह्मचर्य रूप धर्म, **धुवे** - ध्रुव है, **णिच्चे** - नित्य है, **सासए** - शाश्वत है अर्थात् त्रिकाल स्थायी है और, **जिणदेसिए** - जिनेश्वर भगवान् द्वारा कहा हुआ है, **अणेणं** - इसका पालन करने से, **सिद्धा** - अनेक जीव भूतकाल में सिद्ध हुए हैं, **च** - तथा, **सिज्झंति** - वर्तमान काल में सिद्ध हो रहे हैं और, **तहा** - इसी प्रकार, **अवरे** - भविष्यत् काल में भी, **सिज्झिस्संति** - सिद्ध होंगे । **त्तिबेमि** - ऐसा मैं कहता हूँ ॥ १७॥

।। सोलहवाँ अध्ययन समाप्त॥



पापश्रमणीय नामक सत्तरहवां अध्ययन

जे केइ उ पव्वइए णियंठे,
धम्मं सुणित्ता विणओववण्णे ।
सुदुल्लहं लहिउं बोहिलाभं,
विहरेज्ज पच्छा य जहासुहं तु ॥

– **धम्मं** – श्रुत–चारित्र रूप धर्म को, **सुणित्ता** – सुन कर **विणओववण्णे** – ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपी विनय से युक्त होकर, **सुदुल्लहं** – अत्यन्त दुर्लभ, **बोहिलाभं** – बोधि अर्थात् समकित, **लहिउं** – प्राप्त करके, **जे केइ** – कोई एक, **पव्वइए** – दीक्षा लेकर, **णियंठे** – निर्ग्रंथ बना है, **तु** – किन्तु, **पच्छा** – दीक्षा लेने के बाद, **जहासुहं** – जिस प्रकार सुख प्रतीत हो उस प्रकार स्वच्छन्दता पूर्वक, **विहरेज्जा** – विचरता है अर्थात् कोई–कोई पुरुष पहले तो सिंह की भांति शूरवीर होकर दीक्षा लेता है, किन्तु पीछे श्रृगाल के समान कायर बन जाता है ॥ १ ॥

सेज्जा दढा पाउरणम्मि अत्थि,
उप्पज्जइ भोत्तुं तहेव पाउं ।
जाणामि जं वट्टइ आउसुत्ति,
किं णाम काहामि सुएण भंते ! ॥ २ ॥

– उपरोक्त रीति से स्वच्छन्दता पूर्वक विचरने वाले मुनि से जब गुरु आदि हितबुद्धि से, शास्त्र अध्ययन के लिए प्रेरणा करते हैं, तब वह उन्हें उत्तर देता है – **भंते** – हे पूज्य गुरुदेव ! रहने के



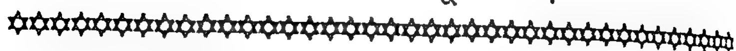
लिए **मे** - मुझे, **दढा** - दृढ़-वर्षा, धूप, ठंड आदि से रक्षा करने वाला, **सेज्जा** - स्थान, **अत्थि** - मिला हुआ है और, **पाउरणं** - ओढ़ने के लिए वस्त्र भी मेरे पास हैं, **तहेव** - इसी प्रकार, **भोत्तुं** - खाने के लिए आहार और, **पाउं** - पीने के लिए पानी भी, **उप्पज्जइ**- मिल जाता है, **आउसं** - हे आयुष्मन् ! गुरुदेव ! **जं** - वर्तमान काल में जो, **वट्टइ** - हो रहा है उसे, **जाणामि** - मैं जानता हूँ अर्थात् जैसे आप अधिक पढ़ कर भी वर्तमान कालीन भावों को ही जानते हैं और भूत-भविष्यत् के अतीन्द्रिय भावों को नहीं जान सकते, वैसे ही वर्तमान काल के भावों को मैं भी जानता हूँ, **त्ति** - तो फिर, **सुएण** - शास्त्र पढ़ कर, **किं णाम** - क्या, **काहामि** - करूँगा ?

जे केइ उ पव्वइए, णिद्दासीले पगामसो ।
भोच्चा पेच्चा सुहं सुवइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥

- **जे केइ** - जो कोई, **पव्वइए** - दीक्षा लेकर, **पगामसो** - बहुत, **णिद्दासीले** - निद्रालु हो जाता है अर्थात् खूब नींद लेता है एवं, **भोच्चा पेच्चा** - खूब खा-पीकर, **सुहं** - सुख से, **सुवइ** - सो जाता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ ३ ॥

विवेचन - श्रमण मुनि के अठारह ही पापों का त्याग होता हैं किन्तु दीक्षा लेने के बाद जो साधु जो रस लोलुपी बन जाता है । संयम की क्रियाएं यथावत् नहीं करता है तथा पाप स्थानों का सेवन करता है, वह पाप श्रमण कहलाता है ।

आयरिय-उवज्झाएहिं, सुयं विणयं च गाहिए ।
ते चेव खिंसइ बाले, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ ४॥



- आयरियउवज्झाएहिं - जिन आचार्य तथा उपाध्यायजी महाराज से, **सुयं** - शास्त्र, **च** - और, **विणयं** - विनय, गाहिए - ग्रहण किया है, **ते चेव** - उन्हीं की, **बाले** - जो बाल-अज्ञानी, **खिंसइ** - निन्दा करता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ ४ ॥

आयरिय-उवज्झायाणं, सम्मं ण पडितप्पइ ।
अपडिपूयए थद्धे, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ ५ ॥

- आयरियउवज्झायाणं - जो आचार्य तथा उपाध्यायजी की, **सम्मं** - सम्यक् प्रकार से, **ण पडितप्पइ** - सेवा नहीं करता और, **अपडिपूयए** - गुणी जनों के एवं अरिहंतादि के गुणग्राम करता तथा उपकारी पुरुषों के उपकार को नहीं मानता , **थद्धे** - अभिमान करता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ ५ ॥

सम्मद्दमाणो पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य ।
असंजए संजयमण्णमाणो, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥

- पाणाणि - बेइन्द्रियादि प्राणियों को, **बीयाणि** - बीजों को, **य** - और, **हरियाणि** - हरी वनस्पति को, **सम्मद्दमाणो** - मर्दन करता हुआ अर्थात् चलते समय इनको पैरों तले कुचल कर चलने वाला तथा, **असंजए** - स्वयं असंयत (असंयति) होकर भी अपने आपको, **संजय** - संयत (संयति) **मण्णमाणो** - मानने वाला **पावसमणे त्तिं** - पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ ६ ॥

संथारं फलगं पीढं, णिसिज्जं पाय-कंबलं ।
अप्पमज्जियमारुहइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ ७ ॥



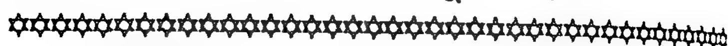
- **संथारं** - संस्तारक-तृणादि की शय्या, **फलगं** - फलक-बाजोठ (पाटा) **पीढं** - पीढ़ा (आसन) **णिसिज्जं** - स्वाध्याय करने का स्थान तथा, **पायकंबलं** - पाँव पोंछने का वस्त्र, इन सभी पर जो, **अप्पमज्जियं** - बिना पूंजे, **आरुहइ** - बैठता है अर्थात् धर्मोपकरण को बिना पूंजे उपयोग में लेता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ ७ ॥

दवदवस्स चरइ, पमत्ते य अभिक्खणं ।
उल्लंघणे य चंडे य, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ ८ ॥

- **दवदवस्स** - जो ईर्यासमिति का उपयोग रखे बिना अयतना पूर्वक दड़बड़-दड़बड़ शीघ्रता से, **चरइ** - चलता है, **य** - तथा, **पमत्ते** - धर्म-साधना में प्रमाद करता है, **य** - और, **अभिक्खणं** - बारबार, **उल्लंघणे** - मर्यादा का उल्लंघन करता है अथवा बालक आदि का उल्लंघन कर चलता है, **य** - और, **चंडे** - चण्ड-सुशिक्षा देने पर क्रोध करता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ ८ ॥

पडिलेहेइ पमत्ते, अवउज्झइ पाय-कंबलं ।
पडिलेहा-अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ ९ ॥

- **पमत्ते** - जो प्रमाद युक्त हो कर बिना उपयोग, **पडिलेहेइ**- पडिलेहणा करता है और, **पाय कंबलं** - पाँव पोंछने के वस्त्र को अथवा पात्र और कम्बल एवं सभी धर्मोपकरणों को, **अवउज्झइ** - इधर-उधर बिखेरे रखता है और, **पडिलेहा** - पडिलेहणा में, **अणाउत्ते** - उपयोग नहीं रखता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ ९ ॥



पडिलेहेइ पमत्ते, से किंचि हु णिसामिया ।

गुरु-परिभासए णिच्चं, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥

- **पमत्ते** - जो प्रमादी हो कर, **पडिलेहेइ** - पडिलेहणा करता है, **हु** - और, **किंचि** - कुछ विकथा आदि, **णिसामिया** - सुनने में दत्तचित्त रहता है और इसीलिए पडिलेहणा (प्रतिलेखना) के विषय में उपयोग शून्य हो जाता है और गुरु महाराज द्वारा प्रेरणा करने पर, **णिच्चं** - सदैव, **गुरुपरिभासए (गुरु परिभावए)** - गुरु के सामने बोलता है अथवा उनका तिरस्कार करता है या उनके साथ विवाद करता हुआ असभ्य वचन बोलता है कि 'आपने हमको पडिलेहणा करना इसी प्रकार सिखाया था अथवा हम भली प्रकार पडिलेहणा करना नहीं जानते तो आप स्वयं कर लें' इस प्रकार जो बोलता है, **से** - वह, **पावसमणे त्ति** - पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ १० ॥

बहुमाई पमुहरे, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।

असंविभागी अवियत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥

- **बहुमाई** - बहुत छल-कपट करने वाला, **पमुहरे (पमुहरी)** - वाचाल (बहुत बोलने वाला) **थद्धे** - अभिमानी, **लुद्धे** - आसक्ति रखने वाला, **अणिग्गहे** - इन्द्रियों को वश में नहीं करने वाला, **असंविभागी** - आहार का संविभाग न करने वाला, **अवियत्ते** - अप्रीतिकारी एवं साथी साधुओं के साथ प्रेम वात्सल्य का व्यवहार न करने वाला, **पावसमणे त्ति** - पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ ११ ॥



विवादं च उदीरेइ, अहम्मे अत्तपण्णहा ।
वुग्गहे कलहे रत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ १२ ॥

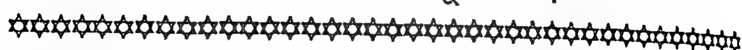
- **विवादं** - जो क्लेश शान्त हो चुका है उसे, **उदीरेइ** - फिर से उत्पन्न करने वाला, **अहम्मे** - सदाचार रहित, **अत्तपण्णहा**- आत्मा के अस्तित्व एवं परलोकादि के प्रश्न का नाश करने वाला अथवा कुतर्कों द्वारा अपनी और दूसरों की बुद्धि को मलिन बनाने वाला और, **वुग्गहे** - विग्रह-दंडादि द्वारा लड़ाई करने वाला तथा, **कलहे** - वचन द्वारा कलह करने वाला, **पावसमणे त्ति** - पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ १२ ॥

अथिरासणे कुक्कुइए, जत्थ-तत्थ णिसीयइ ।
आसणम्मि अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥

- **अथिरासणे** - अस्थिर आसन वाला, **कुक्कुइए** - कुचेष्टा करने वाला अथवा अयतना पूर्वक हाथ-पाँव इधर-उधर हिलाने वाला **जत्थ तत्थ** - सचित्त-अचित्त का विचार किये बिना जहाँ-तहाँ, **णिसीयइ** - बैठ जाने वाला और, **आसणम्मि** - आसनादि के विषय में, **अणाउत्ते** - उपयोग न रखने वाला, **पावसमणे त्ति** - पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ १३ ॥

ससरक्खपाए सुवइ, सेज्जं ण पडिलेहइ ।
संथारए अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ १४ ॥

- **ससरक्खपाए** - जो सचित्त रज से भरे हुए पाँव को पूंजे बिना ही, **सेज्जं** - शय्या की, **ण पडिलेहइ** - प्रतिलेखना भी नहीं करता है तथा, **संथारए** - संस्तारक के विषय में, **अणाउत्ते** -



उपयोग नहीं रखता है ऐसा साधु, **पावसमणे त्ति** - पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ १४ ॥

दुद्ध-दही-विगईओ, आहारेइ अभिक्खणं ।
अरए य तवोकम्मे, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ १५ ॥

- **दुद्ध-दही-विगईओ** - दूध, दही आदि विगयों का, **अभिक्खणं** - जो बारबार, **आहारेइ** - आहार करता है, **य** - और इसीलिए, **तवोकम्मे** - तपस्या करने में, **अरए** - अरत-जो अप्रीति रखता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है ॥ १५ ॥

विवेचन - ठाणाङ्ग सूत्र के पांचवें ठाणे में पांच प्रकार के विगय (विगइ-विकृति) बताये गये हैं यथा - दूध, दही, घी, तेल, मीठा । साधु साध्वी को प्रतिदिन पांचों विगयों का सेवन नहीं करना चाहिये । पांच विगय में "दही" का नाम भी है । इससे स्पष्ट होता है कि दही अचित्त है । उसमें जीव नहीं होते । इसी प्रकार दही के साथ मूंग, मोठ, चने आदि की दाल और बेसन का सम्मिश्रण हो जाने पर भी जीव उत्पन्न नहीं होते हैं । द्वि दल में जो 'जीवों की उत्पत्ति होती है' यह मान्यता आगम सम्मत्त नहीं है । इसी प्रकार २२ प्रकार के अभक्ष्य की मान्यता भी आगम सम्मत्त नहीं है । वैसे निश्चय नय की अपेक्षा तो जीव का स्वभाव तो अनाहारक (किसी प्रकार का आहार नहीं लेना) होना है । सिद्ध भगवान् अनाहारक हैं । इस दृष्टि से जीव के लिये सब पदार्थ अभक्ष्य हैं । किन्तु जब तक संसारी है, शरीर धारी है । तब तक शरीर निर्वाह के लिये उसे आहार लेना पड़ता



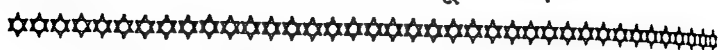
है उसमें अल्प पाप और महापाप का विवेक तो जिनवचनानुरागी बुद्धिमान् को करना ही चाहिये । जो वैज्ञानिकों का नाम लेकर दही में "बैक्टेरिया" नामक जीव बतलाते हैं (दुर्बीन के द्वारा) यह उनका भ्रम है । वह तो दही के अंश रूप रेशे दिखाई देते हैं । जैसे धूप में उड़ते हुए रजकण दिखाई देते हैं किन्तु वे जीव नहीं हैं । जीव की तरह पुद्गल भी गति करता है । वे दही में नीचे ऊपर होते रहते हैं ।

अत्थंतम्मि य सूरम्मि, आहारेइ अभिक्खणं ।
चोइओ पडिचोएइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥ १६ ॥

– **सूरम्मि** – सूर्य के, **अत्थंतम्मि** – अस्त होने तक जो, **अभिक्खणं** – बार-बार, **आहारेइ** – आहार करता है अर्थात् प्रातःकाल से संध्या तक आहार करने में ही लगा रहता है, **य** – और, **चोइओ** – ऐसा न करने के लिए अथवा तपस्यादि करने के लिए गुरु महाराज द्वारा प्रेरणा करने पर, **पडिचोएइ** – उनके वचन का अनादर करते हुए प्रत्युत्तर देता है, **पावसमणे त्ति** – वह पापश्रमण, **वुच्चइ** – कहलाता है ॥ १६ ॥

आयरियपरिच्चाई, परपासंड-सेवए ।
गाणंगणिए दुब्भूए, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥

– **आयरिय परिच्चाई** – आचार्य महाराज को छोड़ कर, **परपासंड सेवए** – अन्यमत में जाने वाला, **गाणं-गणिए** – छह महीनों के भीतर एक गच्छ को छोड़ कर दूसरे गच्छ में जाने वाला, **दुब्भूए** – दुर्भूत-निन्दनीय साधु, **पावसमणे त्ति** – पापश्रमण, **वुच्चइ** – कहलाता है ॥ १७॥



सयं गेहं परिच्चज्ज, परगेहंसि वावरे ।
णिमित्तेण य ववहरइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥

– **सयं** – अपना, **गेहं** – घर अर्थात् गृहस्थाश्रम, **परिच्चज्ज** - छोड़ कर जो संयमी बना है, फिर भी रसलोलुपी होकर जो, **परगेहंसि** – गृहस्थों के घरों में, **वावरे** – फिरता है और गृहस्थ के कार्य करता है **य** – और, **णिमित्तेण** – शुभाशुभादि निमित्त-विद्या बता कर, **ववहरइ** – द्रव्य उपार्जन करता है, **पावसमणे त्ति** - वह पापश्रमण, **वुच्चइ** – कहलाता है ॥ १८ ॥

सण्णाइपिंडं जेमेइ, णेच्छइ सामुदाणियं ।
गिहिणिसेज्जं च वाहेइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥

– **सण्णाइपिंडं** – जो स्वज्ञातिपिंड अर्थात् अपनी जाति एवं सगे-सम्बन्धियों के घर से ही, **जेमेइ** – आहार लेता है किन्तु **सामुदाणियं** – सामुदानिकी भिक्षा, **णेच्छइ** – नहीं लेना चाहता **च** – और, **गिहिणिसेज्जं** – गृहस्थ की शय्या पर, **वाहेइ** – बैठता है, **पावसमणे त्ति** – वह पापश्रमण, **वुच्चइ** – कहलाता है ॥ १९

एयारिसे पंचकुसीलसंवुडे,
रूवंधरे मुणिपवराण हेट्ठिमे ।
अयंसि लोए विसमेव गरहिए,
ण से इहं णेव परत्थ लोए ॥ २० ॥

– **एयारिसे** – इस प्रकार, **पंचकुसीलसंवुडे** – पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील, संसक्त और स्वच्छन्द, इन पाँच प्रकार के कुशीलों का अनुसरण करने वाला, संवर से रहित – **रूवंधरे** -



मुनि का वेष धारण करने वाला, **मुणिपवराण** - श्रेष्ठ मुनियों में, **हेट्ठिमे** - हीन अर्थात् संयम का यथावत् पालन करने वाले मुनियों की अपेक्षा हीन, **से** - वह मुनि, **अयंसि** - इस, **लोए** - लोक में, **विसमेव** - विष (जहर) के समान, **गरहिए** - निन्दनीय होता है और, **ण इहं**- उसका न तो यह लोक सुधरता है और, **णेव परत्थ लोए** - न परलोक सुधरता है अर्थात् उसके दोनों लोक बिगड़ जाते हैं ॥ २० ॥

विवेचन - पापश्रमण को इस गाथा में "**पंचकुसील संवुडे**" कहा है । जो साधु की समाचारी का बराबर पालन नहीं करता उसे कुशील (संवृत) श्रमण कहते हैं । उसके पांच भेद हैं वे इस प्रकार हैं -

१. पासत्थ (पार्श्वस्थ या पासस्थ) - जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और प्रवचन में सम्यग् उपयोग वाला नहीं है । ज्ञानादि के समीप रहकर भी जो उन्हें अपनाता नहीं हैं । वह पासस्थ (पार्श्वस्थ) कहलाता है ।

२. ओसन्न (अवसन्न) - जो एक पक्ष के अन्दर पीठ फलक आदि बन्धन खोल कर उनकी पडिलेहणा नहीं करता अथवा बार-बार सोने के लिए संथारा बिछाये रखता हैं तथा जो स्थापना आदि दोष से दूषित आहार आदि लेता है जो साधु समाचारी का पालन करते हुए थक गया है वह सर्वअवसन्न या देश अवसन्न कहलाता है ।

३. कुशील - कुत्सित अर्थात् निन्दनीय शील आचार वाले साधु को कुशील कहते हैं । ज्ञान कुशील, दर्शन कुशील व चारित्र कुशील के भेद से यह तीन प्रकार का है ।

४. संसक्त – मूल गुण और उत्तर गुण तथा इनके जितने दोष हैं वे सभी जिसमें मिले रहते हैं । उसे संसक्त श्रमण कहते हैं।

५. यथाच्छन्द – जो अपनी इच्छानुसार उत्सूत्र (सूत्र विपरीत) प्ररूपणा और आचरण करता है ऐसे स्वच्छन्दाचारी साधु को यथाच्छन्द कहते हैं ।

जे वज्जए एए सया उ दोसे,
से सुव्वए होइ मुणीण-मज्झे ।
अयंसि लोए अमयं व पूइए,
आराहए लोगमिणं तहापरं ॥ २१ ॥ त्तिबेमि ॥

– **जे** – जो मुनि, **एए** – इन उपरोक्त, **दोसे** – दोषों को, **सया** – सदा के लिए, **वज्जए** – छोड़ देता है, **से** – वह, **मुणीण मज्झे** – मुनियों में, **सुव्वए** – सुव्रत-सुन्दर व्रत वाला अर्थात् श्रेष्ठ मुनि, **होइ** – होता है, **अयंसि** – इस, **लोए** – लोक में, **अमयं व** – अमृत के समान, **पूइए** – पूजनीय होता है, **तहा** – इस प्रकार, **इणं** – इस लोक और, **परं लोगं** – परलोक दोनों की, **आराहए** – वह सम्यक् आराधना करता है । **त्तिबेमि** – ऐसा मैं कहता हूँ ॥ २१ ॥

॥ सत्तरहवां अध्ययन समाप्त ॥



संयतीय' नामक अठारहवाँ अध्ययन

कंपिल्ले णयरे राया, उदिण्ण-बलवाहणे ।
णामेणं संजओ णामं, मिग्गवं उवणिग्गए ॥ १ ॥

- **कंपिल्ले** - कम्पिलपुर, **णयरे** - नगर में, **उदिण्णबलवाहणे** - विस्तीर्ण सेना तथा हाथी घोड़े और वाहनादि युक्त, **णामेणं संजओ (संजए) णामं** - संजय (संयति) नाम का, **राया** - राजा राज्य करता था । एक बार वह, **मिग्गवं** - मृगया-शिकार खेलने के लिए, **उवणिग्गए** - नगर से बाहर निकला ॥ १ ॥

हयाणीए गयाणीए रहाणीए तहेव य ।
पायत्ताणीए महया, सव्वओ परिवारिए ॥ २ ॥
मिए छुहित्ता हयगओ, कंपिल्लुज्जाण-केसरे ।
भीए संते मिए तत्थ, वहेइ रसमुच्छिए ॥ ३ ॥

- **हयाणीए** - हयानीक (घोड़ों की सेना) **गयाणीए** - गजानीक (हाथियों की सेना), **तहेव** - तथा, **रहाणीए** - रथानीक (रथों की सेना) **य** - और, **पायत्ताणीए** - पदाति अनीक (पैदल सेना) इन चार प्रकार की, **महया** - बड़ी सेनाओं से, **सव्वओ** - चारों ओर से, **परिवारिए** - घिरा हुआ वह राजा, **हयगओ** - घोड़े पर सवार होकर, **कंपिल्लुज्जाण केसरे** - कम्पिलपुर के केसर नामक उद्यान में पहुँचा और, **रसमुच्छिए** - रसमूर्छित अर्थात् मांस खाने में गृद्ध बना हुआ वह संजय राजा, **तत्थ** - उस उद्यान में,



मिए – हिरणों को, **छुहित्ता** – क्षुभित कर के, **भीए** – भयभीत बने हुए, तथा, **संते** – श्रान्त-थके हुए, **मिए** – हिरणों को, **वहेइ** - मारने लगा ॥ २-३ ॥

अह केसरम्मि उज्जाणे, अणगारे तवोधणे ।
सज्झायज्झाणसंजुत्ते, धम्मज्झाणं झियायइ ॥४॥

– **अह** – उस, **केसरम्मि** – केसर नाम के, **उज्जाणे** - उद्यान में, **तवोधणे** – तपोधनी, **सज्झायज्झाण संजुत्ते** – स्वाध्याय और ध्यान में लगे हुए, **अणगारे** – एक अनगार महात्मा, **धम्मज्झाणं** – धर्मध्यान, **झियायइ** – ध्याते थे ॥ ४ ॥

अप्फोवमंडवम्मि, झायइ खवियासवे ।
तस्सागए मिगे पासं, वहेइ से णराहिवे ॥ ५ ॥

– **खवियासवे** – कर्मबन्ध के हेतु स्वरूप हिंसादि आस्रवों का क्षय करने वाले वे महात्मा, **अप्फोवमंडवम्मि** – वृक्ष-गुच्छ-गुल्म-लताओं से युक्त तथा नागरवेल आदि से आच्छादित मंडप में, **झायइ** – ध्यान कर रहे थे, **मिगे** – राजा से भयभीत हुए कुछ मृग दौड़ कर, **तस्स** – उन मुनि के, **पासं** – पास, **आगए** - चले आये किन्तु, **से** – वह, **णराहिवे** – नराधिप (राजा), **वहेइ** - उन मृगों पर भी बाण चला कर मारने लगा ॥ ५ ॥

अह आसगओ राया, खिप्पमागम्म सो तहिं ।
हए मिए उ पासित्ता, अणगारं तत्थ पासइ ॥ ६ ॥

– **अह** – इसके बाद, **आसगओ** – घोड़े पर बैठा हुआ, **सो** – वह, **राया** – राजा, **खिप्पं** – शीघ्र, **तहिं** – वहाँ, **आगम्म** -



एगच्छत्तं पसाहित्ता, महिं माण णिसूद (र) णो ।
हरिसेणो मणुस्सिंदो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥ ४२ ॥

- **मणुस्सिंदो** - मनुष्यों में इन्द्र के समान, **हरिसेणो** - हरिषेण नाम के दसवें चक्रवर्ती ने, **माण णिसूदणो-माण णिसूरणो**- शत्रुओं के मान का मर्दन करके, **महिं** - पृथ्वी पर, **एगच्छत्तं** - एक छत्र, **पसाहित्ता** - राज्य स्थापित किया । इसके बाद राज्य-वैभव का त्याग करके तप-संयम का आराधन करके, **अणुत्तरं गइं** - अनुत्तर-प्रधान गति मोक्ष को, **पत्तो** - प्राप्त किया ॥ ४२ ॥

अण्णिओ रायसहस्सेहिं, सुपरिच्चाई दमं चरे ।
जय णामो जिणक्खायं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥ ४३ ॥

- **रायसहस्सेहिं** - हजारों राजाओं के, **अण्णिओ** - अन्वित-साथ, **जय णामो** - जय नाम के ग्यारहवें चक्रवर्ती ने, **सुपरिच्चाई**- राज्य-वैभव और काम-भोगों का त्याग करके, **जिणक्खायं** - जिनेन्द्र देव द्वारा कहे हुए, **दमं** - तप-संयम एवं श्रुत-चारित्र धर्म का, **चरे** - सेवन किया और, **अणुत्तरं गइं** - प्रधान गति-मोक्ष को, **पत्तो** - प्राप्त किया ॥ ४३ ॥

उपरोक्त दस चक्रवर्ती मोक्ष में गये हैं । आठवां चक्रवर्ती सुभूम और बारहवां चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त, इन दोनों ने दीक्षा नहीं ली। ये दोनों सातवीं नरक में गये ।

दसण्णरज्जं मुदियं, चइत्ता णं मुणी चरे ।
दसण्णभद्दो णिक्खंतो, सक्खं सक्केण चोइओ ॥

- **सक्खं** - साक्षात्, **सक्केण** - शक्रेन्द्र से, **चोइओ**- प्रेरित किया हुआ, **दसण्णभद्दो** - दशार्णभद्र राजा, **मुदियं** - उपद्रव रहित

एवं समृद्धशाली, **दसण्णरज्जं** - दशार्ण देश का राज्य, **चइत्ताणं** - छोड़ कर, **णिक्खंतो** - निकला तथा, **मुणी** - मुनि होकर, **चरे** - तप-संयम का पालन करके मोक्ष प्राप्त किया ॥ ४४ ॥

णमी णमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥

- **सक्खं** - साक्षात्, **सक्केण** - शक्रेन्द्र से, **चोइओ** - प्रेरित हुए, **णमी** - नमि राजा ने, **अप्पाणं** - अपनी आत्मा को, **णमेइ** - नम्र बनाया-विनीत बनाया तथा, **गेहं** - घर और, **वइदेही** - विदेह देश के स्वामी राज्य को, **चइऊण** - छोड़ कर, **सामण्णे** - संयम, **पज्जुवट्ठिओ** - अंगीकार किया और मोक्ष को प्राप्त क़िया ॥ ४५ ॥

करकंडू कलिंगेसु, पंचालेसु य दुम्मुहो ।
णमी राया विदेहेसु, गंधारेसु य णग्गई ॥ ४६ ॥

- **कलिंगेसु** - कलिंग देश में, **करकंडू** - करकंडू राजा, **य** - और, **पंचालेसु** - पञ्चाल देश में, **दुम्मुहो** - द्विमुख राजा, **विदेहेसु** - विदेह देश में, **णमी राया** - नमि राजा, **य** - और, **गंधारेसु** - गंधार देश में, **णग्गई** - नगगति राजा हुआ । इन सब राजाओं ने राज्य-वैभव छोड़ कर दीक्षा ली और संयम का पालन कर मोक्ष प्राप्त किया ॥ ४६ ॥

एए णरिंदवसभा, णिक्खंता जिणसासणे ।
पुत्ते रज्जे ठवेऊणं, सामण्णे पज्जुवट्ठिया ॥ ४७ ॥

- **णरिंदवसभा** - राजाओं में वृषभ के समान श्रेष्ठ, **एए** - ये सभी राजा, **रज्जे** - अपना राज्य, **पुत्ते** - पुत्रों को, **ठवेऊणं** - सौंप कर, **जिणसासणे** - जिन-शासन में, **णिक्खंता** - दीक्षित हुए

✡✡

और, **सामण्णे** - श्रमण वृत्ति का, **पज्जुवट्ठिया** - सम्यक् पालन कर के मोक्ष को प्राप्त हुए ॥ ४७ ॥

सोवीरराय-वसभो, चइत्ताणं मुणी चरे ।
उदायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तरं ॥ ४८ ॥

- **सोवीररायवसभो** - सौवीर देश के राजाओं में श्रेष्ठ, **उदायणो** - उदायन राजा ने, **चइत्ताणं** - राज्य-वैभव छोड़ कर, **पव्वइओ** - दीक्षा ग्रहण की और, **मुणी** - मुनि होकर, **चरे** - संयम का सम्यक् पालन किया जिससे, **अणुत्तरं गइं** - प्रधान गति (मोक्ष) को, **पत्तो** - प्राप्त किया ॥ ४८ ॥

तहेव कासीराया वि, सेओ सच्च-परक्कमे ।
काम-भोगे परिच्चज्ज, पहणे कम्म-महावणं ॥

- **तहेव** - इसी प्रकार, **कासी राया वि** - काशी नरेश ने अर्थात् नन्दन नाम के सातवें बलदेव ने भी, **कामभोगे** - काम-भोगों का, **परिच्चज्ज** - त्याग करके दीक्षा अंगीकार की और, **सेओ सच्च परक्कमे** - श्रेष्ठ सत्य एवं संयम में पराक्रम कर के तपरूपी अग्नि के द्वारा, **कम्म महावणं** - कर्मरूपी महावन को, **पहणे** - जला कर भस्म कर डाला और मोक्ष प्राप्त किया ॥ ४९ ॥

तहेव विजओ राया, अणट्ठाकित्ति पव्वए ।
रज्जं तु गुणसमिद्धं, पयहित्तु महाजसो ॥ ५० ॥

- **तहेव** - इसी प्रकार, **अणट्ठाकित्ति** - आनष्टा अकीर्ति-जिसकी अकीर्ति सब तरफ से नष्ट हो चुकी है अतएव निर्मल कीर्ति वाले, **महाजसो** - महायशस्वी, **विजओ राया** - दूसरे बलदेव, विजय नामक राजा ने, **गुणसमिद्धं** - गुणसमृद्ध-महा ऋद्धिशाली,

रज्जं - राज्य को, **पयहित्तु** - छोड़ कर, **पव्वए** - दीक्षा ली और मोक्ष प्राप्त किया ॥५०॥

तहेवुग्गं तवं किच्चा, अव्वक्खित्तेण चेयसा ।
महब्बलो रायरिसी, आदाय सिरसा सिरिं ॥५१॥

- **तहेव** - इसी प्रकार, **महब्बलो** - महाबल नाम के, **रायरिसी** - राजर्षि ने, **अव्वक्खित्तेण** - एकाग्र, **चेयसा** - चित्त से, **उग्गं** - उग्र, **तवं** - तप, **किच्चा** - करके, **सिरसा** - शिर से अर्थात् अपना मस्तक देकर-अपने शरीर की उपेक्षा की और, **सिरिं** - सर्वश्रेष्ठ केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी को, **आदाय** - प्राप्त कर के मोक्ष प्राप्त किया अथवा, **सिरसो सिरिं** - सम्पूर्ण लोक के मस्तक पर स्थित मोक्षश्री को प्राप्त किया ॥५१॥

कहं धीरो अहेउहिं, उम्मत्तो व्व महिं चरे ।
एए विसेसमादाय, सूरा दढपरक्कमा ॥५२॥

- क्षत्रिय राजर्षि कहते हैं कि हे मुने ! **धीरो** - धीर एवं बुद्धिमान् पुरुष, **अहेउहिं** - क्रियावादी, अक्रियावादी आदि वादियों के कुतर्कों में फँस कर, **उम्मत्तो व्व** - उन्मत्त पुरुष के समान, **महिं**- पृथ्वी पर, **कहं** - कैसे, **चरे** - विचर सकता है ? अर्थात् नहीं विचर सकता । ऐसा विचार कर तथा, **विसेसं** - ज्ञान और क्रिया से युक्त जैन धर्म की विशेषता को, **आदाय** - जान कर, **एए** - पूर्वोक्त, **सूरा** - शूरवीर एवं, **दढपरक्कमा** - दृढ़ पराक्रम करने वाले प्रबल पुरुषार्थी भरतादि चक्रवर्ती आदि नरेशों ने जैन धर्म एवं संयम स्वीकार कर आत्म-कल्याण किया । हे मुनीश्वर ! इसी प्रकार आप भी इस जैन-धर्म में अपने चित्त को दृढ़ करके विचरते हुए अपने अभीष्ट पद को प्राप्त करने का प्रयत्न करो ॥५२॥

अच्चंत-णियाणखमा, सच्चा (एसा) मे भासिया वई ।
अतरिंसु तरंतेगे, तरिस्संति अणागया ॥ ५३ ॥

– हे मुनीश्वर ! **अच्चंत णियाणखमा** – कर्म-मल को शोधन करने में अत्यन्त समर्थ, **एसा** – यह, **सच्चा** – सम्पूर्ण सत्य यह, **वई** – वाणी जो, **मे** – मैंने, **भासिया** – आपके प्रति कही है, इस वाणी के द्वारा, **अतरिंसु** – भूतकाल में अनेक जीव संसार समुद्र तिर गये हैं, **तरंतेगे** – वर्तमान काल में अनेक जीव तिर रहे हैं और, **अणागया** – भविष्यत् काल में अनेक जीव **तरिस्संति** – तिरेंगे ॥ ५३ ॥

कहं धीरे अहेउहिं,
अत्ताणं परियावसे ।
सव्व-संग-विणिम्मुक्के,
सिद्धे हवइ णीरए ॥ ५४॥ त्तिबेमि ॥

– **कहं** – कौन; **धीरे** – धीर एवं बुद्धिमान् पुरुष, **अहेउहिं** – क्रियावादी, अक्रियावादी आदि वादियों के कहे हुए कुतर्कों में फँस कर, **अत्ताणं** – अपनी आत्मा का, **परियावसे** – अहित करना चाहेगा अर्थात् कोई नहीं चाहेगा, क्योंकि इन कुहेतुओं में आत्मा को न फँसा कर जिनशासन का आश्रय लेने से ही, **सव्व संग विणिम्मुक्के** – सभी द्रव्य संग और भाव संगों से रहित होकर तथा, **णीरए** – कर्म रूपी रज से रहित होकर यह आत्मा, **सिद्धे** – सिद्ध, **हवइ** – हो जाता है ॥ **त्तिबेमि** – ऐसा मैं कहता हूँ ॥ ५४ ॥

।। अठारहवाँ अध्ययन समाप्त ॥

'मृगापुत्रीय' उन्नीसवाँ अध्ययन

सुग्गीवे णयरे रम्मे, काणणुज्जाण-सोहिए ।
राया बलभद्दित्ति, मिया तस्सग्गमहिसी ॥ १ ॥

काणणुज्जाण सोहिए – कानन उद्यान शोभित अर्थात् अनेक प्रकार के वन-उपवनों से सुशोभित, **रम्मे** – रमणीय, **सुग्गीवे णयरे** – सुग्रीव नाम के नगर में, **बलभद्दित्ति** – बलभद्र नाम का, **राया** – राजा राज्य करता था, **तस्स** – उसके, **मिया** – मृगा नाम की, **अग्गमहिसी** – अग्रमहिषी-पटरानी थी ॥ १ ॥

तेसिं पुत्ते बलसिरी, मियापुत्ते त्ति विस्सुए ।
अम्मा-पिऊण दइए, जुवराया दमीसरे ॥ २ ॥

तेसिं – उनके, **बलसिरी** – बलश्री नाम का, **पुत्ते** – पुत्र किन्तु लोगों में वह, **मियापुत्ते त्ति** – मृगापुत्र के नाम से, **विस्सुए**- विश्रुत-विख्यात था । वह, **अम्मा पिऊण** – माता पिता को, **दइए**- बड़ा प्रिय था । वह, **जुवराया** – युवराज और, **दमीसरे** - दमीश्वर था अर्थात् उद्धत पुरुषों का दमन करने वाले राजाओं का स्वामी था । यह अर्थ वर्तमान काल की अपेक्षा से किया गया है । भविष्यत् काल की अपेक्षा, 'दमीश्वर' शब्द का अर्थ है- इन्द्रियों का दमन करने वाले महात्माओं में श्रेष्ठ । ऐसा वह मृगापुत्र था ॥ २ ॥

णंदणे सो उ पासाए, कीलए सह इत्थिहिं ।
देवो दोगुंदगो चेव, णिच्चं मुइयमाणसो ॥ ३ ॥



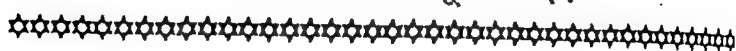
- **सो** - वह मृगापुत्र नामक राजकुमार, **णंदणे** - नन्दन वन के समान आनन्ददायक, **पासाए** - प्रासाद (भवन) में, **इत्थिहिं सह** - स्त्रियों के साथ, **णिच्चं** - सदा, **मुइयमाणसो** - मुदितमानस-प्रसन्न चित्त वाला होकर, **दोगुंदगो देवो चेव** - दोगुंदक देव के समान अर्थात् इन्द्र के गुरुस्थानीय त्रायस्त्रिंश जाति के देव के समान, **कीलए** - क्रीड़ा करता था ॥ ३ ॥

मणिरयणकोट्टिमतले, पासायालोयणट्ठिओ ।
आलोएइ णगरस्स, चउक्कत्तियचच्चरे ॥ ४ ॥

- **मणिरयणकोट्टिम तले** - जिसके आंगन में मणि और रत्न कूटे हुए थे ऐसे, **पासायालोयणट्ठिओ** - प्रासाद (महल) के झरोखे में बैठा हुआ वह राजकुमार एक समय, **णगरस्स** - उस सुग्रीव नगर के, **चउक्कत्तिय चच्चरे** - चतुष्क (जहाँ चार मार्गों का संगम हो) त्रिक (तीन मार्गों का मिलन स्थान) और चत्वर-अनेक मार्गों के मिलने का स्थान, **आलोएइ** - देख रहा था ॥ ४ ॥

अह तत्थ अइच्छंतं, पासइ समण-संजयं ।
तव-णियम-संजमधरं, सीलड्ढं गुण-आगरं ॥ ५ ॥

- **अह** - अथ - इसके बाद राजकुमार ने नगर अवलोकन करते हुए, **तव णियम संजम धरं** - तप, नियम और संयम को धारण करने वाले, **सीलड्ढं** - अठारह हजार शील के अंग रूप गुणों के धारक, **गुण आगरं** - ज्ञानादि गुणों के भण्डार, **समणसंजयं** - एक श्रमण संयत (जैन साधु) को, **तत्थ** - राज-मार्ग पर, **अइच्छंतं** - जाते हुए, **पासइ** - देखा ॥ ५ ॥



तं पेहइ मियापुत्ते, दिट्ठीए अणिमिसाए उ।
कहिं मण्णेरिसं रूवं, दिट्ठपुव्वं मए पुरा ॥ ६ ॥

- **मियापुत्ते** - मृगापुत्र, **तं** - उस मुनि को, **अणिमिसाए** - अनिमेष-आँख टमकारे बिना एक टक, **दिट्ठीए** - दृष्टि से, **पेहइ** - देखने लगा, **उ** - और, मन में सोचने लगा कि, **मण्णे** - मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि, **एरिसं** - इस प्रकार का, **रूवं**- रूप, **मए** - मैंने, **पुरा** - पहले, **कहिं** - कहीं, **दिट्ठपुव्वं** - दृष्ट पूर्व-अवश्य देखा है ॥ ६॥

साहुस्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणम्मि-सोहणे।
मोहं गयस्स संतस्स, जाइसरणं समुप्पण्णं ॥ ७॥

- **तस्स** - उस, **साहुस्स** - साधु को, **दरिसणे** - देखने पर, **मोहं गयस्स संतस्स** - मोहनीय (चारित्र मोहनीय) कर्म के उपशांत (देश उपशम-मंद) होने पर तथा, **अज्झवसाणम्मि सोहणे** - अध्यवसायों (ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होने वाले आन्तरिक परिणामों) की विशुद्धि होने से मृगापुत्र को, **जाइसरणं** - जातिस्मरण ज्ञान, **समुप्पण्णं** - उत्पन्न हो गया ॥ ७॥

विवेचन - मोहनीय कर्म का पूर्ण उपशम तो 'उपशान्त मोहनीय गुणस्थान' वाले संयमी साधकों के ही होता है। अतः यहाँ पर इस गाथा में प्रयुक्त **संतस्स** (उपशांत) शब्द का आशय-पूर्ण उपशम होना नहीं समझ कर 'देश उपशम' समझना चाहिए। अर्थात् 'चारित्र मोहनीय कर्म की मन्दता' होना समझना चाहिये। जाति स्मरण ज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान है। वह ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है। मोहनीय कर्म के उपशम से नहीं होता है। आगम में क्षायिक ज्ञान (केवलज्ञान) एवं क्षायोपशमिक

ज्ञान (मति आदि चार ज्ञान) ही बताये हैं। औपशमिक ज्ञान नहीं बताया है अतः 'जातिस्मरण' को क्षायोपशमिक समझना है। मोहनीय कर्म के उपशम से नहीं समझना।

देवलोग चुओ संतो, माणुसं भवमागओ ।
सण्णिणाणे-समुप्पण्णे, जाइं-सरइ-पुराणियं ॥ ८ ॥

- **सण्णिणाणे** - संज्ञिज्ञान-जातिस्मरण ज्ञान, **समुप्पण्णे** - उत्पन्न हो जाने पर वह मृगापुत्र, **पुराणियं जाइं** - अपने पूर्व-जन्म को, **सरइ** - स्मरण करने लगा कि मैं, **देवलोग चुओ संतो** - देवलोक से चव कर, **माणुसं भवं** - मनुष्य भव में, **आगओ** - आया हूँ ॥ ८ ॥

जाइसरणे समुप्पण्णे, मियापुत्ते महिड्ढिए ।
सरइ पोराणियं जाइं, सामण्णं च पुराकयं ॥ ९ ॥

- **जाइसरणे** - जातिस्मरण ज्ञान, **समुप्पण्णे** - उत्पन्न होने पर, **महिड्ढिए** - महाऋद्धि वाला वह, **मियापुत्ते** - मृगापुत्र, **पोराणियं जाइं** - अपने पूर्व-जन्म को, **च** - और, **पुराकयं** - पूर्व कृत-पूर्व-जन्म में पालन किये हुए, **सामण्णं** (श्रामन्य) - साधुपन को, **सरइ** - स्मरण करने लगा ॥ ९ ॥

विसएसु अरज्जंतो, रज्जंतो संजमम्मि य ।
अम्मा-पियरमुवागम्म, इमं वयण-मब्बवी ॥ १० ॥

- **विसएसु** - विषय-भोगों में, **अरज्जंतो** - आसक्ति नहीं रखता हुआ, **य** - और, **संजमम्मि** - संयम में, **रज्जंतो** - अनुराग रखता हुआ मृगापुत्र, **अम्मापियरं** - माता-पिता के, **उवागम्म** - निकट आकर, **इमं** - इस प्रकार, **वयणं** - वचन, **अब्बवी** - कहने लगा ॥ १० ॥



सुयाणि मे पंच महव्वयाणि,
णरएसु दुक्खं च तिरिक्ख-जोणिसु ।
णिव्विण्णकामो मि महण्णवाओ,
अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो ॥ ११ ॥

– **अम्मो** – हे माता पिताओ !, **मे** – मैंने पूर्वजन्म में जिन, **पंच** – पाँच, **महव्वयाणि** – महाव्रतों का पालन किया था, उन्हें मैंने, **सुयाणि** – जान लिया है, **च** – और, **णरएसु** – नरक गति में तथा, **तिरिक्ख जोणिसु** – तिर्यञ्च योनि में भोगे हुए, **दुक्खं** – दुःखों को भी स्मरण कर जान लिया है इसलिए मैं, **महण्णवाओ** – महार्णव-संसार रूपी महासमुद्र से, **णिव्विण्णकामो मि** – निवृत्त होने का अभिलाषी हूँ । **अणुजाणह** – मुझे आज्ञा दीजिये, **पव्वइस्सामि** – मैं दीक्षा लूँगा ॥ ११ ॥

अम्म-ताय ! मए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा ।
पच्छा कडुयविवागा, अणुबंध-दुहावहा ॥ १२ ॥

– **अम्मताय** – हे माता पिताओ ! **मए** – मैंने, **भोगा** – कामभोगों को, **भुत्ता** – भोग कर इनका परिणाम जान लिया है, **पच्छा** – भोगने के पीछे, **कडुय विवागा** – इनका परिणाम अत्यन्त कड़वा होता है और, **अणुबंध दुहावहा** – ये काम-भोग निरन्तर दुःख देने वाले हैं, **विसफलोवमा** – विषफल के समान हैं अर्थात् जैसे विषफल (किंपाक) देखने में सुन्दर और खाने में स्वादिष्ट और मीठा तो लगता है, किन्तु खाने के बाद वह प्राण-हरण कर लेता है, उसी प्रकार ये काम-भोग भी भोगने के समय तो प्रिय लगते हैं किन्तु परिणाम में अधिक से अधिक दुःख देने वाले हैं ॥ १२ ॥



इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइ-संभवं ।

असासयावासमिणं, दुक्ख-केसाण-भायणं ॥ १३ ॥

- **इमं** - यह, **सरीरं** - शरीर, **अणिच्चं** - अनित्य है, **असुइं**- अशुचि (अपवित्र) है और, **असुइसंभवं** - अशुचि से ही इसकी उत्पत्ति हुई है एवं यह स्वयं भी अशुचि का स्थान है, **इणं** - इसमें, **असासयावासं** - जीव का निवास-स्थान भी अशाश्वत ही है और यह शरीर, **दुक्खकेसाण** - दुःख और क्लेशों का, **भायणं**- भाजन (बर्तन) है ॥ १३ ॥

असासए-सरीरम्मि, रइं णोवलभामहं ।

पच्छा पुरा व चइयव्वे, फेणबुब्बुयसण्णिभे ॥ १४ ॥

- मृगापुत्र अपने माता पिता से कहता है कि, **फेणबुब्बुयसण्णिभे** - जल के बुलबुले के समान क्षणभंगुर एवं, **असासए** - अशाश्वत, **सरीरम्मि** - इस शरीर में, **अहं** - मुझे, **रइं** - रति-प्रसन्नता, **ण उवलभां** - प्राप्त नहीं होती, क्योंकि, **पुरा** - पहले, **व**- या, **पच्छा** - पीछे, **चइयव्वे** - इस शरीर को अवश्य छोड़ना पड़ेगा, इसका विनाश अवश्यंभावी है ॥ १४ ॥

माणुसत्ते असारम्मि, वाहिरोगाण आलए ।

जरामरणघत्थम्मि, खणं पि ण रमामहं ॥ १५ ॥

- **वाहिरोगाण** - कोढ़ आदि व्याधियाँ और ज्वर आदि रोगों के, **आलए** - घर रूप तथा, **जरामरण घत्थम्मि** - जरा और मृत्यु से घिरे हुए इस, **असारम्मि** - असार, **माणुसत्ते** - मनुष्य-जन्म में, **अहं** - मैं, **खणं पि** - एक क्षण भर भी, **ण रमां** - रमण नहीं करता हूँ अर्थात् प्रसन्न नहीं होता हूँ ॥ १५ ॥

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगाणि मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतवो ॥ १६॥

- **जम्मं** - जन्म, **दुक्खं** - दुःख रूप है, **जरा** - बुढ़ापा, **दुक्खं** - दुःख रूप है तथा, **रोगाणि** - रोग, **य** - और, **मरणाणि** - मृत्यु ये सभी दुःख रूप हैं, **अहो** - अहो ! **हु** - आश्चर्य है कि, **संसारो** - यह सारा संसार ही, **दुक्खो** - दुःख रूप है, **जत्थ** - इस दुःखमय संसार में, **जंतवो** (**जंतुणो**) - जीव अपने-अपने कर्मों के वश होकर, **कीसंति** - नाना प्रकार के दु... और क्लेशों को प्राप्त हो रहे हैं ॥ १६॥

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पुत्तदारं च बंधवा।
चइत्ताणं इमं देहं, गंतव्वमवसस्स मे ॥ १७॥

- **खेत्तं** - क्षेत्र (खुली भूमि) **वत्थुं** - वास्तु (घर मका... आदि) **च** - और, **हिरण्णं** - हिरण्य-सोना-चांदी आदि, **पुत्तदारं** - पुत्र-स्त्री, **च** - और, **बंधवा** - बान्धव तथा, **इमं** - इस, **देहं** - शरीर को भी, **चइत्ताणं** - छोड़ कर, **मे** - मेरे इस जीव को, **अवसस्स** - परवश होकर अवश्य, **गंतव्वं** - जाना पड़ेगा ॥ १७॥

जह किंपागफलाणं, परिणामो ण सुंदरो।
एवं भुत्ताणं भोगाणं, परिणामो ण सुंदरो ॥ १८॥

- **जह** - जिस प्रकार, **किंपागफलाणं** - किंपाक वृक्ष के फलों का, **परिणामो** - परिणाम, **ण सुंदरो** - सुन्दर नहीं होता, **एवं** - इसी प्रकार, **भुत्ताणं** - भोगे हुए, **भोगाणं** - भोगों का, **परिणामो** - परिणाम भी, **ण सुंदरो** - सुन्दर नहीं होता ॥ १८॥



अद्धाणं जो महंतं तु, अपाहेज्जो पवज्जइ ।
गच्छंतो सो दुही होइ, छुहातण्हाए पीडिओ ॥१९॥

- **अपाहेज्जो** - पाथेय (खाने पीने की सामग्री) साथ में लिए बिना ही, **जो** - जो पुरुष, **महंतं** - लंबे, **अद्धाणं** - मार्ग की, **पवज्जइ** - यात्रा करता है, **गच्छंतो** - मार्ग में जाता हुआ, **सो** - वह, **छुहातण्हाए** - भूख और प्यास से, **पीडिओ** - पीड़ित होकर, **दुही** - दुःखी, **होइ** - होता है ॥१९॥

एवं धम्मं अकाऊणं, जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छंतो सो दुही होइ, वाहि रोगेहिं पीडिओ ॥ २० ॥

- **एवं** - इसी प्रकार, **धम्मं** - धर्म का, **अकाऊणं** - आचरण किये बिना, **जो** - जो पुरुष, **परं भवं** - परभव में, **गच्छइ**- जाता है तो, **गच्छंतो** - परभव में जाता हुआ, **सो** - वह, **वाहि रोगेहिं** - व्याधि और रोगों से, **पीडिओ** - पीड़ित होकर, **दुही** - दुःखी, **होइ** - होता है ॥ २० ॥

अद्धाणं जो महंतं तु, सपाहेज्जो पवज्जइ ।
गच्छंतो सो सुही होइ, छुहातण्हा-विवज्जिओ ॥

- **सपाहेज्जो** - पाथेय सहित, **जो** - जो पुरुष, **महंतं** - लम्बे, **अद्धाणं** - मार्ग की, **पवज्जइ** - यात्रा करता है तो, **गच्छंतो** - मार्ग में जाता हुआ, **सो** - वह पुरुष, **छुहातण्हा विवज्जिओ** - भूख और प्यास से रहित होकर, **सुही** - सुखी, **होइ** - होता है ॥ २१ ॥

एवं धम्मं वि काऊणं, जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छंतो सो सुही होइ, अप्पकम्मे अवेयणे ॥ २२ ॥

- **एवं** - इसी प्रकार, **जो** - जो पुरुष, **धम्मं** - धर्म का, **काऊणं** - सेवन करके, **परं भवं** - परभव में, **गच्छइ** - जाता है तो, **गच्छंतो** - जाता हुआ, **सो** - वह, **अप्पकम्मे** - अल्पकर्म-अल्प पाप वाला और, **अवेयणे** - वेदना से रहित होकर, **सुही** - सुखी, **होइ** - होता है ॥ २२ ॥

जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू ।
सारभंडाणि णीणेइ, असारं अवउज्झइ ॥ २३ ॥
एवं लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य ।
अप्पाणं तारइस्सामि, तुब्भेहिं अणुमण्णिओ ॥२४॥

- **जहा** - जिस प्रकार, **गेहे** - घर में, **पलित्तम्मि** - आग लग जाने पर, **तस्स** - उस, **गेहस्स** - घर का, **जो** - जो, **पहू** - प्रभु-स्वामी होता है वह, **सारभंडाणि** - सार वस्तु (मूल्यवान् आभूषण तथा वस्त्रादि) को, **णीणेइ** - बाहर निकालता है और, **असारं** - असार वस्तुओं (फटे हुए वस्त्रादि) को, **अवउज्झइ** - छोड़ देता है, **एवं** - इसी प्रकार, **जराए** - बुढ़ापा, **य** - और, **मरणेण** - मृत्यु से, **पलित्तम्मि** - जलते हुए, **लोए** - इस लोक में, **तुब्भेहिं** - आप की, **अणुमण्णिओ** - आज्ञा मिलने पर, **अप्पाणं** - मैं अपनी आत्मा को, **तारइस्सामि** - तारूँगा अर्थात् यह संसार जरा और मरण रूपी अग्नि से जल रहा है इसलिए मैं अपनी आत्मा रूपी सार पदार्थ को इससे निकाल लूँगा और कामभोग रूपी असार पदार्थों को छोड़ दूँगा ॥ २३-२४ ॥

तं बिंतम्मापियरो, सामण्णं पुत्त ! दुच्चरं ।
गुणाणं तु सहस्साइं, धारेयव्वाइं भिक्खुणा ॥ २५॥

☆☆

- **तं** - उस मृगापुत्र को, **अम्मापियरो** - माता-पिता, **बिंत** - कहने लगे कि, **पुत्त** - हे पुत्र ! **भिक्खुणा** - साधु को, **गुणाणं सहस्साइं** - शील के अठारह हजार गुण तथा क्षमा आदि के अनेक गुण, **धारेयव्वाइं** - धारण करने पड़ते हैं। इसलिए, **सामण्णं**- श्रामण्य-साधु धर्म का, **दुच्चरं** - पालन करना अत्यन्त कठिन है ॥ २५ ॥

समया सव्वभूएसु, सत्तुमित्तेसु वा जगे ।
पाणाइवायविरई, जावज्जीवाए दुक्करं ॥ २६ ॥

- हे पुत्र ! **जावज्जीवाए** - जीवनपर्यंत, **जगे** - जगत्-संसार में, **सव्वभूएसु** - सभी प्राणियों पर, **वा** - चाहे, **सत्तुमित्तेसु** - शत्रु हो या मित्र, **समया** - समभाव रखना तथा, **पाणाइवायविरई**- प्राणातिपात (हिंसा) से सर्वथा निवृत्त होना, (पहले महाव्रत का पालन करना) भी, **दुक्करं** - अत्यन्त कठिन है ॥ २६ ॥

णिच्चकालप्पमत्तेणं, मुसावाय-विवज्जणं ।
भासियव्वं हियं सच्चं, णिच्चाउत्तेण दुक्करं ॥२७॥

- **णिच्चकालं** - सदैव के लिए, **अप्पमत्तेणं** - प्रमाद रहित होकर, **मुसावायविवज्जणं** - मृषावाद का त्याग और, **णिच्चाउत्तेण** - सदा उपयोग रख कर, **हियं** - हितकारी, **सच्चं** - सत्य वचन, **भासियव्वं** - बोलना, (दूसरे महाव्रत का पालन करना) **दुक्करं** - बड़ा दुष्कर है ॥ २७ ॥

दंत-सोहणमाइस्स, अदत्तस्स विवज्जणं ।
अणवज्जेसणिज्जस्स, गिण्हणा वि दुक्करं ॥ २८ ॥

- **अदत्तस्स** - बिना दिये हुए किसी भी पदार्थ को,

विवज्जणं - विवर्जन-नहीं लेना, यहाँ तक कि, **दंतसोहणमाइस्स**- दाँतों को स्वच्छ करने के लिए तृण भी बिना आज्ञा नहीं लेना तथा, **अणवज्जेसणिज्जस्स** - निर्दोष और एषणीय वस्तु, **गिण्हणा**- ग्रहण करना, इस तीसरे महाव्रत का पालन करना भी, **दुक्करं** - बड़ा दुष्कर है ॥ २८ ॥

विरई अबंभचेरस्स, कामभोगरसण्णुणा ।
उग्गं महव्वयं बंभं, धारेयव्वं सुदुक्करं ॥ २९ ॥

- **कामभोगरसण्णुणा** - कामभोग के रस को जानने वाले पुरुष के लिए, **अबंभचेरस्स** - मैथुन से, **विरई** - सर्वथा निवृत्त होकर, **उग्गं** - उग्र (कठोर), **बंभं महव्वयं** - ब्रह्मचर्य रूप चतुर्थ महाव्रत को, **धारेयव्वं** - धारण करना, **सुदुक्करं** - अत्यन्त कठिन है ॥ २९ ॥

धणधण्णपेसवग्गेसु, परिग्गह-विवज्जणं ।
सव्वारंभपरिच्चाओ, णिम्ममत्तं सुदुक्करं ॥ ३० ॥

- **सव्वारंभपरिच्चाओ** - सभी आरम्भ का त्याग करना तथा, **परिग्गहविवज्जणं** - परिग्रह का त्याग करना और, **धणधण्णपेसवग्गेसु** - धन-धान्य प्रेष्यवर्ग - नौकर-चाकरों का त्याग करना एवं इन सभी के, **णिम्ममत्तं** - ममत्वभाव से रहित होना इस प्रकार परिग्रह-विरमण रूप पाँचवां महाव्रत, **सुदुक्करं** - अत्यन्त दुष्कर है ॥ ३० ॥

चउव्विहे वि आहारे, राइभोयण-वज्जणा ।
सण्णिहिसंचओ चेव, वज्जेयव्वो सुदुक्करं ॥ ३१ ॥



- **चउव्विहे वि** - चार प्रकार का जो, **आहारे** - आहार है, **राइभोयणवज्जणा** - रात्रि भोजन वर्जन-रात्रि में उनके भोजन का त्याग करना, **चेव** - और, **सण्णिहिसंचओ** - सन्निधिसंचय-घी-गुड़ आदि का संचय करके रखने का, **वज्जेयव्वो** - त्याग करना, **सुदुक्करं** - अत्यन्त कठिन है ॥ ३१ ॥

छुहा तण्हा य सीउण्हं, दंसमसग-वेयणा ।
अक्कोसा दुक्खसेज्जा य, तणफासा-जल्लमेव य ॥

- बाईस परीषहों को सहन करने की कठिनता बताते हैं, **छुहा** - क्षुधा (भूख), **तण्हा** - प्यास, **य** - और, **सीउण्हं** - शीत और उष्ण, **दंसमसगवेयणा** - डांस और मच्छरों के काटने से होने वाली वेदना, **अक्कोसा** - आक्रोश वचनों को सहन करना, **य** - तथा, **दुक्खसेज्जा** - दुःखकारी शय्या, **य** - और, **तणफासा** - तृणादि का स्पर्श, **एवं** - इसी प्रकार, **जल्लं** - मैल परीषह, इन सभी परीषहों को समभावपूर्वक सहन करना बड़ा कठिन है ॥ ३२ ॥

तालणा तज्जणा चेव, वहबंधपरीसहा ।
दुक्खं भिक्खायरिया, जायणा य अलाभया ।३३ ।

- **तालणा** - ताड़ना, **चेव** - और, **तज्जणा** - तर्जना, **वहबंधपरीसहा** - वध-बन्धन का परीषह, **भिक्खायरिया** - भिक्षाचर्या तथा, **जायणा** - याचना, **य** - और, **अलाभया** - अलाभता (माँगने पर भी न मिलना) इत्यादि परीषहों को समभाव पूर्वक सहन करना, **दुक्खं** - अत्यन्त कठिन है ॥ ३३ ॥

कावोया जा इमा वित्ती, केसलोओ य दारुणो ।
दुक्खं बंभव्वयं घोरं, धारेउं अमहप्पणो ॥ ३४ ॥



– **जा** – जो, **इमा** – यह, **कावोया वित्ती** – कापोतवृत्ति है अर्थात् जैसे कबूतर बिल्ली आदि से शंकित रह कर दाना चुगता है उसी प्रकार एषणादि के दोषों से शंकित रह कर आहारादि ग्रहण करना, **य** – और, **केसलोओ** – केशों का लोच करना, **दारुणो** - दारुण–कठिन है तथा, **अमहप्पणो** – अमहात्मा अर्थात् अजितेन्द्रिय एवं धैर्य–रहित आत्मा के लिए, **घोरं** – घोर, **बंभव्वयं** – ब्रह्मचर्य व्रत को, **धारेउं** – धारण करना, **दुक्खं** – अत्यन्त कठिन है ॥३४॥

सुहोइओ तुमं पुत्ता ! सुकुमालो सुमज्जिओ ।
ण हुसि पभू तुमं पुत्ता ! सामण्णमणुपालिया ॥३५॥

– **पुत्ता** – हे पुत्र ! **तुमं** – तू, **सुहोइओ** – सुखोचित है अर्थात् भोगने के योग्य है, **सुकुमालो** – सुकुमार है, **सुमज्जिओ** - सुस्नपित है अर्थात् स्नान, विलेपन और वस्त्राभूषणों से सदा अलंकृत रहने वाला है, इसलिए **पुत्ता** – हे पुत्र ! **तुमं** – तू, **सामण्णं** – श्रामण्य–साधुपना, **अणुपालिया** – पालने के लिए, **पभू** – समर्थ, **ण** – नहीं, **हुसि** – हैं ॥ ३५ ॥

जावज्जीवमविस्सामो, गुणाणं तु महब्भरो ।
गुरुओ लोहभारुव्व, जो पुत्ता ! होइ दुव्वहो ॥३६॥

– **गुरुओ लोहभारुव्व** – जिस प्रकार लोह के बड़े भार को, **दुव्वहो** – दुर्वह–सदा उठाए रखना बड़ा कठिन है, उसी प्रकार, **पुत्ता** – हे पुत्र ! **गुणाणं** – साधुपने के अनेक गुणों का, **जो** – जो, **महब्भरो** – महान् भार है उसको, **अविस्सामो** - विश्राम लिए बिना, **जावज्जीवं** – जीवनपर्यन्त, धारण करना, **दुव्वहो** – दुर्वह–बड़ा कठिन, **होइ** – है ॥ ३६ ॥



आगासे गंगसोउव्व, पडिसोउव्व दुत्तरो ।
बाहाहिं सागरो चेव, तरियव्वो य गुणोदही ॥३७॥

- **आगासे गंगसोउव्व** - जिस प्रकार आकाश-गंगा की धारा को अर्थात् चुलहिमवंत पर्वत से नीचे गिरती हुई धारा को, **दुत्तरो** - तैरना बड़ा कठिन है तथा, **पडिसोउव्व** - धारा के सामने तैरना कठिन है, **चेव** - और जिस प्रकार, **बाहाहिं** - भुजाओं से, **सागरो** - सागर को पार करना कठिनतर है, **य** - उसी प्रकार, **गुणोदही** - गुण उदधि-ज्ञानादि गुणों के समूह रूप उदधि - सागर को, **तरियव्वो** - तिरना-पार करना अत्यन्त कठिन है ॥ ३७ ॥

वालुयाकवलो चेव, णिरस्साए उ संजमे ।
असिधारागमणं चेव, दुक्करं चरिउं तवो ॥ ३८ ॥

- **चेव** - जिस प्रकार, **वालुयाकवलो** - बालू रेत का ग्रास नीरस होता है, **उ** - उसी प्रकार, विषय-भोगों में गृद्ध बने हुए मनुष्यों के लिए, **संजमे** - संयम, **णिरस्साए** - नीरस है, **चेव** - और जिस प्रकार, **असिधारागमणं** - तलवार की धार पर चलना कठिन है, उसी प्रकार, **तवो** - तप संयम का, **चरिउं** - आचरण करना भी, **दुक्करं** - बड़ा कठिन है ॥ ३८ ॥

अहीवेगंतदिट्ठीए, चरित्ते पुत्त ! दुच्चरे ।
जवा लोहमया चेव, चावेयव्वा सुदुक्करं ॥ ३९ ॥

- **पुत्त** - हे पुत्र ! **अहि** - सर्प की, **इव** - तरह अर्थात् जिस प्रकार साँप, **एगंत दिट्ठीए** - एकाग्र दृष्टि रख कर चलता है, उसी प्रकार एकाग्र मन रख कर, **चरित्ते** - संयम-वृत्ति में चलना, **दुच्चरे** - कठिन है, **चेव** - और जिस प्रकार, **लोहमया** - लोह के,

जवा-जौ अथवा चने, **चावेयव्वा**-चबाना, **सुदुक्करं**-अत्यन्त कठिन है, उसी प्रकार संयम का पालन करना भी कठिन है ॥ ३९॥

जहा अग्गिसिहा दित्ता, पाउं होइ सुदुक्करा ।
तहा दुक्करं करेउं जे, तारुण्णे समणत्तणं ॥ ४०॥

- **जहा** - जिस प्रकार, **दित्ता** - दीप्त-जलती हुई, **अग्गिसिहा**- अग्नि की ज्वाला शिखा को, **पाउं** - पीना, **सुदुक्करा**- अत्यन्त कठिन, **होइ** - होता है, **तहा** - उसी प्रकार, **तारुण्णे** - तरुण अवस्था में, **समणत्तणं** - साधुपना, **करेउं** - पालन करना, **दुक्करं** - अत्यन्त कठिन है ॥ ४० ॥

जहा दुक्खं भरेउं जे, होइ वायस्स कोत्थलो ।
तहा दुक्खं करेउं जे, कीवेणं समणत्तणं ॥ ४१॥

- **जहा** - जिस प्रकार, **कोत्थलो** - कपड़े के कोथले को, **वायस्स** - हवा से, **भरेउं** - भरना, **दुक्खं** - कठिन, **होइ** - है, **तहा** - उसी प्रकार, **कीवेणं** - कृपण - कायर एवं निर्बल से, **समणत्तणं** - श्रमणत्व-साधुपना, **करेउं** - पाला जाना, **दुक्खं** - दुष्कर है ॥ ४१ ॥

जहा तुलाए तोलेउं, दुक्करो मंदरो गिरी ।
तहा णिहुयणीसंकं, दुक्करं समणत्तणं ॥ ४२॥

- **जहा** - जिस प्रकार, **मंदरो गिरी** - सुमेरु पर्वत को, **तुलाए** - तराजु से, **तोलेउं** - तोलना, **दुक्करो** - कठिन है, **तहा**- उसी प्रकार, **णिहुयणीसंकं** - कामभोगों की अभिलाषा और शरीर के ममत्व एवं सम्यक्त्व के शंकादि दोषों से रहित होकर, **समणत्तणं**- साधुपने का पालन करना, **दुक्करं** - बड़ा कठिन है ॥ ४२॥



जहा भुयाहिं तरिउं, दुक्करो रयणायरो ।
तहा अणुवसंतेणं, दुक्करं दम-सायरो ॥ ४३ ॥

- **जहा** - जिस प्रकार, **रयणायरो** - रत्नाकर समुद्र को, **भुयाहिं** - भुजाओं से, **तरिउं** - तैरना, **दुक्करो** - कठिन है, **तहा** - उसी प्रकार, **अणुवसंतेणं** - कषायों को उपशान्त किये बिना, **दमसायरो** - संयम रूपी समुद्र को तैरना, **दुक्करं** - बड़ा कठिन है ॥ ४३ ॥

भुंज माणुस्सए भोए, पंच लक्खणए तुमं ।
भुत्त भोगी तओ जाया ! पच्छा धम्मं चरिस्ससि ॥

- मृगापुत्र के माता-पिता उसे कहते हैं कि तरुण अवस्था में संयम का पालन करना बड़ा कठिन है इसलिए, **जाया** - हे पुत्र ! अभी तो, **तुमं** - तुम, **पंचलक्खणए** - शब्द-रूप-रस-गन्ध-स्पर्श रूप पाँच लक्षण वाले, **माणुस्सए** - मनुष्य सम्बन्धी, **भोए** - भोगों को, **भुंज** - भोगो, **तओ** - इसके बाद, **भुत्तभोगी** - भुक्तभोगी होकर, **पच्छा** - वृद्धावस्था में, **धम्मं** - धर्म का, **चरिस्ससि** - पालन करना ॥ ४४ ॥

सो बिंत अम्मापियरो, एवमेयं जहाफुडं ।
इहलोगे णिप्पिवासस्स, णत्थि किंचि वि दुक्करं ॥

- **सो** - वह मृगापुत्र, **बिंत** - कहने लगा कि, **अम्मापियरो**- हे माता पिताओ ! **एयं** - संयम का पालन करना, **एवं** - ऐसा ही कठिन है, **जहाफुडं** - जैसा आपने कहा है किन्तु, **इहलोगे** - इस लोक में अर्थात् स्वजन सम्बन्धी परिग्रह तथा काम-भोगों में,

णिप्पिवासस्स - निःस्पृह बने हुए पुरुष के लिए, **किंचि** वि - कुछ भी, **दुक्करं** - कठिन, **णत्थि** - नहीं है ॥ ४५ ॥

सारीरमाणसा चेव, वेयणाओ अणंतसो ।
मए सोढाओ भीमाओ, असइं दुक्ख-भयाणि य ॥

- हे माता पिताओ ! **मए** - मैंने, **अणंतसो** - अनन्त बार **भीमाओ** - भयंकर, **सारीरमाणसा** - शारीरिक और मानसिक **वेयणाओ** - वेदनाएँ, **सोढाओ** - सहन की है, **चेव** - और, **असइं** - अनेक बार, **दुक्ख भयाणि य** - दुःख और सात भयों का अनुभव किया है ॥ ४६ ॥

जरामरणकंतारे, चाउरंते भयागरे ।
मए सोढाणि भीमाणि, जम्माणि मरणाणि य ॥

- **चाउरंते** - चार गति वाले, **भयागरे** - भयंकर, **जरामरणकंतारे** - जरा-मरण रूपी कान्तार-अटवी में, **मए** - मैंने, **भीमाणि**- भयंकर, **जम्माणि** - जन्म, **य** - और, **मरणाणि** - मरण के दुःख अनेक बार, **सोढाणि** - सहे हैं ॥ ४७ ॥

जहा इहं अगणी उण्हो, इत्तो अणंतगुणो तहिं ।
णरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए ॥

- **इहं** - यहाँ, **जहा** - जैसी, **अगणी** - अग्नि, **उण्हो** - उष्ण है, **इत्तो** - उससे, **अणंतगुणो** - अनन्तगुणा, **उण्हा** - उष्णता, **तहिं** - उन, **णरएसु** - नरकों में हैं । **वेयणा** - उस उष्ण वेदना रूप, **अस्साया** - असाता को, **मए** - मैंने अनन्ती बार **वेइया** - वेदन की है, सहन की है ॥ ४८ ॥



नरकों में बादर अग्नि नहीं है किन्तु वहाँ की पृथ्वी का ही ऐसा स्पर्श है ।

जहा इहं इमं सीयं, इत्तो अणंतगुणं तहिं ।
णरएसु वेयणा सीया, अस्साया वेइया मए ॥

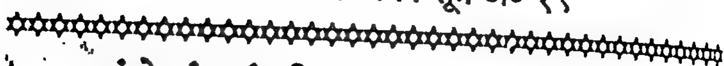
- **इहं** - यहाँ, **जहा** - जैसी, **इमं** - यह, **सीयं** - शीत है, **इत्तो** - इससे, **अणंतगुणं** - अनन्तगुणा अधिक, **सीया** - शीत, **तहिं** - उन, **णरएसु** - नरकों में हैं । **वेयणा** - उस शीत-वेदना रूप, **अस्साया** - असाता को, **मए** - मैंने अनन्तीबार, **वेइया** - वेदन की है-सहन की है ॥ ४९ ॥

कंदंतो कंदुकुंभीसु, उड्ढपाओ अहोसिरो ।
हुयासणे जलंतम्मि, पक्कपुव्वो अणंतसो ॥ ५० ॥

- **कंदुकुंभीसु** - कंदुकुम्भियों में (वैक्रिय द्वारा बनाये हुए पकाने के बरतन विशेषों में) **उड्ढपाओ** - ऊँचे पांव तथा, **अहोसिरो**- नीचे शिर करके, **कंदंतो** - आक्रन्दन करता हुआ मैं, **जलंतम्मि**- जलती हुई, **हुयासणे** - हुताशन-अग्नि में, **अणंतसो** - अनन्ती बार, **पक्कपुव्वो** - पकाया गया हूँ ॥ ५० ॥

महादवग्गिसंकासे, मरुम्मि वइरवालुए ।
कलंब-वालुयाए य, दड्ढपुव्वो अणंतसो ॥ ५१ ॥

- **महादवग्गिसंकासे** - महादावाग्नि के समान और, **मरुम्मि**- मरुदेश की बालुका के समान, **वइरवालुए** - नरक की वज्र-बालुका में, **य** - और, **कलंब वालुयाए** - कदम्ब नदी की बालुका में, **अणंतसो** - अनन्ती बार, **दड्ढपुव्वो** - मैं जलाया गया हूँ ॥ ५१ ॥



रसंतो कंदुकुंभीसु, उड्ढं बद्धो अबंधवो ।
करवत्तकरकयाईहिं, छिण्णपुव्वो अणंतसो ॥

– **रसंतो** – दुःख के मारे चिल्लाते हुए, **अबंधवो** - बान्ध स्वजनादि की शरण एवं सहायता रहित मुझे, **कंदुकुंभीसु** - कंदु कुम्भियों के, **उड्ढं** – ऊपर अर्थात् नीचे कंदुकुम्भी रख कर ऊप किसी वृक्षादि की शाखा में, **बद्धो** – बांध दिया गया और फिर **करवत्त करकयाईहिं** – करवत और क्रकच आदि शस्त्र विशेष से मैं, **अणंतसो** – अनन्ती बार, **छिण्णपुव्वो** – पूर्वभवों में छेदन-भेदन किया गया हूँ ॥५२॥

अइतिक्खकंटगाइण्णे, तुंगे सिंबलिपायवे ।
खेवियं पासबद्धेणं, कड्ढोकड्ढाहिं दुक्करं ॥

– **अइतिक्खकंटगाइण्णे** – अत्यन्त तीक्ष्ण कांटों से व्याप्त, **तुंगे**–ऊँचे, **सिंबलिपायवे** – शाल्मलि वृक्ष पर, **पासबद्धेणं** - मुझे पाश से बांध दिया गया तथा, **कड्ढोकड्ढाहिं** - काँटों पर इधर-उधर खींचे जाने से मैंने, **दुक्करं**–अत्यन्त असह्य, **खेवियं** - दुःखों को सहन किया है ॥५३॥

महाजंतेसु उच्छू वा, आरसंतो सुभेरवं ।
पीडिओमि सकम्मेहिं, पावकम्मो अणंतसो ॥५४॥

– **सुभेरवं** – अत्यन्त रौद्रतापूर्वक, **आरसंतो** – रुदन करता हुआ, **पावकम्मो** – पापकर्मों वाला मैं, **अणंतसो** – अनन्ती बार, **सकम्मेहिं** – अपने अशुभ कर्मों से, **महाजंतेसु** – बड़े-बड़े यंत्रों में डाल कर, **उच्छू वा** – इक्षु–गन्ने के समान, **पीडिओ मि** - पीला गया हूँ ॥५४॥



कूवंतो कोलसुणएहिं, सामेहिं सबलेहि य ।
पाडिओ फालिओ छिण्णो, विप्फुरंतो अणेगसो॥

- **कूवंतो** - आक्रन्दन करता हुआ तथा भय से, **विप्फुरंतो**- इधर-उधर दौड़ता हुआ मैं, **कोलसुणएहिं** - सूअर और कुत्तों का रूप धारण करने वाले, **सामेहिं** - श्याम, **य** - और, **सबलेहि** - शबल जाति के परमाधार्मिक देवों द्वारा, **पाडिओ** - भूमि पर गिराया गया, **फालिओ** - जीर्ण कपड़े के समान चीर दिया गया और, **छिण्णो** - लकड़ी के समान छेदा गया ॥५५॥

असीहिं अयसीवण्णेहिं,
भल्लीहिं पट्टिसेहि य ।
छिण्णो भिण्णो विभिण्णो य,
उववण्णो पावकम्मुणा ॥ ५६ ॥

- **पावकम्मुणा** - पापकर्मों से, **उववण्णो** - नरक में उत्पन्न हुआ मैं, **अयसीवण्णेहिं** - अलसी के वर्ण सरीखी, **असीहिं**- तलवारों से, **भल्लीहिं** - भालों से, **य** - और, **पट्टिसेहि** - पट्टिश नामक शस्त्र विशेष से, **छिण्णो** - छेदन किया गया, **भिण्णो** - भेदन किया गया, **य** - और, **विभिण्णो** - विभिन्न-छोटे-छोटे टुकड़े किया गया ॥५६॥

अवसो लोहरहे जुत्तो, जलंते समिलाजुए ।
चोइओ तुत्तजुत्तेहिं, रोज्झो वा जह पाडिओ ॥

- **अवसो** - परवश बने हुए मुझे, **जलंते** - जलते हुए, **समिलाजुए** - समिला युक्त जुआ वाले, **लोहरहे** - लोह के रथ

में, **जुत्तो**-जोड़ा गया और, **तुत्तजुत्तेहिं** - चाबुक और जोतों से, **चोइओ**-हाँका गया तथा लाठी आदि से पीटा गया एवं, **रोज्झो वा**-रोझ के समान, **पाडिओ** - भूमि पर गिराया गया ॥५७॥

हुयासणे जलंतम्मि, चियासु महिसो विव ।
दड्ढो पक्को य अवसो, पावकम्मेहिं पाविओ ॥

- **पावकम्मेहिं** - पापकर्मों से, **अवसो** - परवश बना हुआ, **पाविओ**-पापी मैं, **चियासु** - परमाधार्मिक देवों द्वारा बनाई हुई ईंधन की चिताओं में, **जलंतम्मि** - जलती हुई, **हुयासणे** - हुताशन-अग्नि में, **महिसो विव**-भैंसे के समान, **दड्ढो** - जलाया गया, **य**-और, **पक्को** - पकाया गया ॥५८॥

बला संडासतुंडेहिं, लोहतुंडेहिं पक्खिहिं ।
विलुत्तो विलवंतोहं, ढंकगिद्धेहिं अणंतसो ॥५९॥

- **विलवंतो** - विलाप करता हुआ, **अहं** - मैं, **बला**-बलपूर्वक, **संडासतुंडेहिं** - संडासी के समान मुख वाले और, **लोहतुंडेहिं** - लोह के समान कठोर मुख वाले, **पक्खिहिं** - पक्षिओं द्वारा और, **ढंकगिद्धेहिं**-ढंक और गृद्ध पक्षिओं द्वारा, **अणंतसो** - अनन्ती बार, **विलुत्तो** - छिन्न-भिन्न किया गया हूँ ॥५९॥

नरकों में पक्षी नहीं होते हैं । नारकी जीव ही स्वयं वैक्रिय शक्ति से पक्षी जैसे बन जाते हैं ।

तण्हाकिलंतो धावंतो, पत्तो वेयरणिं णइं ।
जलं पाहिं त्ति चिंतंतो, खुरधाराहिं विवाइओ ॥



- **तण्हाकिलंतो** - तृषा से अत्यन्त पीड़ित होकर, **जलं**-जल, **पाहिं** - पीऊँगा, **त्ति**-इस प्रकार, **चिंतंतो** - विचार करता हुआ अर्थात् जल पीने की इच्छा से, **धावंतो** - दौड़ता हुआ मैं, **वेयरणिं**-वैतरणी, **णइं** - नदी को, **पत्तो**-प्राप्त हुआ तो वहाँ, **खुरधाराहिं** - क्षुरधाराओं से अर्थात् उस वैतरणी नदी की धारा उस्तरे की धार के समान अति तीक्ष्ण थी जिससे मैं, **विवाइओ** - विनाश को प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥

उण्हाभितत्तो संपत्तो, असिपत्तं महावणं ।
असिपत्तेहिं पडंतेहिं, छिण्णपुव्वो अणेगसो ॥ ६१ ॥

- **उण्हाभितत्तो** - उष्णता से घबराया हुआ मैं, **असिपत्तं** - असिपत्र (तलवार) के समान तीक्ष्ण पत्तों वाले वृक्षों के, **महावणं**-महावन में, **संपत्तो** - प्राप्त हुआ और इच्छा करता था कि अब मुझे वृक्षों की छाया में शान्ति मिलेगी, किन्तु, **असिपत्तेहिं** - तलवार के समान तीक्ष्ण पत्तों के, **पडंतेहिं** - गिरने से मैं, **अणेगसो** - अनेक बार, **छिण्णपुव्वो** - पूर्वजन्मों में छेदन किया गया हूँ ॥ ६१ ॥

मुग्गरेहिं मुसुंढीहिं, सूलेहिं मुसलेहि य ।
गयासं भग्गगत्तेहिं, पत्तं दुक्खं अणंतसो ॥ ६२ ॥

- **मुग्गरेहिं** - मुद्गरों से, **मुसुंढीहिं** - मुसंढी नामक, शस्त्र विशेष से, **सूलेहिं** - त्रिशूलों से, **य** - और,
भग्गगत्तेहिं - मेरे गात्रों को भग्न कर
आशा-मेरे जीवन की आशा नष्ट हो गई
अनन्ती बार, **दुक्खं** - दुःख, **पत्तं** -

खुरेहिं तिक्खधाराहिं, छुरियाहिं कप्पणीहि य ।
कप्पिओ फालिओ छिण्णो, उक्कित्तो य अणेगसो।

– परमाधार्मिक देवों द्वारा मैं, **कप्पणीहि** – कतरणियों से **अणेगसो** – अनेक बार, **कप्पिओ** – कतरा गया, **छुरियाहिं** - छुरियों से, **फालिओ** – चीर कर दो टुकड़े कर दिया गया, **य**-और, **तिक्खधाराहिं** – तीक्ष्ण धार वाले, **खुरेहिं** – उस्तरों से, **छिण्णो** - छेदन कर दिया गया, **य** – और अनेक बार, **उक्कित्तो** – मेरी चमड़ी उतार कर काचरे के समान छील दिया गया ॥ ६३ ॥

पासेहिं कूडजालेहिं, मिओ वा अवसो अहं ।
वाहिओ बद्धरुद्धो य, बहुसो चेव विवाइओ ॥

– **मिओ वा** – मृगवत्, **अवसो** – परवश पड़ा हुआ, **अहं**-मैं, ... – पाशों से और, **कूडजालेहिं** – कूटपाशों से, **वाहिओ**- ... । देकर, **बद्धरुद्धो** – बांध कर रोक लिया गया, **चेव** – और, **बहुसो** – बहुत बार, **विवाइओ** – मारा गया ॥ ६४ ॥

गलेहिं मगरजालेहिं, मच्छो व अवसो अहं ।
उल्लिओ फालिओ गहिओ, मारिओ य अणंतसो॥

– **गलेहिं** – बड़िश यंत्र से, **मगर जालेहिं** – मगर के आकार वाले जालों से, **मच्छो व** – मछली के समान, **अवसो** – परवश, **अहं**–मैं, **अणंतसो** – अनन्ती बार, **उल्लिओ** – खींचा गया, **फालिओ** – फाड़ा गया, **गहिओ** – पकड़ा गया, **य** – और, **मारिओ**– मारा गया ॥ ६५ ॥



विदंसएहिं जालेहिं, लिप्पाहिं सउणो विव ।
गहिओ लग्गो य बद्धो य, मारिओ य अणंतसो ॥

- बाज पक्षियों से, **जालेहिं**-जालों से, **लिप्पाहिं** - लेपों से (पंख चिपक जाने वाले द्रव्यों से) **सउणो विव** - पक्षी के समान व, **अणंतसो** - अनन्ती बार, **गहिओ** - पकड़ा गया, **लग्गो** - चिपटाया गया, **बद्धो** - बांधा गया, **य**-और, **मारिओ** - मारा गया ॥ ६६ ॥

कुहाडफरसुमाईहिं, वड्ढईहिं दुमो विव ।
कुट्टिओ फालिओ छिण्णो, तच्छिओ य अणंतसो ॥

- **वड्ढईहिं**-सुथारों का रूप धारण किये हुए परमाधार्मिक देवों द्वारा, **कुहाडफरसुमाईहिं** - कुल्हाड़े, फरसे आदि से मेरे, **अणंतसो** - अनन्ती बार, **दुमो विव** - वृक्ष के समान, **कुट्टिओ** - टुकड़े कर दिये गये, **फालिओ**-मुझे फाड़ा गया, **छिण्णो** - छेदन किया गया, **य** - और, **तच्छिओ** - चमड़ी उतार कर छील दिया गया ॥ ६७ ॥

चवेडमुट्ठिमाइहिं, कुमारेहिं अयं विव ।
ताडिओ कुट्टिओ भिण्णो, चुण्णिओ य अणंतसो ॥

- **विव** - जिस प्रकार, **कुमारेहिं** - लोहार, **अयं** - लोह को कूटते - पीटते हैं उसी प्रकार मैं भी, **चवेडमुट्ठिमाइहिं** - थप्पड़ और मुष्टि आदि से, **अणंतसो** - अनन्ती बार, **ताडिओ** - पीटा गया, **कुट्टिओ** - कूटा गया, **भिण्णो** - भेदन किया गया, **य** - और, **चुण्णिओ** - चूर्ण के समान बारीक पीस डाला गया ॥ ६८ ॥

तत्ताइं तंबलोहाइं, तउयाइं सीसगाणि य ।
पाइओ कलकलंताइं, आरसंतो सुभेरवं ॥६९॥

– प्यास से अत्यन्त पीड़ित होने पर जब मैंने जल की प्रार्थना की तब उन परमाधार्मिक देवों ने, **सुभेरवं** - बहुत जोर से, **आरसंतो** – अरडाट शब्द करते हुए मुझे बलपूर्वक, **तत्ताइं** - तपाया हुआ तथा, **कलकलंताइं** – कलकल शब्द करता हुआ, **तंब लोहाइं**– ताम्बा और लोहा, **तउयाइं** – त्रपुष–कथीर, **य** - और, **सीसगाणि** – सीसा, **पाइओ** – पिला दिया ॥ ६९ ॥

तुहं पियाइं मंसाइं, खंडाइं सोल्लगाणि य ।
खाविओ मि समंसाइं, अग्गिवण्णाइ अणेगसो ॥

–जिन प्राणियों को इस लोक में मांस अधिक प्रिय होता है नरक में क्या दशा होती है सो कहते हैं, **तुहं** – तुझे, **मंसाइं**- मांस, **पियाइं** – अधिक प्रिय था ऐसा याद दिला कर परमाधार्मिक देवों ने, **समंसाइं** – मेरे शरीर के मांस को, **खंडाइं** – काट कर, **सोल्लगाणि** – भूर्ता कर भड़ीता बना कर, **य** – और, **अग्गिवण्णाइ** – अग्नि के समान लाल करके मुझे, **अणेगसो**- अनेक बार, **खाविओ मि** – खिलाया ॥ ७० ॥

तुहं पिया सुरा सीहू, मेरओ य महूणि य ।
पाइओ मि जलंतीओ, वसाओ रुहिराणि य ॥

– जिनको इस लोक में मदिरा प्रिय होती है, उनकी नरक में क्या दशा होती है सो कहते हैं – **सुरा** – मदिरा, **सीहू** – सीधु–ताड़ वृक्ष की बनी हुई मदिरा, **य** – तथा, **मेरओ** – मेरक–गुड़ से बनी



हुई मदिरा, **य** - और, **महूणि** - महुए से बनी हुई मदिरा ये सभी मदिराएँ, **तुहं** - तुझे, **पिया** - प्रिय थी, ऐसा याद दिला कर परमाधार्मिक देवों ने, **जलंतीओ** - जलती हुई, **वसाओ** - चर्बी, **य**- और, **रुहिराणि** - रुधिर मुझे, **पाइओ मि** - पिलाया ॥ ७१ ॥

णिच्चं भीएण तत्थेण, दुहिएण वहिएण य ।
परमा दुहसंबद्धा, वेयणा वेइया मए ॥ ७२ ॥

- अपने कथन का उपसंहार करता हुआ मृगापुत्र कहता है कि हे माता-पिताओ ! **णिच्चं** - सदैव, **भीएण** - भयभीत बने हुए, **तत्थेण** - त्रस्त-उद्वेग पाये हुए, **दुहिएण** - दुःखित बने हुए, **य**- और, **वहिएण** - व्यथित बने हुए अर्थात् कम्पायमान शरीर वाले, **मए** - मेरे इस जीव ने, **परमा** - अत्यन्त, **दुहसंबद्धा** - दुःखों से युक्त, **वेयणा** - वेदना, **वेइया** - वेदन की है, सहन की है ॥ ७२ ॥

तिव्वचंडप्पगाढाओ, घोराओ अइदुस्सहा ।
महब्भयाओ भीमाओ, णरएसु वेइया मए ॥ ७३ ॥

- **तिव्वचंडप्पगाढाओ** - विपाक की अपेक्षा तीव्र और उत्कृष्ट तथा लम्बी स्थिति वाली, **घोराओ** - घोर, **अइदुस्सहा** - अत्यन्त दुस्सह, **महब्भयाओ** - महान् भय वाली, **भीमाओ** - भयंकर - सुनने मात्र से डर पैदा करने वाली असाता वेदना, **मए** - मैंने, **णरएसु** - नरकों में **वेइया** - वेदन की है, भोगी है ॥ ७३ ॥

जारिसा माणुसे लोए, ताया ! दीसंति वेयणा ।
इत्तो अणंतगुणिया, णरएसु दुक्ख वेयणा ॥ ७४ ॥



– **ताया** – हे माता-पिताओ ! **माणुसे लोए** – मनुष्य लोक में, **जारिसा** – जैसी, **वेयणा** – वेदना, **दीसंति** – दिखाई देती है, **णरएसु** – नरकों में, **इत्तो** – उससे, **अणंत गुणिया** – अनन्त गुण, **दुक्ख वेयणा** – दुःख रूप असाता वेदना है ॥ ७४ ॥

सव्वभवेसु अस्साया, वेयणा वेइया मए ।
णिमेसंतरमित्तंपि, जं साया णत्थि वेयणा ॥ ७५ ॥

– **सव्वभवेसु** – सभी भवों में, **मए** – मैंने, **अस्साया** - असाता, **वेयणा** – वेदना, **वेइया** – वेदी है, **जं** – क्योंकि, **णिमेसंतरमित्तंपि** – निमेष मात्र, (आँख मींच कर खोलने में जितना समय लगता है उतने समय के लिए) भी, **साया वेयणा**- साता वेदना, **णत्थि** – नहीं है ॥ ७५ ॥

तं बिंत अम्मापियरो, छंदेणं पुत्त ! पव्वया ।
णवरं पुण सामण्णे, दुक्खं णिप्पडिकम्मया ॥

– मृगापुत्र का उपरोक्त कथन सुन कर, **अम्मापियरो** - उसके माता-पिता, **तं** – उससे, **बिंत** – कहने लगे कि, **पुत्त** - हे पुत्र ! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो, **छंदेणं** - अपनी इच्छानुसार, **पव्वया** – प्रव्रज्या अंगीकार करो, **णवरं** – किन्तु, **पुण**- संयम लेने के पश्चात् **सामण्णे** – साधुपने में, **णिप्पडिकम्मया** - निष्प्रतिकर्मता–यदि शरीर में कोई रोग उत्पन्न हो जाय, तो उसका प्रतीकार नहीं कराना, **दुक्खं** – यह बड़ा कष्ट है ॥ ७६ ॥

नोट – यह कथन जिनकल्प की अपेक्षा से है । जिनकल्पी मुनि रोगादि के होने पर भी उसकी निवृत्ति के लिए किसी प्रकार की औषधि का उपयोग नहीं करते । किन्तु जो स्थविरकल्पी हैं,



वे अपनी इच्छा से किसी औषधि का भले ही उपयोग न करें, परन्तु निरवद्य औषधोपचार का उनके लिए प्रतिषेध नहीं है ।

सो बेइ अम्मापियरो, एवमेयं जहाफुडं ।
पडिकम्मं को कुणइ, अरण्णे मियपक्खिणं ।

- **सो** - वह मृगापुत्र, **बेइ** - कहने लगा कि, **अम्मापियरो** - हे माता-पिताओ ! **एयं** - यह, **एवं** - इसी प्रकार है, **जहाफुडं** - जिस प्रकार आपने बतलाया है, किन्तु आप यह बतलावें कि, **अरण्णे** - अरण्य-वन में **मियपक्खिणं** - मृग और पक्षियों के रोग का, **पडिकम्मं** - प्रतिकर्म-उपचार, **को** - कौन, **कुणइ** - करता है ? अर्थात् कोई नहीं करता । फिर भी वे जीते हैं और आनन्द पूर्वक यथेच्छ विचरते हैं ॥७७ ॥

एगब्भूओ अरण्णे वा, जहा उ चरइ मिगो ।
एवं धम्मं चरिस्सामि, संजमेण तवेण य ॥ ७८ ॥

- **जहा** - जैसे, **अरण्णे** - अरण्य (जंगल) में, **मिगो** - मृग, **एगब्भूओ** - अकेला ही, **चरइ** - विचरता है, **एवं** - वैसे ही मैं भी, **संजमेण** - संयम, **य** - और, **तवेण** - तप से युक्त होकर, **धम्मं** - धर्म का, **चरिस्सामि** - पालन करूँगा ॥७८॥

जया मिगस्स आयंको, महारण्णम्मि जायइ ।
अच्छंतं रुक्खमूलम्मि, को णं ताहे तिगिच्छइ ॥

- **महारण्णम्मि** - भयानक वन में, **जया** - जब, **मिगस्स** - मृग के, **आयंको** - कोई रोग, **जायइ** - हो जाता है, **ताहे** - तब उस रोग से पीड़ित होकर, **रुक्खमूलम्मि** - किसी वृक्ष के नीचे,

अच्छंतं – बैठे हुए, **णं** – उस मृग की, **को** – कौन, तिगिच्छइ- चिकित्सा करता है ? अर्थात् कोई नहीं करता है ॥ ७९ ॥

विवेचन – पीड़ा के तीन भेद हैं – आधि, व्याधि और उपाधि । मानसिक दुःख को आधि और शारीरिक दुःख को व्याधि तथा बाहरी निमित्तों से होने वाले दुःख को उपाधि कहते हैं। व्याधि के दो भेद हैं – रोग और आतंक । ज्वर आदि को रोग कहते हैं । रोग थोड़े समय में भी उपशान्त हो सकता है और लम्बे समय तक भी चल सकता है । जैसे कि – इस अवसर्पिणी काल के चौथे चक्रवर्ती सनत्कुमार के शरीर में दीक्षा लेने के बाद कण्डू (खुजली), ज्वर, कास (खांसी), श्वास, स्वर भंग, आंख की पीडा और पेट की पीड़ा, ये सात रोग हो गये थे सो सात सौ वर्ष रहे और मुनि ने समभाव पूर्वक सहन किये । "सद्योघाती आतंक" ऐसा रोग जिसके होने पर प्राणी की थोडे ही समय में अर्थात् दो चार दिन में मृत्यु हो जाय, उसे 'आतंक' कहते हैं । जैसे कि-प्लेग-गांठों की बीमारी, हैजा-एक साथ दस्ते तथा उल्टी होना संवत् १९७४ में प्लेग की बीमारी हुई थी जिसमें बहुत से मनुष्यों की मृत्यु हो गई थी । गांव के गांव खाली हो गये थे ।

को वा से ओसहं देइ, को वा से पुच्छइ सुहं ।
को से भत्तं वा पाणं वा, आहरित्तु पणामए ॥८०॥

– **को** – कौन, **से** – उस मृग को, **ओसहं** – औषधि, **देइ** – देता है, **वा** – और, **को** – कौन, **से** – उसकी, **सुहं** – सुखसाता, **पुच्छइ** – पूछता है, **व** – तथा, **को** – कौन, **से** – उसे, **भत्तं** – आहार, **वा** – और, **पाणं** – पानी, **आहरित्तु** – लाकर, **पणामए** – देता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥ ८० ॥



जया से सुही होइ, तया गच्छइ गोयरं ।
भत्तपाणस्स अट्ठाए, वल्लराणि सराणि य ॥ ८१ ॥

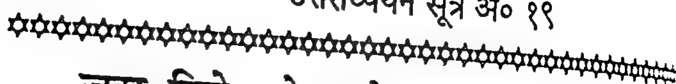
- **जया** - जब, **से** - वह मृग, **सुही** - सुखी (नीरोग) ; - हो जाता है, **तया** - तब, **भत्तपाणस्स** - आहार-पानी के ट्ठाए - लिए, **वल्लराणि** - सघन वन में, **य** - और, **सराणि**- ताबों पर, **गोयरं** - गोचरी (मृगचर्या) के लिए, **गच्छइ** - जाता ॥ ८१ ॥

खाइत्ता पाणियं पाउं, वल्लरेहिं सरेहि य ।
मिगचारियं चरित्ताणं, गच्छइ मिगचारियं ॥ ८२ ॥

- **वल्लरेहिं** - सघन वन में, **खाइत्ता** - घास आदि खा कर, - और, **सरेहि** - जलाशय में, **पाणियं** - पानी, **पाउं**- पी कर ा, **मिगचारियं** - अपनी इच्छानुसार मृगक्रीड़ा, **चरित्ताणं** - के वह मृग, **मिगचारियं** - मृगचर्या में, **गच्छइ** - चला जाता ॥ ८२ ॥

एवं समुट्ठिओ भिक्खू, एवमेव अणेगए ।
मिगचारियं चरित्ताणं, उड्ढं पक्कमइ दिसं ॥८३ ॥

- **एवं** - इस प्रकार, **समुट्ठिओ** - संयम में सावधान बना ना, **एवमेव** - मृग के समान, **अणेगए** - अनेक स्थानों में भ्रमण रने वाला, **भिक्खू** - साधु, **मिगचारियं** - मृगचर्या का, रेत्ताणं - आचरण करके अर्थात् जैसे रोगादि के हो जाने पर ा, चिकित्सा की अपेक्षा नहीं रखता, उसी प्रकार चिकित्सा की पेक्षा न रखता हुआ साधु, **उड्ढं** - ऊंची, **दिसं** - दिशा में अर्थात् क्ष में, **पक्कमइ** - जाता है ॥ ८३ ॥



जहा मिगे एगे अणेगचारी,
अणेगवासे धुवगोयरे य ।
एवं मुणी गोयरियं पविट्ठे,
णो हीलए णो वि य खिंसएज्जा ॥ ८४ ॥

- **जहा** - जिस प्रकार, **मिगे**-मृग, **एगे** - अकेला **अणेगचारी** - अनेक स्थानों पर भ्रमण करने वाला, **अणेगवासे** किसी एक नियत स्थान पर निवास नहीं करने वाला, **य** - और **धुवगोयरे** - ध्रुवगोचर-सदैव गोचरी जाने वाला अर्थात् जंगल में घास पानी के लिये जाने वाला एवं जो कुछ मिलता है उसे खा कर संतोष करने वाला होता है, **एवं** - उसी प्रकार, **मुणी** - मुनि भी, **गोयरियं** - गोचरी के लिए, **पविट्ठे** - जाता है । अच्छा आहार न मिलने पर दाता की अथवा आहार की, **णो हीलए** - अवहेलना नहीं करे, **य** - और, **णो वि खिंसएज्जा**- निन्दा भी नहीं करे ॥ ८४ ॥

मिगचारियं चरिस्सामि, एवं पुत्ता जहासुहं ।
अम्मापिऊहिं अणुण्णाओ, जहाइ उवहिं तओ ॥

- मृगापुत्र कहने लगा कि हे माता-पिताओ ! मैं तो, **मिगचारियं** - ऊपर बताई हुई मृगसरीखी चर्या का, **चरिस्सामि** - सेवन करूँगा । तब उसके माता-पिता कहने लगे कि, **पुत्ता** - हे पुत्र ! **जहासुहं** - जैसे तुम्हें सुख हो वैसे ही करो, **एवं** - इस प्रकार, **अम्मापिऊहिं** - माता-पिता की, **अणुण्णाओ** - आज्ञा मिलने के, **तओ** -पश्चात् मृगापुत्र, **उवहिं** - उपधि अर्थात् द्रव्य उपधि वस्त्र-आभूषणादि और भाव उपधि कषाय आदि को, **जहाइ** - छोड़ने के लिए उद्यत हुआ ॥ ८५ ॥



मिगचारियं चरिस्सामि, सव्वदुक्ख-विमोक्खणिं।
तुब्भेहिं अब्भणुण्णाओ, गच्छ पुत्त ! जहासुहं ॥

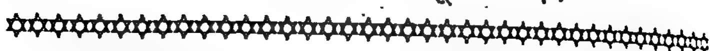
- मृगापुत्र फिर कहता है कि हे माता-पिताओ ! **तुब्भेहिं** - आपकी, **अब्भणुण्णाओ** - आज्ञा मिलने पर मैं, **सव्वदुक्ख-विमोक्खणिं** - सभी दुःखों से मुक्त कराने वाली, **मिगचारियं** - मृग सरीखी चर्या को, **चरिस्सामि** - अंगीकार करूँगा। तब उसके माता-पिता कहने लगे कि, **पुत्त** - हे पुत्र ! **जहासुहं** - जैसा तुम्हें सुख हो वैसा ही करो अर्थात् प्रव्रज्या-मृगचर्या के लिए **गच्छ** - जाओ अर्थात् संयम अंगीकार करो ॥ ८६ ॥

एवं सो अम्मापियरो, अणुमाणित्ताण बहुविहं ।
ममत्तं छिंदइ ताहे, महाणागो व्व कंचुयं ॥ ८७॥

- **एवं** - इस प्रकार, **सो** - वह मृगापुत्र, **बहुविहं** - अनेक प्रकार से, **अम्मापियरो** - माता-पिता की, **अणुमाणित्ताण** - आज्ञा लेकर, **ताहे** - उसी समय, **महाणागो व्व** - जिस प्रकार महानाग (सर्प) **कंचुयं** - काँचली को छोड़ देता है, उसी प्रकार, **ममत्तं** - ममत्व भाव को, **छिंदइ** - छोड़ने के लिए उद्यत हुआ ॥

इड्ढिं वित्तं च मित्ते य, पुत्तदारं च णायओ ।
रेणुयं व पडे लग्गं, णिद्धुणित्ताण णिग्गओ ॥

-**पडे** - कपड़े पर, **लग्गं** - लगी हुई, **रेणुयं व** - धूलवत्-धूल के समान, **इड्ढिं** - राज्यऋद्धि, **वित्तं** - धन, **च** - और, **मित्ते**-मित्र, **य** - तथा, **पुत्तदारं** - पुत्र-स्त्री, **च** - और, **णायओ** - जाति तथा स्वजन सम्बन्धियों को, **णिद्धुणित्ताण** - छोड़ कर वह मृगापुत्र, **णिग्गओ** - निकल गया, अर्थात् दीक्षित हो गया ॥ ८८ ॥



पंचमहव्वयजुत्तो पंचहिं समिओ तिगुत्तिगुत्तो य ।
सब्भिंतर-बाहिरओ, तवोकम्मंसि उज्जुओ ॥८९॥

- **पंचमहव्वयजुत्तो** - पाँच महाव्रतों से युक्त, **पंचहिं समिओ**- पाँच समिति सहित, **य** - और, **तिगुत्तिगुत्तो** - तीन गुप्तियों से गुप्त वह मृगापुत्र, **सब्भिंतर बाहिरओ** - आभ्यन्तर और बाह्य, **तवोकम्मंसि (तवोकम्मम्मि)** - तप संयम में, **उज्जुओ** - उद्यत-सावधान हुआ ॥

विवेचन - मृगापुत्र के जीव ने पूर्वभव में संयम का पालन किया था और पांच महाव्रत अंगीकार किये थे । वहाँ से काल करके देवलोक में गये । वहाँ से च्यव कर मनुष्य भव में आये। यहाँ संयम लेकर फिर पाँच महाव्रतों का पालन किया । पांच महाव्रत पालन रूप इतना लम्बा शासन काल भगवान् ऋषभदेव का है । इसलिये यह स्पष्ट होता है कि - मृगापुत्र भगवान् ऋषभदेव के शासन काल में हुए थे ।

णिम्ममो णिरहंकारो, णिस्संगो चत्तगारवो ।
समो य सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य ॥ ९० ॥

- **णिम्ममो** - ममत्व-रहित, **णिरहंकारो** - अहंकार-रहित, **णिस्संगो** - सर्व-संग-रहित, **य** - और, **चत्तगारवो** - तीन गर्वों (गारव) को छोड़ देने वाला वह मृगापुत्र, **तसेसु** - त्रस, य - और, **थावरेसु** - स्थावर, **सव्वभूएसु** - सभी प्राणियों पर, **समो** - समभाव रखने लगा ॥ ९० ॥

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा ।
समो णिंदापसंसासु, तहा माणावमाणओ ॥९१॥



- वह मृगापुत्र, **लाभालाभे** - लाभ और अलाभ में, **सुहे** - सुख और **दुक्खे** - दुःख में, **जीविए** - जीवन में, **तहा** - तथा, **मरणे**-मरण में, **णिंदापसंसासु** - निन्दा और प्रशंसा में, **तहा** - तथा, **माणावमाणओ** - मान और अपमान में, **समो** - समभाव रखने लगे ॥ ९१ ॥

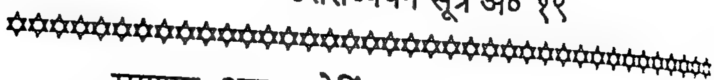
गारवेसु कसाएसु, दंडसल्लभएसु य ।
णियत्तो हाससोगाओ, अणियाणो अबंधणो ।९२ ।

- **अणियाणो** - निदान रहित, **अबंधणो** - बन्धन रहित मृगापुत्र, **गारवेसु** - तीन गारवों (गर्वों)से, **कसाएसु** - चार कषायों से, **दंडसल्लभएसु** - तीन दंड से, तीन शल्य से, सात भय से, **य** - और, **हाससोगाओ** - हास्य तथा शोक से, **णियत्तो** - निवृत्त हो गए ॥ ९२ ॥

अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ ।
वासी चंदणकप्पो य, असणे अणसणे तहा ।९३ ।

- वे मृगापुत्र, **इहं** - इस, **लोए** - लोक में, **अणिस्सिओ** - अनिश्रित-किसी प्रकार की आकांक्षा रहित था और, **परलोए** - परलोक में भी **अणिस्सिओ** - आकांक्षा रहित था और, **असणे**-अशन-आहारादि मिलने पर, **तहा** - अथवा, **अणसणे** - अनशन-आहारादि न मिलने पर हर्ष-शोक रहित था, **य** - और, **वासीचंदणकप्पो** - वासी चन्दन के समान था अर्थात् वसूले से शरीर को काटने वाले पुरुष पर और शरीर पर चन्दन से पूंजा (अर्चा) करने वाले दोनों पुरुषों पर समान भाव रखने वाले थे ॥ ९३ ॥

अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवो ।
अज्झप्पज्झाण-जोगेहिं, पसत्थ-दमसासणो ॥९४॥



– मृगापुत्र, **अप्पसत्थेहिं** – सभी अप्रशस्त, **दारेहिं** – द्वारों से निवृत्त हो गए और उसने, **सव्वओ** – सभी प्रकार से, **पिहियासवो** – आस्रवों का निरोध कर दिया और, **अज्झप्पज्झाण जोगेहिं** – आध्यात्मिक शुभ ध्यान के योग से, **पसत्थदम सासणो**- प्रशस्त संयमी और शास्त्रों के ज्ञाता हुए ॥ ९४ ॥

एवं णाणेण चरणेण, दंसणेण तवेण य ।
भावणाहिं च सुद्धाहिं, सम्मं भावित्तु अप्पयं ।९५।
बहुयाणि उ वासाणि, सामण्ण-मणुपालिया ।
मासिएण उ भत्तेण, सिद्धिं पत्तो अणुत्तरं ।। ९६ ॥

– **एवं** – इस प्रकार, **णाणेण** – ज्ञान से, **दंसणेण** – दर्शन से, **चरणेण** – चारित्र से, **य** – और, **तवेण** – तप से, **च** – तथा, **सुद्धाहिं** – शुद्ध, **भावणाहिं** – भावनाओं से, **सम्मं** – सम्यक् प्रकार से **अप्पयं** – अपनी आत्मा को, **भावित्तु** – भावित करके, **बहुयाणि**- बहुत, **वासाणि** – वर्षों तक, **सामण्णं** - श्रामन्य-श्रमणपर्याय का, **अणुपालिया** – पालन करके, **उ** – और, **मासिएण भत्तेण** – मासिक भक्त से अर्थात् एक मास का संथारा करके वे मृगापुत्र, **अणुत्तरं** – अनुत्तर-सर्वश्रेष्ठ, **सिद्धिं** – सिद्धि गति को, **पत्तो** – प्राप्त हुए ॥ ९५-९६ ॥

एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु, मियापुत्ते जहामिसी ॥९७ ॥

– **संबुद्धा** – बोध को प्राप्त हुए, **पवियक्खणा** – विचक्षण, **पंडिया** – पंडित पुरुष, **भोगेसु** – भोगों से, **विणियट्टंति** – निवृत्त हो जाते हैं और, **एवं** – इसी प्रकार, **करंति**-करते हैं, **जहा** – जैसे, **मियापुत्ते** – मृगापुत्र, **इसी** – ऋषीश्वर ने किया ॥ ९७ ॥



महापभावस्स महाजसस्स,
मियाइपुत्तस्स णिसम्म भासियं ।
तवप्पहाणं चरियं च उत्तमं,
गइप्पहाणं च तिलोगविस्सुयं ॥ ९८ ॥

- **महापभावस्स** - महा प्रभावशाली, **च** - और, **महाजसस्स**- महायशस्वी, **मियाइपुत्तस्स** - मृगापुत्र के, **भासियं** - भाषित-संसार को दुःखरूप बताने वाले कथन को, **णिसम्म** - सुन कर, **तवप्पहाणं** - तप प्रधान, **उत्तमं** - उत्तम, **चरियं** - चारित्र, **च** - और, **तिलोग विस्सुयं** - तीन लोक में विख्यात, **गइप्पहाणं** - प्रधान गति (मोक्ष) प्राप्त करने के लिए धर्म में पुरुषार्थ करना चाहिए ॥ ९८ ॥

वियाणिया दुक्खविवद्धणं धणं,
ममत्तबंधं च महाभयावहं ।
सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं,
धारेज्ज णिव्वाण गुणावहं महं ॥ त्तिबेमि ॥९९ ॥

- हे भव्यपुरुषो ! **धणं** - धन को, **दुक्खविवद्धणं** - दुःख बढ़ाने वाला, **ममत्तबंधं** - ममत्व रूप बन्धन का कारण, **च** - तथा, **महाभयावहं** - महाभय को प्राप्त कराने वाला, **वियाणिया** - जान कर, **सुहावहं** - सुखों को देने वाली, **अणुत्तरं** - अनुत्तर-प्रधान एवं, **महं** - महान्, **णिव्वाण गुणावहं** - ज्ञान-दर्शनादि गुणों को और मोक्ष को देने वाली, **धम्मधुरं** - धर्म रूपी धुरा को, **धारेज्ज** - धारण करो अर्थात् धर्म में पुरुषार्थ करो ॥ **त्तिबेमि**-ऐसा मैं कहता हूँ ॥ ९९ ॥

॥ उन्नीसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

महानिर्ग्रंथीय बीसवाँ अध्ययन

सिद्धाणं णमो किच्चा, संजयाणं च भावओ ।
अत्थधम्मगइं तच्चं, अणुसिट्ठिं सुणेह मे ॥ १ ॥

– **भावओ** – भावपूर्वक, **सिद्धाणं** – सिद्ध भगवान् को, **च** – और, **संजयाणं** – संयत (महात्माओं को) अर्थात् अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सभी साधु रूप पंच परमेष्ठी को, **णमो** – नमस्कार, **किच्चा** – कर के, **अत्थधम्मगइं** – अर्थ और धर्म का ज्ञान कराने वाली, **तच्चं** – सच्ची, **अणुसिट्ठिं** – अनुशिष्टि-शिक्षा कहूँगा, अतः तुम, **मे** – मुझ से, **सुणेह** – सुनो ॥ १ ॥

पभूयरयणो राया, सेणिओ मगहाहिवो ।
विहारजत्तं णिज्जाओ, मंडिकुच्छिंसि चेइए ॥२॥

– **पभूयरयणो** – प्रभूतरत्न–मरकत–मणि आदि बहुत से रत्नों वाला एवं श्रेष्ठ हाथी–घोड़े आदि ऋद्धि–सम्पन्न, **मगहाहिवो** - मगधाधिप–मगध देश का स्वामी, **सेणिओ** – श्रेणिक नाम का, **राया** – राजा, **मंडिकुच्छिंसि** – मंडिकुक्षि नामक, **चेइए** – चैत्य उद्यान में, **विहारजत्तं** – विहार–यात्रा के लिए, **णिज्जाओ** - निकला ॥ २ ॥

णाणादुमलयाइण्णं, णाणापक्खि-णिसेवियं ।
णाणाकुसुमसंछण्णं, उज्जाणं णंदणोवमं ॥ ३ ॥

– **णाणादुमलयाइण्णं** – अनेक प्रकार के वृक्षों और लताओं से युक्त, **णाणापक्खि णिसेवियं** – अनेक प्रकार के पक्षियों से

☆☆

सेवित, **णाणाकुसुमसंछण्णं** - अनेक प्रकार के फूलों से आच्छादित, **उज्जाणं** - वह उद्यान, **णंदणोवमं** - नन्दन वन के समान सुशोभित था ॥ ३ ॥

तत्थ सो पासइ साहुं, संजयं सुसमाहियं ।
णिसण्णं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइयं ॥ ४ ॥

- **तत्थ** - वहाँ, **रुक्खमूलम्मि** - एक वृक्ष के नीचे, **णिसण्णं** - बैठे हुए, **सुकुमालं** - सुकुमार, **सुहोइयं** - सुखोचित (सुखों के योग्य) **सुसमाहियं** - सुसमाधिवंत, **संजयं** - संयत, **साहुं** - साधु को, **सो** - उस राजा ने, **पासइ** - देखा ॥ ४ ॥

तस्स रूवं तु पासित्ता, राइणो तम्मि संजए ।
अच्चंतपरमो आसी, अउलो रूवविम्हओ ॥ ५ ॥

- **तस्स** - उस साधु का, **रूवं** - रूप, **पासित्ता** - देख कर, **राइणो** - राजा को, **तम्मि** - उस, **संजए** - संयत के, **रूव** - रूप के विषय में, **अच्चंत** - अत्यंत, **परमो** - परम और, **अउलो** - अतुल-बहुत, **विम्हओ** - विस्मय-आश्चर्य, **आसी** - हुआ ॥ ५ ॥

अहो वण्णो अहो रूवं, अहो अज्जस्स सोमया ।
अहो खंती अहो मुत्ती, अहो भोगे असंगया ॥ ६ ॥

- **अहो** - अहा ! कैसा आश्चर्यकारी, **अज्जस्स** - इस आर्य का, **वण्णो** - वर्ण है ? **अहो** - अहा ! **रूवं** - रूप, **अहो** - अहा ! **सोमया** - सौम्यता, **अहो** - अहा ! **खंती** - क्षमा, **अहो** - अहा ! **मुत्ती** - मुक्ति-निर्लोभता और, **अहो** - अहा ! **भोगे** - भोगों में, **असंगया** - असंगता-अनासक्ति है अर्थात् इस **मुनि का**

वर्ण, रूप, सौम्यता, क्षमा, निर्लोभता और भोगों में अनासक्ति, सभी आश्चर्यकारी है ॥

तस्स पाए उ वंदित्ता, काऊण य पयाहिणं ।
णाइदूर-मणासण्णे, पंजली पडिपुच्छइ ॥ ७ ॥

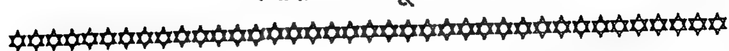
- **तस्स** - उस मुनि के, **पाए** - चरणों में, **वंदित्ता** - वन्दना करके, **य** - और, **पयाहिणं** - प्रदक्षिणा, **काऊण** - करके, **ण अइदूरं** - न तो बहुत दूर और, **अणासण्णे** - (अन्-आसन्ने) न बहुत निकट खड़ा हुआ श्रेणिक राजा, **पंजली** - दोनों हाथ जोड़ कर, **पडिपुच्छइ** - पूछने लगा ॥ ७ ॥

तरुणो सि अज्जो! पव्वइओ, भोग-कालम्मि संजया !
उवट्ठिओसि सामण्णे, एयमट्ठं सुणेमि त्ता ॥ ८ ॥

- **अज्जो** - हे आर्य ! **तरुणो सि** - आप तरुण हैं, **संजया** - संयति ! **भोगकालम्मि** - इस भोग भोगने की अवस्था में, **पव्वइओ** - आपने दीक्षा ले ली है और, **सामण्णे** - साधु-धर्म में, **उवट्ठिओ सि** - उपस्थित हुए हैं, **एयं** - इसका, **अट्ठं** - क्या कारण है सो, **सुणेमि त्ता** - मैं आपसे सुनना चाहता हूँ ॥ ८ ॥

अणाहो मि महाराय ! णाहो मज्झ ण विज्जइ ।
अणुकंपगं सुहिं वा वि, कंचि णाभिसमेमहं ॥९॥

- **महाराय** - हे राजन् ! **अणाहो मि** - मैं अनाथ हूँ, **मज्झ** - मेरा, **णाहो** - कोई नाथ, **ण** - नहीं **विज्जइ** - है, तथा **अणुकंपगं** - मेरे पर अनुकम्पा कर के सुख देने वाला, **वा वि** - और **कंचि** - कोई, **सुहिं** - सुहृद-मित्र भी, **णाभिसमेमहं** (अहं ण अभिसमे) - नहीं मिला है । अतः मैंने दीक्षा ले ली है ॥९॥



विवेचन - अनाथी मुनि का गृहस्थ अवस्था का नाम 'गुणसुन्दर' था। किंसी ग्रंथ में उनका नाम सुदर्शन था, ऐसा भी मिलता है। किन्तु रोग और पीड़ा से छुड़ाने में कोई समर्थ नहीं हुआ तब गुणसुन्दर ने अपने आपको 'अनाथ' बतलाया है। इसलिये इस सारे अध्ययन का नाम ही "अनाथी मुनि का अध्ययन" हो गया। अन्यथा इस अध्ययन का नाम तो 'महानिर्ग्रंथीय' है।

नाथ शब्द का अर्थ इस प्रकार है - "**योगक्षेमकृत नाथः**" अर्थात् योग क्षेम करने वाले को नाथ कहते हैं। नहीं मिली हुई वस्तु का मिलना योग कहलाता है और मिली हुई वस्तु की रक्षा करना क्षेम कहलाता है। जो ऐसा न हों उसे अनाथ कहते हैं।

तओ सो पहसिओ राया, सेणिओ मगहाहिवो ।
एवं ते इड्डिमंतस्स, कहं णाहो ण विज्जइ ॥

- **तओ** - मुनि के उपरोक्त वचन सुन कर, **सो** - वह **मगहाहिवो** - मगधाधिप-मगध देश का स्वामी, **सेणिओ** - श्रेणिक, **राया** - राजा, **पहसिओ** - हँसा और कहने लगा कि, **एवं** - इस प्रकार, **इड्डिमंतस्स** - रूपादि की ऋद्धि से सम्पन्न, **ते** - आपका, **णाहो** - कोई नाथ, **ण विज्जइ** - नहीं है, **कहं** - यह कैसे हो सकता है? ॥ १० ॥

होमि णाहो भयंताणं, भोगे भुंजाहि संजया ! ।
मित्तणाइ-परिवुडो, माणुस्सं खु सुदुल्लहं ॥११॥

- राजा श्रेणिक कहता है कि **संजया** - हे संयत ! मैं, **भयंताणं** - आपका, **णाहो** - नाथ, **होमि** - होने को तैयार हूँ, **मित्तणाइपरिवुडो** - मित्र और ज्ञाति सम्बन्धी जनों से परिवृत्त

होते हुए आप, **भोगे** - भोगों को, **भुंजाहि** - भोगो, क्योंकि, **माणुस्सं** - मनुष्य-जन्म, **खु** - निश्चय ही, **सुदुल्लहं** - अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ११ ॥

अप्पणा वि अणाहो सि, सेणिया मगहाहिवा ! ।
अप्पणा अणाहो संतो, कहं णाहो भविस्ससि ॥

- **मगहाहिवा** - मगधाधिप-हे मगध देश के अधिपति, **सेणिया** - श्रेणिक ! **अप्पणा वि** - तुम स्वयं ही, **अणाहो सि** - अनाथ हो, **अप्पणा** - स्वयं , **अणाहो** - अनाथ, **संतो** - होते हुए, तुम दूसरों के, **णाहो** - नाथ, **कहं** - किस प्रकार, **भविस्ससि** - होओगे ? ॥ १२ ॥

एवं वुत्तो णरिंदो सो, सुसंभंतो सुविम्हिओ ।
वयणं अस्सुयपुव्वं, साहुणा विम्हयण्णिओ ॥

- **एवं** - इस प्रकार, **विम्हयण्णिओ** - विस्मित बना हुआ एवं पुनः, **साहुणा** - साधु द्वारा, **वुत्तो** - कहे हुए, **अस्सुयपुव्वं** - अश्रुत-पूर्व (पहले कभी न सुने हुए) **वयणं** - वचन सुन कर, **सो** - वह, **णरिंदो** - नरेन्द्र-राजा, **सुसंभंतो** - सुसम्भ्रान्त एवं व्याकुल और, **सुविम्हिओ** - सुविस्मित-अत्यन्त विस्मित बन गया ॥१३॥

अस्सा हत्थी मणुस्सा मे, पुरं अंतेउरं च मे ।
भुंजामि माणुस्से भोगे, आणा इस्सरियं च मे ॥

- राजा श्रेणिक मुनि से कहने लगा कि हे मुने ! **मे** - मेरे पास, **हत्थी** - हाथी, **अस्सा** - अश्व-घोड़े और, **मणुस्सा** - मनुष्य हैं, **पुरं**-



नगर, **च** - और, **अंतेउरं** - अन्तःपुर भी, **मे** - मेरे पास है तथा, **माणुस्से** - मनुष्य सम्बन्धी, **भोगे** - भोगों को, **भुंजामि** - मैं भोगता हूँ। **मे** - मेरी, **आणा** - आज्ञा चलती है, **च** - और, **इस्सरियं** - ऐश्वर्य-मेरे पास द्रव्यादि समृद्धि है ॥ १४ ॥

एरिसे संपयग्गम्मि, सव्वकाम-समप्पिए ।
कहं अणाहो भवइ, मा हु भंते ! मुसं वए ॥१५ ॥

- **एरिसे** - इस प्रकार की, **संपयग्गम्मि** - श्रेष्ठ ऋद्धि सम्पदा के होते हुए तथा, **सव्वकामसमप्पिए** - सभी प्रकार के काम-भोग स्वाधीन होते हुए मैं, **कहं** - कैसे **अणाहो** - अनाथ, **भवइ** - हूँ। इसलिए, **भंते** - हे पूज्य ! **मा हु** - कहीं ऐसा न हो कि, **वए** - आपका वचन, **मुसं** - मृषा-असत्य हो जाय ॥ १५ ॥

ण तुमं जाणे अणाहस्स, अत्थं पोत्थं च पत्थिवा ।
जहा अणाहो भवइ, सणाहो वा णराहिवा ! ॥

- **पत्थिवा** - पार्थिव-पृथ्वीपति-हे राजन् ! **णराहिवा** - हे नराधिप ! **तुमं** - तुम, **अणाहस्स** - अनाथ शब्द के, **अत्थं** - अर्थ **च** - और **पोत्थं** - उसकी मूल उत्पत्ति को, **ण जाणे** - नहीं जानते हो कि, **अणाहो** - अनाथ कैसा, **भवइ** - होता है, **वा** - और, **सणाहो** - सनाथ कैसा होता है ॥ १६ ॥

सुणेह मे महाराय !
जहा अणाहो भवइ, जहा

- **महाराय** - हे महाराज

चेयसा- एकाग्र चित्त से, मे -

जिस प्रकार यह जीव, **अणाहो** - अनाथ, **भवइ** - होता है और, **जहा** - जिस प्रकार, **मे** - मैंने, **इयं** - इस अनाथता की, पवत्तियं- प्रवृत्ति-प्ररूपणा की है ॥

कोसंबी णाम णयरी, पुराणपुरभेयणी ।
तत्थ आसी पिया मज्झ, पभूय-धणसंचओ ॥१८॥

- **पुराणपुरभेयणी** - अपनी विशेषताओं के कारण पुरानी नगरियों से अपने-आपको पृथक् करने वाली (अति प्राचीन) एवं प्रधान, **कोसंबी** - कोशाम्बी, **णाम** - नामक, **णयरी** - नगरी है, **तत्थ** - वहाँ पर, **पभूयधणसंचओ** - बहुत धन का संचय करने वाले प्रभूतधनसंचय नाम के, **मज्झ** - मेरे, **पिया** - पिता, आसी - रहते हैं ॥ १८ ॥

पढमे वए महाराय ! अउला मे अच्छिवेयणा ।
अहोत्था विउलो दाहो, सव्वगत्तेसु पत्थिवा ॥१९॥

- **महाराय** - हे महाराज ! **पढमे वए** - प्रथम वय (यौवनावस्था) में, **मे** - मेरे, **अउला** - अतुला-अत्यन्त, **अच्छिवेयणा** - आँखों की वेदना, **अहोत्था** - हुई थी, उनमें अत्यन्त पीड़ा होने लगी और, **पत्थिवा** - पार्थिव-हे राजन् ! इसके साथ ही साथ, **सव्वगत्तेसु** - मेरे सारे शरीर में, **विउलो** - विपुल-अत्यन्त, **दाहो** - दाह (जलन) होने लगी ॥ १९ ॥

सत्थं जहा परमतिक्खं, सरीर-विवरंतरे ।
आवीलिज्ज अरी कुद्धो, एवं मे अच्छिवेयणा॥

- **जहा** - जिस प्रकार, **कुद्धो** - क्रोध में आया हुआ, **अरी**- शत्रु, **सरीरविवरंतरे** - शरीर के आँख, नाक, कान तथा मर्मस्थानों

✡✡

में **परमतिक्खं** - अत्यन्त तीक्ष्ण, **सत्थं** - शस्त्र, **आवीलिज्ज** - घुसेड़ दे, उससे जिस प्रकार की वेदना होती है, **एवं** - उसी प्रकार की, **मे** - मेरी, **अच्छिवेयणा** - आँखों में असह्य वेदना हो रही थी ॥ २० ॥

तियं मे अंतरिच्छं च, उत्तमंगं च पीडइ ।
इंदासणिसमा घोरा, वेयणा परमदारुणा ॥ २१ ॥

- **इंदासणिसमा** - इन्द्र का अशनि-वज्र लगने से जैसी वेदना होती है वैसी, **घोरा** - घोर, **च** - और, **परमदारुणा** - अत्यन्त दुःखदायी, **वेयणा** - वेदना, **मे** - मेरी, **तियं** - कमर के, **अंतरिच्छं** - मध्य भाग को, **च** - और, **उत्तमंगं** - मस्तक को, **पीडेइ** - पीड़ित कर रही थी ॥ २१ ॥

उवट्ठिया मे आयरिया, विज्जामंत-तिगिच्छया ।
अबीया सत्थ कुसला, मंतमूल-विसारया ॥ २२ ॥

- **मे** - मेरी चिकित्सा करने के लिए ऐसे, **आयरिया** - आचार्य (आयुर्वेदाचार्य) **उवट्ठिया** - उपस्थित हुए थे जो, **विज्जामंततिगिच्छया** - विद्या और मंत्र द्वारा चिकित्सा करने में, **अबीया** - अद्वितीय एवं प्रवीण थे तथा, **सत्थकुसला** - शस्त्रकिया में कुशल अथवा शल्य चिकित्सा शास्त्र में कुशल एवं, **मंतमूल विसारया** - मंत्र और मूल औषधि आदि के प्रयोग करने में विशारद-अति निपुण थे ॥ २२ ॥

ते मे तिगिच्छं कुव्वंति, चाउप्पायं जहाहियं ।
ण य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ।

- **जहाहियं** - जिस उपचार से लाभ हो उसी से, **ते** - वे

---

* दति- निषेध के

मे - मेरी, **चाउप्पायं** - चतुष्पाद-चारपाद वाली तिगि
चिकित्सा, **कुव्वंति** - करते थे, **य** - किन्तु वे मुझे, दुक्
दुःख से, **ण** - नहीं, **विमोयंति** - छुड़ा सके, **एसा** - यह, म
मेरी, **अणाहया**- अनाथता है ॥ २३ ॥

विवेचन - १. योग्य वैद्य हो २. उत्तम औषधि हो ३.
श्रद्धापूर्वक चिकित्सा कराने के लिए उत्सुक हो और ४. रो
सेवा करने वाले विद्यमान हों, इन चार बातों से युक्त चि
"चतुष्पाद चिकित्सा" कहलाती है । इस प्रकार की गई चि
प्रायः सफल होती है ।

पिया मे सव्वसारं पि, दिज्जाहि मम कारणा ।
ण य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया

- **मे** - मेरे, **पिया** - पिता, **मम कारणा** - मेरे लिए, सव
पि - सर्वश्रेष्ठ (बहुमूल्य) पदार्थ भी, **दिज्जाहि** - उन वैद्यों क
के लिए तत्पर थे, **य** - फिर भी वे मुझे, **दुक्खा** - दुःख से,
नहीं, **विमोएइ** - छुड़ा सके, **एसा** - यह, **मज्झ** - मेरी, अणा
अनाथता है ॥ २४ ॥

माया वि मे महाराय ! पुत्तसोग-दुहट्टिया ।
ण य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया

- **महाराय** - हे महाराज ! **पुत्तसोगदुहट्टिया** - पुत्र के
से अत्यन्त दुःखी बनी हुई, **मे** - मेरी, **माया वि** - माता ने भ
रोग निवृत्ति के लिए अनेक उपाय किये, **य** - किन्तु वह भी
दुक्खा - दुःख से, **ण** - नहीं, **विमोएइ** - छुड़ा सकी, ए



भायरा मे महाराय ! सगा जेट्ठकणिट्ठगा ।
ण य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ॥

- **महाराय** - हे महाराज ! **मे** - मेरे, **सगा** - सहोदर (सगे), **जेट्ठकणिट्ठगा** - ज्येष्ठ और कनिष्ठ अर्थात् बड़े और छोटे, **भायरा**- भाइयों ने भी अनेक प्रयत्न किये, **य** - किन्तु वे भी मुझे, **दुक्खा** - दुःख से, **ण विमोयंति** - छुड़ाने में समर्थ नहीं हुए, **एसा** - यह, **मज्झ** - मेरी, **अणाहया** - अनाथता है ॥ २६ ॥

भइणीओ मे महाराय ! सगा जेट्ठकणिट्ठगा ।
ण य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ॥

- **महाराय** - हे महाराज ! **मे** - मेरी, **सगा** - सहोदर (सगी) **जेट्ठकणिट्ठगा** - ज्येष्ठ और कनिष्ठ-अर्थात् बड़ी और छोटी **भइणीओ** - बहिनों ने भी अनेक उपाय किये, **य** - किन्तु वे भी मुझे, **दुक्खा** - दुःख से, **ण विमोयंति** - न छुड़ा सकीं, **एसा** - यह, **मज्झ** - मेरी, **अणाहया**- अनाथता है ॥ २७ ॥

भारिया मे महाराय ! अणुरत्ता अणुव्वया ।
अंसुपुण्णेहिं णयणेहिं, उरं मे परिसिंचइ ॥ २८ ॥
अण्णं पाणं च ण्हाणं च, गंधमल्ल-विलेवणं ।
मए णायमणायं वा, सा बाला णेव भुंजइ ॥२९॥
खणं पि मे महाराय ! पासाओ वि ण फिट्टइ ।
ण य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ

- **महाराय** - हे महाराज ! **अणुरत्ता** - मुझ
अनुराग रखने वाली, **अणुव्वया** - अनुव्रता-

भारिया - भार्या-स्त्री, **अंसुपुण्णेहिं** - आंसुओं से भरे हुए **णयणेहिं**- नेत्रों से, **मे** - मेरी, **उरं** - छाती को, **परिसिंचइ** - सिंचती थी अर्थात् मुझे दुःखी देख कर वह मेरे पास बैठी हुई निरन्तर आंसू गिराती थी, **सा** - वह, **बाला** - मेरी स्त्री, **मए** - मेरे, **णायं** - जानते हुए **वा** - अथवा **अणायं** - न जानते हुए **अण्णं** - अन्न, **पाणं** - पानी, **ण्हाणं** - स्नान और, **गंधमल्ल विलेवणं** - सुगन्धित तैलादि तथा माला विलेपन आदि किसी भी पदार्थ का, **णेव भुंजइ** - सेवन नहीं करती थी । **महाराय** - हे महाराज ! और अधिक तो क्या, वह मेरी स्त्री, **खणं पि** - एक क्षण भर के लिए भी, **मे** - मेरे, **पासाओ** - पास से, **ण फिट्टइ** - दूर नहीं होती थी, इतना करते हुए भी वह मुझे, **दुक्खा** - दुःख से, **ण विमोएइ** - छुड़ाने में समर्थ न हो सकी, **एसा** - यह, **मज्झ** - मेरी, **अणाहया** - अनाथता है ॥ २८-२९-३० ॥

तओऽहं एवमाहंसु, दुक्खमा हु पुणो पुणो ।
वेयणा अणुभविउं जे, संसारम्मि अणंतए ॥३१॥
सइं च जइ मुच्चेज्जा, वेयणा विउला इओ ।
खंतो दंतो णिरारंभो, पव्वइए अणगारियं ॥३२॥

- **तओ** - इसके बाद, (अनेक उपचार करने पर भी जब मेरा रोग शान्त न हुआ तब) **अहं** - मैं, **एवं** - इस प्रकार, **आहंसु**- विचार करने लगा कि, **अणंतए** - इस अनन्त, **संसारम्मि** - संसार में, **दुक्खमा** - ऐसी दुस्सह, **वेयणा** - वेदना, **पुणो पुणो** - बार-बार, **जे** - जो इस आत्मा को, **अणुभविउं** - सहन करनी पड़ती है, इसलिए, **जइ** - यदि मैं, **सइं** - एक बार, **इओ** - इस विउला-

विपुल असह्य वेदना से, **मुच्चेज्जा** - छूट जाऊँ तो, **खंतो** - क्षमावान्, **दंतो**- इन्द्रियों का दमन करने वाला, **च** - और, **णिरारंभो** - आरम्भ रहित होकर, **अणगारियं** - अनगार वृत्ति को, **पव्वइए** - धारण करलूं अर्थात् साधु बन कर वेदना के कारणभूत कर्मों का समूल नाश करने के लिए प्रयत्न करूँ, जिससे फिर कभी ऐसी वेदना का अनुभव ही नहीं करना पड़े ॥ ३१-३२ ॥

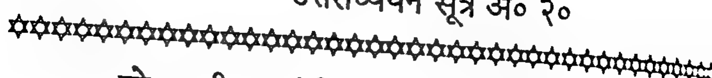
एवं च चिंतइत्ताणं, पसुत्तो मि णराहिवा ! ।
परियत्तंतीए राईए, वेयणा मे खयं गया ॥ ३३ ॥

- **णराहिवा** - नराधिप-हे राजन् ! **एवं** - इस प्रकार, **चिंतइत्ताणं** - विचार करके, **पसुत्तो मि** - मैं सो गया, **राईए** - ज्यों-ज्यों रात्रि, **परियत्तंतीए** - व्यतीत होती गई त्यों-त्यों, **मे** - मेरी, **वेयणा** - वेदना भी, **खयं गया** - क्षीण होती गई और मैं नीरोग हो गया ॥ ३३ ॥

तओ कल्ले पभायम्मि, आपुच्छित्ताण बंधवे ।
खंतो दंतो णिरारंभो, पव्वइओ अणगारियं ॥३४॥

- **तओ** - इसके बाद, **कल्ले** - दूसरे दिन, **पभायम्मि** - प्रातःकाल होते ही, **बंधवे** - अपने माता-पिता आदि तथा बन्धुजनों को, **आपुच्छित्ताण** - पूछ कर, **खंतो** - क्षमावान्, **दंतो** - इन्द्रियों का दमन करने वाला और, **णिरारंभो** - आरम्भ-रहित हो कर मैंने **अणगारियं** - अनगार-वृत्ति, **पव्वइओ** - प्रव्रज्या धारण कर ली है ॥ ३४ ॥

तोऽहं णाहो जाओ, अप्पणो य परस्स य
सव्वेसिं चेव भूयाणं, तसाणं थावराण



- **तो** - दीक्षा अंगीकार करने पर, **अहं** - मैं, **अप्पणो** - अपना, **य** - और, **परस्स** - दूसरों का एवं, **तसाणं** - त्रस, **य** - और, **थावराण** - स्थावर, **सव्वेसिं चेव** - सभी, **भूयाणं** - भूतों का अर्थात् जीवों का, **णाहो** - नाथ, **जाओ** - हो गया हूँ ॥ ३५ ॥

अप्पा णई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे णंदणं वणं ॥३६॥

- **मे** - मेरी, **अप्पा** - आत्मा ही, **वेयरणी** - वैतरणी, **णई** - नदी है और, **अप्पा** - आत्मा ही, **कूडसामली** - कूटशाल्मली वृक्ष है । **मे** - मेरी, **अप्पा** - आत्मा ही, **कामदुहा धेणू** - सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाली कामदुधा धेनु है और, **अप्पा** - आत्मा ही, **णंदणं** - नन्दन, **वणं** - वन है ॥

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥ ३७॥

- **अप्पा** - आत्मा ही, **सुहाण** - सुखों का, **य** - और, **दुहाण** - दुःखों का, **कत्ता** - करने वाला है, **य** - और, **विकत्ता** - विकर्त्ता-सुख-दुःखों को काटने वाला भी आत्मा ही है। **सुपट्ठिओ** - सुप्रतिष्ठित-श्रेष्ठ मार्ग में चलने वाला, **अप्पा** - आत्मा, **मित्तं** - मित्र है, **य** - और, **दुप्पट्ठिय** - दुःप्रतिष्ठित-दुराचार में प्रवृत्ति करने वाला आत्मा, **अमित्तं** - अमित्र-शत्रु है । तात्पर्य यह है कि यह आत्मा स्वयं ही सुख-दुःख का कर्त्ता और भोक्ता है, अन्य कोई नहीं है ॥ ३७ ॥

इमा हु अण्णावि अणाहया णिवा !
तमेग-चित्तो णिहुओ सुणेहि ।



णियंठधम्मं लहियाण वि जहा,
सीयंति एगे बहु कायरा णरा ॥ ३८ ॥

- **णिवा** - हे नृप, हे राजन् ! **इमा** - यह, **अण्णा वि** - दूसरे प्रकार की और भी, **अणाहया** - अनाथता है, **तं** - उसको तुम, **णिहुओ** - निभृत-स्थिरता पूर्वक, **एगचित्तो** - एकाग्र चित्त होकर, **सुणेहि** - सुनो, **जहा** - जैसे कि, **णियंठधम्मं** - निर्ग्रंथ धर्म को, **लहियाण वि** - प्राप्त करके भी, **एगे** - कई एक, **बहुकायरा** - बहुत-से कायर, **णरा** - मनुष्य, **सीयंति** - धर्म के विषय में शिथिल हो जाते हैं ॥ ३८ ॥

जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं,
समं च णो फासयइ पमाया ।
अणिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे,
ण मूलओ छिण्णइ बंधणं से ॥ ३९ ॥

- **जो** - जो साधु, **पव्वइत्ताण** - दीक्षा लेकर, **पमाया** - प्रमादवश, **महव्वयाइं** - पांच महाव्रतों का, **समं** - सम्यक् प्रकार से, **णो फासयइ** - पालन नहीं करता, **च** - और, **अणिग्गहप्पा** - इन्द्रियों के अधीन होकर, **रसेसु** - रसों में, **गिद्धे** - गृद्धिभाव रखता है, **से** - वह साधु, **बंधणं** - कर्मों के बन्धन को, **मूलओ** - मूल से, **ण**- नहीं, **छिण्णइ** - काट सकता है ॥ ३९ ॥

आउत्तया जस्स य णत्थि काइ,
इरीयाए भासाए तहेसणाए ।
आयाणणिक्खेव-दुगुंछणाए ,
ण वीरजायं अणुजाइ मग्गं ॥ ४० ॥



- **इरीयाए** - ईर्यासमिति, **भासाए** - भाषासमिति, **एसणाए** - एषणासमिति, **य** - और, **आयाण णिक्खेव दुगुंछणाए** - आदान-भंडमात्र-निक्षेपणा समिति, **तहा** - तथा उच्चार- प्रस्रवण खेल-सिंघाण-जल्ल-परिस्थापनिका समिति इन पाँच समितियों में, जस्स- जिस साधु का, **काइ** - कुछ भी, **आउत्तया**- उपयोग, णत्थि - नहीं है, वह **वीरजायं** - वीर भगवान् तथा शूरवीर पुरुषों द्वारा सेवित, **मग्गं** - मार्ग का, **ण अणुजाइ** - अनुसरण नहीं कर सकता है अर्थात् संयम-मार्ग का यथावत् पालन नहीं कर सकता है ॥४०॥

चिरं पि से मुंडरुई भवित्ता,
अथिरव्वए तव णियमेहिं भट्ठे ।
चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता,
ण पारए होइ हु संपराए ॥ ४१ ॥

- जो साधु, **चिरं पि** - बहुत काल तक, **मुंडरुई** - मुण्डरुचि, **भवित्ता** - होकर, **अथिरव्वए** - अस्थिर व्रत वाला और **तव णियमेहिं** - तप और नियमों से, **भट्ठे** - भ्रष्ट है अर्थात् जो ग्रहण किये हुए पाँच महाव्रतों का सम्यक् पालन नहीं करता और जो केवल मुण्डरुचि है अर्थात् जिसने सिर मुंडा कर वेष तो साधु का पहन लिया है, किन्तु जो भाव से मुंडित नहीं हुआ है, से - वह साधु, **चिरं पि** - बहुत काल तक, **अप्पाणं** - अपनी आत्मा को, **किलेसइत्ता** - क्लेशित करके भी, **हु** - निश्चय से, **संपराए** - संसार से, **पारए** - पार, **ण होइ** - नहीं हो सकता ॥ ४१ ॥

पोल्लेव मुट्ठी जह से असारे,
अयंतिए कूडकहावणे वा ।



राढामणी वेरुलियप्पगासे,

अमहग्घए होइ हु जाणएसु ॥ ४२ ॥

- **जह** - जिस प्रकार, **पोल्लेव** - पोली (खाली) **मुट्ठी** - मुष्टि-मुट्ठी, **असारे** - असार है, **वा** - और जिस प्रकार, **कूडकहावणे** - कूटकार्षापण-खोटा सिक्का असार है और जैसे, **राढामणी** - कांच का टुकड़ा, **वेरुलियप्पगासे** - वैडूर्यमणि के समान प्रकाश करने वाला होने पर भी, **जाणएसु** - जानकार पुरुषों के सामने, **हु** - निश्चय ही वह, **अमहग्घए** - अल्प मूल्य वाला, **होइ** - हो जाता है । इसी प्रकार, **अयंतिए** - अनियमित अर्थात् द्रव्य लिंगी साधु भी विवेकी पुरुषों में प्रशंसनीय नहीं होता ॥ ४२ ॥

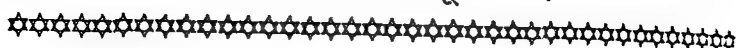
कुसीललिंगं इह धारइत्ता,

इसिज्झयं जीविय बूहइत्ता ।

असंजए संजय-लप्पमाणे,

विणिग्घाय-मागच्छइ से चिरं पि ॥ ४३ ॥

- **इह** - इस मनुष्य जन्म में, **कुसीललिंगं** - कुशीलिये (पासत्थे) आदि का लिंग, **धारइत्ता** - धारण करके तथा, **इसिज्झयं** - ऋषिध्वज रजोहरण आदि मुनि के बाह्य-चिह्नों को धारण करके उनके द्वारा, **जीविय** - अपनी आजीविका का, **बूहइत्ता** - पोषण करता हुआ अर्थात् असंयमपूर्ण जीवन व्यतीत करता हुआ और, **असंजए** - असंयत होते हुए भी, **संजय लप्पमाणे** - अपने आपको संयत बतलाने वाला, **से** - वह द्रव्यलिंगी साधु, **चिरं पि** - बहुत काल तक, **विणिग्घायं** - विनिघात-विनाश को, **आगच्छइ** - प्राप्त होता है अर्थात् नरक आदि दुर्गतियों में दुःख भोगता रहता है ॥ ४३ ॥



विसं तु पीयं जह कालकूडं,
हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं ।
एसो वि धम्मो विसओववण्णो,
हणाइ वेयाल इवाविवण्णो ॥ ४४ ॥

- **जह** - जिस प्रकार, **पीयं** - पीया हुआ, **कालकूडं** - कालकूट नामक, **विसं** - विष, **हणाइ** - प्राणों का नाश कर देता है, **जह** - और जिस प्रकार, **कुग्गहीयं** - उलटा पकड़ा हुआ, **सत्थं**- शस्त्र अपना ही घात करता है, **इव** - जैसे, **अविवण्णो** - अविपन्न-सम्यक् प्रकार मंत्र आदि से वश में न किया हुआ, **वेयाल** - वैताल (पिशाच) अपने साधक को ही मार डालता है उसी प्रकार, **विसओववण्णो** - शब्दादि विषयों से युक्त हुआ, **एसो** - यह, **धम्मो वि**- धर्म भी, **हणाइ** - द्रव्य-लिंगी साधु का विनाश कर देता है अर्थात् वह नरक आदि दुर्गतियों में दुःख भोगता रहता है ॥ ४४ ॥

जो लक्खणं सुविणं पउंजमाणे,
णिमित्त-कोऊहल-संपगाढे ।
कुहेडविज्जासवदारजीवी,
ण गच्छइ सरणं तम्मि काले ॥ ४५ ॥

- **जो** - जो साधु, **लक्खणं** - लक्षण शास्त्र और, **सुविणं** - स्वप्नशास्त्र का, **पउंजमाणे** - प्रयोग करता है अर्थात् स्त्री-पुरुषों के शारीरिक चिह्नों द्वारा शुभाशुभ फल बतलाता है और स्वप्नों का शुभाशुभ फल बतलाता है तथा जो, **णिमित्त कोऊहल संपगाढे** - भूकम्पादि निमित्त शास्त्र और कौतुकादि के प्रयोग करने में आसक्त

रहता है और जो, **कुहेडविज्जासवदारजीवी** - कुहेटक विद्या (आश्चर्य में डाल देने वाली मंत्र-तंत्रादि विद्या) जिससे हिंसा झूठ आदि आस्रवों का आगमन होता है उस विद्या से आजीविका करता है, वह साधु, **तम्मि काले** - कर्मों का फल भोगने के समय, **सरणं** - किसी की शरण को, **ण गच्छइ** - प्राप्त नहीं होता अर्थात् अपने कर्मों का फल स्वयं को ही भोगना पड़ता है ॥४५ ॥

तमं तमेणेव उ से असीले,
सया दुही विप्परियामुवेइ ।
संधावइ णरगतिरिक्ख-जोणिं,
मोणं विराहित्तु असाहुरूवे ॥ ४६ ॥

- **असाहुरूवे** - साधु का वेष धारण करने वाला किन्तु भाव से असाधु रूप, **से** - वह, **असीले** - कुशीलिया साधु, **तमं तमेणेव** - अत्यन्त अज्ञानान्धकार से, **मोणं** - चारित्र की, **विराहित्तु**- विराधना करके, **सया** - सदैव, **दुही** - दुःखी होता हुआ, **विप्परियामुवेइ(विप्परियासुवेइ)** - विपरीत भाव को प्राप्त होता है और, **णरगतिरिक्ख जोणिं** - नरक-तिर्यञ्च आदि दुर्गतियों में, **संधावइ** - जाता है अर्थात् उत्पन्न होता हैं ॥४६ ॥

उद्देसियं कीयगडं णियागं,
ण मुंचइ किंचि अणेसणिज्जं ।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता,
इत्तो चुए गच्छइ कट्टु पावं ॥ ४७ ॥

- जो साधु, **उद्देसियं** - औद्देशिक, **कीयगडं** - क्रीतकृत-खरीदा हुआ, **णियागं** - नियागपिण्ड (नित्यपिण्ड) और,

अणेसणिज्जं - अनेषणीय आहार आदि, **किंचि** - कुछ भी, ण - नहीं, **मुंचइ** - छोड़ता, अपितु सब को ग्रहण कर लेता है वह, **अग्गी विवा** - अग्नि के समान, **सव्वभक्खी** - सर्वभक्षी, **भवित्ता**- होकर, **इत्तो**- यहाँ का, **चुए** - आयुष्य पूरा करके तथा, **पावं** - पापकर्मों को, **कट्टु** - उपार्जन करके, गच्छइ - दुर्गति में चला जाता है ॥ ४७ ॥

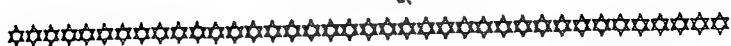
विवेचन - औद्देशिक - किसी खास साधु के लिए बनाया गया आहारादि यदि वही साधु ले तो '**आधाकर्म**' और यदि दूसरा साधु ले तो "**औद्देशिक**" कहलाता है । कीयगड-क्रीतकृत-साधु के लिए खरीदा हुआ आहारादि '**क्रीतकृत**' कहलाता है ।

दशवैकालिक सूत्र के तीसरे अध्ययन में बावन अनाचारों का वर्णन है । उसकी दूसरी गाथा में '**णियाग**' शब्द आया है । उसका अर्थ रायबहादुर धनपतसिंह जी मुर्शिदाबाद (मक्सूदाबाद) वालों की तरफ से प्रकाशित सटीक दशवैकालिक सूत्र की टीका में इस प्रकार किया है -

'**णियाग**' - णियागमित्यामंत्रितस्य पिण्डस्य ग्रहणं, नित्यं तत् तु अनामन्त्रितस्य ।

अर्थ - किसी का आमंत्रण स्वीकार कर उसके घर से लिया हुआ आहार-पानी तथा प्रतिदिन एक ही घर से लिया हुआ आहार-पानी आदि 'णियाग पिण्ड' (नित्य-पिण्ड) कहलाता है ।

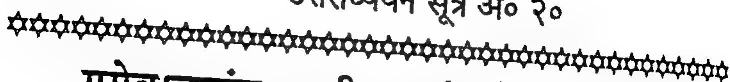
ण तं अरी कंठछित्ता करेइ,
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा ।
से णाहइ मच्चुमुहं तु पत्ते,
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥ ४८ ॥



- **दुरप्पा** - दुराचार में प्रवृत्त हुआ, **से** - वह अपना, **अप्पणिया**- आत्मा, **जं** - जितना, **करे** - अनर्थ करता है, **तं** - उतना अनर्थ तो, **कंठछित्ता** - कंठ को छेदन करने वाला, **अरी** - शत्रु भी, **ण** - नहीं, **करेइ** - कर सकता, **दया विहूणो** - दया-रहित अर्थात् संयम-रहित **से** - यह आत्मा, **मच्चुमुहं** - मृत्यु के मुख में, **पत्ते** - पहुँचा हुआ, **पच्छाणुतावेण** - पश्चात्ताप करता हुआ, **णाहइ**- इस बात को जानेगा अर्थात् अपनी दुष्ट प्रवृत्तियों का स्मरण करके पश्चात्ताप करेगा ॥ ४८ ॥

णिरट्ठिया णग्गरुई उ तस्स,
जे उत्तमट्ठं विवज्जासमेइ ।
इमे वि से णत्थि परे वि लोए,
दुहओ वि से झिज्झइ तत्थ लोए ॥ ४९ ॥

- **तस्स** - ऐसे द्रव्यलिंगी मुनि की, **णग्गरुई** - नग्नरुचि - नग्न अर्थात् संयम में रुचि रखना, **णिरट्ठिया** - निरर्थक है, **जे** - जो, **उत्तमट्ठं** - उत्तम अर्थ में भी, **विवज्जासमेइ** - विपरीत भाव रखता है अर्थात् सदाचार को दुराचार और दुराचार को सदाचार मानता है, **से** - उस आत्मा के लिए, **इमे** - यह, **लोए** - लोक, **वि**- और, **परे वि** - परलोक दोनों भी, **णत्थि** - नहीं हैं अर्थात् दोनों बिगड़ जाते हैं, **तत्थ** - इस प्रकार उभय-लोक के अभाव में, **से** - वह, **लोए** - लोक में, **दुहओ वि** - दोनों प्रकार से, **झिज्झइ** - चिन्तित होकर क्षीण होता है अर्थात् इस लोक में तो केशलुंचन आदि क्रियाओं से क्लेशित होता है और परलोक में नरक-तिर्यंच आदि गतियों में दुःख भोगता है ॥ ४९ ॥



एमेवऽहाछंद कुसील-रूवे,
मग्गं विराहित्तु जिणुत्तमाणं ।
कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा,
णिरट्ठसोया परियावमेइ ॥ ५० ॥

- **एमेव** - इस प्रकार, **अहाछंद कुसील रूवे** - स्वच्छन्दाचारी और कुशीलिया साधु, **जिणुत्तमाणं** - जिनेन्द्र भगवान् के उत्तम, **मग्गं** - मार्ग की, **विराहित्तु** - विराधना करके, **भोगरसाणुगिद्धा** - भोगरस में अर्थात् मांस के टुकड़े में आसक्त बनी हुई, **णिरट्ठसोया**- निरर्थक शोक करने वाली, **कुररी विवा** - कुररी-पक्षिणी के समान भोगों में आसक्त बन कर, **परियावमेइ** - परिताप को प्राप्त होता है-पश्चात्ताप करता है ॥ ५० ॥

सोच्चाण मेहावी सुभासियं इमं,
अणुसासणं णाणगुणोववेयं ।
मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं,
महाणियंठाण वए पहेणं ॥ ५१ ॥

- अनाथी मुनि राजा श्रेणिक को एवं समस्त भव्य पुरुषों को सम्बोधित करते कहते हैं कि, **सुभासियं** - सुभाषित-भली प्रकार कही हुई, **णाणगुणोववेयं** - ज्ञानगुण से युक्त, **इमं** - इस, **अणुसासणं** - अनुशासन-शिक्षा को, **सोच्चाण** - सुन कर, **मेहावी** - बुद्धिमान् साधु, **कुसीलाण** - कुशीलियों के, **मग्गं** - कुत्सित मार्ग को, **सव्वं** - सर्वथा प्रकार से, **जहाय** - छोड़ कर, **महाणियंठाण** - महा निर्ग्रन्थों के, **पहेण** - मार्ग से, **वए** - चले अर्थात् अनुसरण करे ॥ ५१ ॥



चरित्तमायारगुणण्णिए तओ,
अणुत्तरं संजम पालियाणं ।
णिरासवे संखवियाण कम्मं,
उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं ॥ ५२ ॥

– महा निर्ग्रंथों के मार्ग का अनुसरण करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उसका वर्णन करते हैं कि, **चरित्त-मायारगुणण्णिए** – चारित्र और ज्ञानादि गुणों से युक्त होकर, **अणुत्तरं** – अनुत्तर-प्रधान, **संजम** – संयम का, **पालियाणं** – पालन करने के, **तओ** – पश्चात्, **णिरासवे** – आस्रवों से रहित होकर तथा, **कम्मं** – कर्मों का, **संखवियाण** – सर्वथा क्षय कर के, **विउलुत्तमं** – विशाल एवं सर्वोत्तम, **धुवं** – ध्रुव-शाश्वत, **ठाणं** – स्थान को अर्थात् जहाँ जाकर पुनः संसार में लौटना न पड़े ऐसे मोक्ष स्थान को, **उवेइ** – प्राप्त हो जाता है ॥५२ ॥

एवुग्गदंते वि महातवोधणे,
महामुणी महापइण्णे महायसे ।
महाणियंठिज्जमिणं महासुयं,
से काहए महया वित्थरेणं ॥ ५३ ॥

– **उग्गदंते वि** – कर्म शत्रुओं का उग्र रूप से दमन करने वाले, **महातवोधणे** – महान् तपस्वी, **महापइण्णे** – महा प्रतिज्ञा-दृढ़ प्रतिज्ञा वाले, **महायसे** – महा यशस्वी, **से** – उन, **महामुणी** – महामुनि ने, **इणं** – इस, **महाणियंठिज्जं** – महा-निर्ग्रंथों के लिए हितकारी महानिर्ग्रन्थीय नामक, **महासुयं** – महाश्रुत अध्ययन का, **महया** – बहुत, **वित्थरेणं**– विस्तार के साथ महाराज श्रेणिक के सामने, **एवं** – इस प्रकार, **काहए**– कथन किया ॥५३ ॥

तुट्ठो य सेणिओ राया, इणमुदाहु कयंजली ।
अणाहत्तं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं ॥५४॥

– **तुट्ठो** – मुनि के उपदेश से संतुष्ट एवं प्रसन्न हुआ, **सेणिओ** – श्रेणिक, **राया** – राजा, **कयंजली** – कृताञ्जलि-दोनों हाथ जोड़ कर, **इणं** – इस प्रकार, **उदाहु** – कहने लगा कि हे भगवन्! आपने, **अणाहत्तं**–अनाथता का, **जहाभूयं** – यथार्थ स्वरूप, **मे** – मुझे, **सुट्ठु**–भली प्रकार से, **उवदंसियं**–समझाया है ॥५४॥

तुज्झं सुलद्धं खु मणुस्स-जम्मं,
लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी !
तुब्भे सणाहा य सबंधवा य,
जं भे ठिया मग्गे जिणुत्तमाणं ॥५५॥

– राजा श्रेणिक अनाथी मुनि का हार्दिक अभिनन्दन करता हुआ कहता है कि, **महेसी** – हे महर्षि ! **तुज्झं** – आपका, **मणुस्स-जम्मं** – मनुष्य-जन्म पाना, **खु** – वास्तव में, **सुलद्धं** – सुलब्ध (सफल) है, **य** – और, **तुमे** – आपने ही, **लाभा** – वास्तविक लाभ, **सुलद्धा** – प्राप्त किया है, **य** – तथा, **तुब्भे** – आप ही, **सणाहा** - सनाथ, **य** – और, **सबंधवा** – सबान्धव हैं, **जं** – क्योंकि, **भे** - आप, **जिणुत्तमाणं** – सर्वोत्तम जिनेन्द्र भगवान् के, **मग्गे** – मार्ग में, **ठिया**– स्थित हुए हैं ॥५५॥

तंसि णाहो अणाहाणं, सव्वभूयाण संजया !
खामेमि ते महाभाग ! इच्छामि अणुसासिउं ।

– **महाभाग** – हे महाभाग ! **तं** – आप, **अणाहाणं** -

☆☆

अनाथों के, **णाहो** - नाथ, **सि** - हैं, **संजया** - हे संयति ! आप, **सव्वभूयाण** - समस्त प्राणियों के, **णाहो** - नाथ हैं । हे पूज्य ! यदि कोई मेरा अपराध हुआ हो तो उसके लिए मैं, **ते** - आप से, **खामेमि** - क्षमा मांगता हूँ और मैं आपके द्वारा, **अणुसासिउं** - शिक्षा प्राप्त करने की, **इच्छामि** - इच्छा करता हूँ ॥ ५६ ॥

पुच्छिऊण मए तुब्भं, झाणविग्घो य जो कओ ।
णिमंतिया य भोगेहिं, तं सव्वं मरिसेहि मे ॥ ५७ ॥

- **मए** - मैंने आप से प्रव्रज्या का कारण, **पुच्छिऊण** - पूछ कर, **जो** - जो, **तुब्भं** - आपके, **झाणविग्घो** - ध्यान में विघ्न, **कओ** - किया है, **य** - और, **भोगेहिं** - भोगों के लिए, **णिमंतिया** - निमंत्रित करके आपका जो अपराध किया है, **तं** - उन, **सव्वं** - सभी अपराधों के लिए आप, **मे** - मुझे, **मरिसेहि** - क्षमा प्रदान करें ॥ ५८ ॥

एवं थुणित्ताण स रायसीहो,
अणगारसीहं परमाइ भत्तिए ।
सओरोहो सपरियणो सबंधवो,
धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा ॥ ५८ ॥

- **एवं** - इस प्रकार, **रायसीहो** - राजाओं में सिंह के समान पराक्रमी, **स** - वह राजा श्रेणिक, **अणगारसीहं** - कर्म रूपी शत्रुओं का नाश करने में सिंह के समान उस अनाथी मुनि की, **परमाइ** - उत्कृष्ट, **भत्तिए** - भक्तिपूर्वक, **थुणित्ताण** - स्तुति करके, **सओरोहो** - अपने अन्तःपुर सहित, **सपरियणो** - परिवार सहित और, **सबंधवो** - बन्धुओं सहित, **विमलेण चेयसा** -

मिथ्यात्व-रहित निर्मल चित्त से, **धम्माणुरत्तो** - धर्म में अनुरक्त बन गया अर्थात् सम्यक्त्व प्राप्त कर ली ॥ ५८ ॥

ऊससियरोमकूवो, काऊण य पयाहिणं ।
अभिवंदिऊण सिरसा, अइयाओ णराहिवो ॥५९॥

- **ऊससियरोमकूवो** - हर्ष से रोमांचित हुआ वह, **णराहिवो**- नराधिप-राजा श्रेणिक, **पयाहिणं** - प्रदक्षिणा, **काऊण** - करके, **य** - और, **सिरसा** - मस्तक झुका कर, **अभिवंदिऊण** - वन्दना कर के, **अइयाओ** - अपने स्थान पर चला गया ॥ ५९ ॥

इयरो वि गुणसमिद्धो,
तिगुत्तिगुत्तो तिदंडविरओ य ।
विहग इव विप्पमुक्को,
विहरइ वसुहं विगयमोहो ॥ ६० ॥ त्ति बेमि ॥

- **गुणसमिद्धो** - गुणों से समृद्ध, **तिगुत्ति गुत्तो** - तीन गुप्तियों से गुप्त, **य** - और, **तिदंडविरओ** - तीन दण्ड से निवृत्त बने हुए, **इयरो वि** - अनाथी मुनि, **विगयमोहो** - मोह (ममत्व) से रहित होकर तथा, **विहग इव** - पक्षी के समान, **विप्पमुक्को** - प्रतिबन्ध रहित होकर, **वसुहं** - वसुधा-पृथ्वी पर, **विहरइ** - विचरने लगे और शुद्ध संयम का पालन कर सब कर्मों का क्षय कर सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गये । **त्तिबेमि** - ऐसा मैं कहता हूँ ॥ ६० ॥

॥ बीसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

'समुद्रपालीय' इक्कीसवां अध्ययन

चंपाए पालिए णामं, सावए आसी वाणिए ।
महावीरस्स भगवओ, सीसे सो उ महप्पणो ॥ १ ॥

- **चंपाए** - चम्पा नगरी में, **पालिए** - पालित, **णामं** - नामक, **वाणिए** - एक वणिक व्यापार करने वाला, **सावए** - श्रावक, **आसी** - रहता था, **सो** - वह, **महप्पणो** - महात्मा, **भगवओ** - भगवान्, **महावीरस्स** - महावीर का, **सीसे** - शिष्य था ॥ १ ॥

णिग्गंथे पावयणे, सावए से विकोविए ।
पोएण ववहरंते, पिहुंडं णगरमागए ॥ २ ॥

- **से** - वह, **सावए** - श्रावक, **णिग्गंथे पावयणे** - निर्ग्रंथ प्रवचन में, **विकोविए** - विकोविद-विशेष पंडित था अर्थात् वह जीव अजीव आदि तत्त्वों का विशेष ज्ञाता था । उसका व्यापार जहाजों से चलता था, इसलिए, **पोएण** - पोत (जलयान-जहाज) से, **ववहरंते** - व्यापार करता हुआ वह, **पिहुंडं** - पिहुण्ड नामक, **णगरं** - नगर में, **आगए** - पहुँचा ॥ २ ॥

पिहुंडे ववहरंतस्स, वाणिओ देइ धूयरं ।
तं ससत्तं पइगिज्झ, सदेसमह पत्थिओ ॥ ३ ॥

- **पिहुंडे** - पिहुंड नगर में, **ववहरंतस्स** - व्यापार करते हुए उस पालित श्रावक को, **वाणिओ** - किसी व्यापारी ने, **धूयरं** - अपनी कन्या, **देइ** - दे दी अर्थात् पालित श्रावक के गुणों से आकृष्ट हो कर अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया,

अह – कुछ समय पश्चात् वह गर्भवती हुई । इधर पालित श्रावक के व्यापार का कार्य भी पूरा हो गया तब वह, **तं ससत्तं** – अपनी उस गर्भवती स्त्री को, **पइगिज्झ** – साथ लेकर, **सदेसं** – अपने देश के लिए, **पत्थिओ** – रवाना हुआ ॥ ३ ॥

अह पालियस्स घरणी, समुद्दम्मि पसवइ ।
अह दारए तहिं जाए, समुद्दपालित्ति णामए ॥४॥

– **अह** – समुद्र में यात्रा करते हुए उस, **पालियस्स** - पालित श्रावक की, **घरणी** – गृहिणी–स्त्री के, **समुद्दम्मि** – समुद्र में, **पसवइ** – प्रसव हुआ, **तहिं** – समुद्र में, **दारए** – बालक का, **जाए** – जन्म हुआ, **अह** – इसलिए, **णामए** – उसका नाम, **समुद्दपालित्ति** – समुद्रपाल रखा गया ॥ ४ ॥

खेमेण आगए चंपं, सावए वाणिए घरं ।
संवड्ढइ घरे तस्स, दारए से सुहोइए ॥ ५ ॥

– **वाणिए** – वह वणिक, **सावए** – श्रावक, **खेमेण** – क्षेम कुशल पूर्वक, **चंपं** – चम्पा नगरी में, **घरं** – अपने घर, **आगए** - आ गया और, **सुहोइए** – सुखोचित–सुख के साथ, **से** – वह, **दारए** – बालक, **तस्स** – उस पालित श्रावक के, **घरे** – घर में, **संवड्ढइ** – बढ़ने लगा ॥ ५ ॥

बावत्तरी – कलाओ य, सिक्खिए णीइकोविए ।
जोव्वणेण य अप्फुण्णे, सुरूवे पियदंसणे ॥ ६ ॥

– शिक्षा ग्रहण के योग्य होने पर समुद्रपाल को विद्या गुरु के पास भेजा गया वहाँ, **सुरूवे** – अत्यन्त सुरूप और,

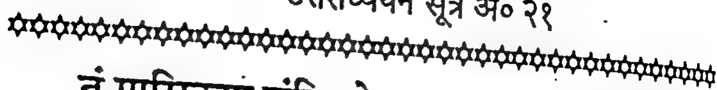
पियदंसणे - सभी को प्रिय लगने वाले उस समुद्रपाल ने, **बावत्तरी**- पुरुष की बहत्तर, **कलाओ** - कलाएँ, **सिक्खिए** - सीखीं, **य** - और, **णीइकोविए** - नीतिकोविद-वह नीति में पंडित बन गया। क्रमशः वह, **जोव्वणेण** - यौवन अवस्था को, **अप्फुण्णे** - प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥

तस्स रूववइं भज्जं, पिया आणेइ रूविणिं ।
पासाए कीलए रम्मे, देवो दोगुंदगो जहा ॥ ७ ॥

- समुद्रपाल की विवाह योग्य अवस्था देख कर, **तस्स** - उसका, **पिया** - पिता, **रूविणिं** - उसके लिए रूपिणी (रुक्मिणी) नाम की, **रूववइं** - रूपवती, **भज्जं** - भार्या, **आणेइ** - लाया अर्थात् रूपिणी नाम की एक सुन्दर कन्या के साथ उसका विवाह कर दिया। वह उसके साथ, **रम्मे** - रमणीय, **पासाए** - प्रासाद में, **दोगुंदगो देवो जहा** - दोगुन्दक जाति के देवों के समान निर्विघ्नरूप से, **कीलए** - क्रीड़ा करने लगा ॥ ७ ॥ (त्रायस्त्रिंशक देवों को दोगुन्दक भी कहते हैं)

अह अण्णया कयाइ, पासायालोयणे ठिओ ।
वज्झ-मंडण-सोभागं, वज्झं पासइ वज्झगं ॥ ८ ॥

- **अह** - इसके बाद, **अण्णया कयाइ** - किसी एक समय, **पासायालोयणे** - प्रासाद (भवन) के गवाक्ष (खिड़की) में, **ठिओ**- बैठे हुए समुद्रपाल ने, **वज्झमंडणसोभागं** - मृत्यु दण्ड पाये हुए पुरुष के योग्य रक्त चन्दन, कनेर की माला आदि मृत्यु-चिह्नों से युक्त, **वज्झं** - वध्य-एक अपराधी पुरुष को मारने के लिए, **वज्झगं** - फांसी के स्थान पर ले जाते हुए, **पासइ** - देखा ॥ ८ ॥



तं पासिऊण संविग्गो, समुद्दपालो इणमब्बवी ।
अहोऽसुहाण कम्माणं, णिज्जाणं पावगं इमं ॥ ९ ॥

- तं - उस अपराधी को, **पासिऊण** - देख कर, **समुद्दपालो**- समुद्रपाल, **संविग्गो** - संवेग को प्राप्त हो कर, **इणं** - इ प्रकार, **अब्बवी** - कहने लगा कि, **अहो** - अहो !, **असुहाण** अशुभ, **कम्माणं** - कर्मों का, **णिज्जाणं** - निर्याण-अन्तिम फल **पावगं** - पाप रूप ही होता है, **इमं** - जैसा कि यह प्रत्य दिखाई दे रहा है ॥ ९ ॥

संबुद्धो सो तहिं भगवं, परमसंवेगमागओ ।
आपुच्छऽम्मापियरो, पव्वए अणगारियं ॥ १० ॥

- **तहिं** - वहाँ प्रासाद के गवाक्ष में बैठा हुआ, **भगवं** - ऐश्वर्य सम्पन्न, **सो** - वह समुद्रपाल, **संबुद्धो** - बोध को प्राप्त हुआ और, **परमसंवेगं** - परम संवेग को, **आगओ** - प्राप्त हुआ। इसके बाद, **अम्मापियरो** - अपने माता-पिता को, **आपुच्छ** - पूछ कर उसने, **अणगारियं** - अनगार वृत्ति, **पव्वए** - अंगीकार कर ली ॥ १० ॥

जहित्तु सग्गंथमहाकिलेसं,
महंतमोहं कसिणं भयावहं ।
परियायधम्मं चाभिरोयएज्जा,
वयाणि सीलाणि परीसहे य ॥ ११ ॥

- **महाकिलेसं** - महा क्लेशकारी, **महंतमोहं** - महा मोहोत्पादक, **भयावहं** - अनेक भयों को उत्पन्न करने वाले



कसिणं - सम्पूर्ण, **सग्गंथं (संगं च)** - परिग्रह एवं स्वजनादि के प्रतिबन्ध को, **जहित्तु** - छोड़ कर वे, **परियायधम्मं** - प्रव्रज्या धर्म में **अभिरोयएज्जा** - लीन रहने लगे, **वयाणि** - पाँच महाव्रतों और **सीलाणि** - पिण्ड-विशुद्ध्यादि उत्तर-गुणों का पालन करने लगे, **च** - तथा, **परीसहे** - परीषहों को सहन करने लगे ॥ ११ ॥

अहिंस सच्चं च अतेणगं च,
तत्तो य बंभं अपरिग्गहं च ।
पडिवज्जिया पंच महव्वयाणि,
चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विदू ॥ १२ ॥

- **अहिंस** - अहिंसा, **सच्चं** - सत्य, **अतेणगं** - अस्तेय (अदत्त का त्याग), **बंभं** - ब्रह्मचर्य, **य** - और, **अपरिग्गहं** - अपरिग्रह रूप, **पंच** - पाँच, **महव्वयाणि** - महाव्रतों को, **पडिवज्जिया** - अंगीकार कर के, **विदू (विऊ)** - वे विद्वान् मुनि, **जिणदेसियं** - जिनेन्द्र देव द्वारा उपदिष्ट, **धम्मं** - धर्म का, **चरिज्ज**- पालन (सेवन) करने लगे ॥ १२ ॥

सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकंपी,
खंतिक्खमे संजय-बंभयारी ।
सावज्ज जोगं परिवज्जयंतो,
चरिज्ज भिक्खू सुसमाहि इंदिए ॥ १३ ॥

- **सव्वेहिं** - सभी, **भूएहिं** - जीवों पर, **दयाणुकंपी** - दयापूर्वक अनुकम्पा करने वाला, **खंतिक्खमे** - कठोर वचनों को क्षमा एवं शांतिपूर्वक सहन करने वाला, **संजयबंभयारी** - संयत एवं ब्रह्मचारी, **सुसमाहि इंदिए** - सुसमाधि युक्त तथा इन्द्रियों को वश

में रखने वाला, **भिक्खू** - साधु, **सावज्ज जोगं** - सभी प्रकार के सावद्य व्यापारों को, **परिवज्जयंतो** - छोड़ कर, **चरिज्ज** - विचरे समुद्रपाल मुनि इसी प्रकार विचरने लगे ॥ १३ ॥

कालेण कालं विहरेज्ज रट्ठे,
बलाबलं जाणिय अप्पणो य ।
सीहो व सद्देण ण संतसेज्जा,
वयजोग सुच्चा ण असब्भमाहु ॥ १४ ॥

- मुनि, **कालेण कालं** - कालोकाल (यथा समय प्रतिलेखनादि क्रियाएँ करता हुआ), **अप्पणो** - अपने आत्मा के, **बलाबलं** - बलाबल अर्थात् सहिष्णुता और असहिष्णुता रूप शक्ति को, **जाणिय** - जान कर, **रट्ठे** - देश में, **विहरेज्ज** - विचरे, **य** - और **सीहो व** - जिस प्रकार सिंह किसी भयानक शब्द को सुन कर भयभीत नहीं होता उसी प्रकार साधु भी, **सद्देण** - भयानक शब्दों को सुन कर, **ण संतसेज्जा** - डरे नहीं और, **वयजोग** - दुःखोत्पादक शब्दों को, **सुच्चा** - सुन कर, **असब्भं** - असभ्य एवं कठोर वचन, **ण आहु** - न कहे । समुद्रपाल मुनि भी उपरोक्त प्रकार से आचरण करते थे ॥ १४ ॥

उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा,
पियमप्पियं सव्व तितिक्खएज्जा ।
ण सव्व सव्वत्थऽभिरोयएज्जा,
ण यावि पूयं गरहं च संजए ॥ १५ ॥

- **संजए** - संयत-इन्द्रियों को वश में रखने वाला मुनि उपरोक्त बातों का, **उवेहमाणो** - विचार करता हुआ, **परिव्वएज्जा**-

विचरे, **उ** - तथा, **पियं** - प्रिय और, **अप्पियं** - अप्रिय, **सव्व** - सभी को, **तितिक्खएज्जा** - समभाव से सहन करे (इष्ट-वियोग अनिष्ट-संयोग में सहन-शील हो कर मध्यस्थ भाव रखे), **सव्वत्थ**- सर्वत्र, **सव्व** - सभी पदार्थों की, **ण अभिरोयएज्जा** - अभिलाषा न करे (जिन-जिन सुन्दर वस्तुओं को देखे, उन सभी की इच्छा नहीं करे) **च** - तथा, **पूयं** - पूजा-सत्कार, **यावि** - और, **गरहं** - गर्हा (निन्दा) को भी, **ण**- न चाहे समुद्रपाल मुनि प्रशंसा और निन्दा में समभाव रखते थे ॥ १५ ॥

अणेगछंदामिह माणवेहिं,
जे भावओ संपगरेइ भिक्खू ।
भयभेरवा तत्थ उइंति भीमा,
दिव्वा मणुस्सा अदुवा तिरिच्छा ॥ १६ ॥

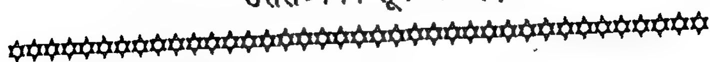
- **इह** - इस लोक में, **माणवेहिं** - मनुष्यों के, **अणेगछंदा** - अनेक प्रकार के अभिप्राय हो सकते हैं, **भावओ** - औदयिक आदि भावों के कारण, **जे** - वैसे अभिप्राय, **भिक्खू** - साधु के मन में भी, **संपगरेइ** - उत्पन्न हो सकते हैं, किन्तु साधु अपने संयम में दृढ़ रहे, **तत्थ** - साधु अवस्था में, **भयभेरवा** - अत्यन्त भयोत्पादक, **भीमा** - भयंकर, **दिव्वा** - देव सम्बन्धी, **मणुस्सा** - मनुष्य सम्बन्धी, **अदुवा** - और, **तिरिच्छा** - तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग, **उइंति** - प्राप्त होते हैं, उन्हें समभावपूर्वक सहन करे ॥ १६ ॥

परीसहा दुव्विसहा अणेगे,
सीयंति जत्थ बहु कायरा णरा ।
से तत्थ पत्ते ण वहिज्ज भिक्खू,
संगाम-सीसे इव णागराया ॥ १७ ॥

- साधु अवस्था में, **अणेगे** - अनेक प्रकार के, **दुव्विसहा** - दुःसह्य, **परीसहा** - परीषह उपस्थित होते हैं, **जत्थ** - जिससे, बहु-बहुत-से, **कायरा** - कायर, **णरा** - मनुष्य, **सीयंति** - संयम में शिथिल हो जाते हैं किन्तु, **संगाम सीसे** - संग्राम के अग्रभाग में रहे हुए, **णागराया इव** - शूरवीर हाथी के समान, **भिक्खू** - संयम में दृढ़ साधु, **तत्थ**- उन परीषह (उपसर्गों) के, **पत्ते** - प्राप्त होने पर, **ण वहिज्ज** - घबरावे नहीं अर्थात् संयममार्ग से चलित न होवे । इसी प्रकार, **से** - वे समुद्रपाल मुनि भी परीषह-उपसर्गों से चलित नहीं होते थे ॥ १७ ॥

सीओसिणा दंसमसगा य फासा,
आयंका विविहा फुसंति देहं ।
अकुक्कुओ तत्थऽहियासएज्जा,
रयाइं खेवेज्ज पुरेकडाइं ॥ १८ ॥

- साधु अवस्था में, **सीओसिणा** - शीत और उष्ण, **य** - और, **दंसमसगा** - डाँस और मच्छर, **फासा** - तृणस्पर्शादि परीषह और, **विविहा** - अनेक प्रकार के, **आयंका** - आतंक (सद्योघाती आतंकः) ऐसा रोग जिससे प्राणी की तुरन्त मृत्यु हो जाय, जैसे कि हैजा, प्लेग आदि, **देहं** - शरीर को, **फुसंति** - स्पर्श करते हैं, **तत्थ** - उस समय, **अकुक्कुओ** - आक्रन्दन नहीं करता हुआ, **अहियासएज्जा** - उन्हें समभावपूर्वक सहन करे और, **पुरेकडाइं** - पूर्वकृत, **रयाइं** - कर्म रूपी रज को, **खेवेज्ज** - क्षय करे । समुद्रपाल मुनि भी इसी प्रकार आचरण करते थे ॥ १८ ॥



पहाय रागं च तहेव दोसं,
मोहं च भिक्खू सययं वियक्खणो ।
मेरुव्व वाएण अकंपमाणो,
परीसहे आयगुत्ते सहेज्जा ॥ १९ ॥

- **वियक्खणो** - विचक्षण, **भिक्खू** - भिक्षु-साधु, **रागं** - राग, **च** - और, **दोसं** - द्वेष को, **च** - तथा, **तहेव** - इसी प्रकार **मोहं** - मोह को, **सययं** - सतत-निरन्तर, **पहाय** - छोड़ कर, **वाएण** - वायु से, **अकंपमाणो** - कम्पित न होने वाले, **मेरुव्व** - मेरु पर्वत के समान अड़ोल हो कर, **आयगुत्ते** - आत्मा को वश कर के, **परीसहे** - परीसहों को, **सहेज्जा** - समभाव पूर्वक सहन करे । समुद्रपाल मुनि ऐसा ही आचरण करते थे ॥ १९ ॥

अणुण्णए णावणए महेसी,
ण यावि पूयं गरहं च संजए।
से उज्जुभावं पडिवज्ज संजए,
णिव्वाणमग्गं विरए उवेइ ॥

- **महेसी** - महर्षि, **पूयं** - पूजा को प्राप्त कर के, **अणुण्णए**- उन्नत न हो, **या वि** - और, **गरहं** - निन्दा के प्रति, **णावणए संजए** - अवनत भाव को प्राप्त न हो अर्थात् जो साधु अपनी पूजा से गर्वित नहीं होता और निन्दा से जिसके मन में द्वेष या दीनभाव उत्पन्न नहीं होता, किन्तु समभाव रखता है, **से** - वह, **संजए** - संयत अर्थात् पांच इन्द्रियों को वश में रखने वाले संयमी साधु, **विरए** - कामभोगों से सर्वथा विरत हो कर तथा, **उज्जुभावं**-

सरल भाव को, **पडिवज्ज** - प्राप्त हो कर, **णिव्वाणमग्गं** - णिर्वाण मार्ग (मोक्षमार्ग) को, **उवेइ** - प्राप्त होता है। समुद्रपाल मुनि भी इसी प्रकार शुद्ध आचरण करते हुए मोक्षमार्ग की आराधना करते थे ॥ २० ॥

अरइरइसहे पहीणसंथवे,
विरए आयहिए पहाणवं ।
परमट्ठपएहिं चिट्ठइ,
छिण्णसोए अममे अकिंचणे ॥ २१॥

- **अरइरइसहे** - संयम में अरति और असंयम में रति रूप परीषह को सहन करने वाला, **पहीणसंथवे** - गृहस्थों के परिचय को छोड़ देने वाला, **विरए** - विरत-काम-भोगों का सर्वथा त्याग करने वाला, **आयहिए** - आत्म-हित साधन में तत्पर, **पहाणवं** - ध ा संयम में रत, **छिण्णसोए** - आस्रवादि स्रोतों का निरोध करने वाला एवं शोक-रहित, **अममे** - ममत्व रहित, **अकिंचणे** - अकिंचन अर्थात् द्रव्य-भाव परिग्रह-रहित वे, समुद्रपाल मुनि, **परमट्ठपएहिं** - परमार्थ पद में अर्थात् मोक्षमार्ग में, **चिट्ठइ** - स्थित थे ॥ २१ ॥

विवित्त लयणाइं भएज्ज ताई,
णिरोवलेवाइं असंथडाइं ।
इसीहिं चिण्णाइं महायसेहिं,
काएण फासेज्ज परीसहाइं ॥ २२ ॥

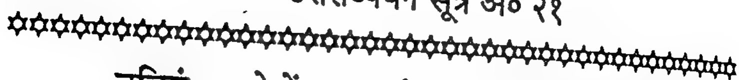


- **ताई** - त्रायी-छह काय जीवों के रक्षक साधु, **णिरोवलेवाइं** - उपलेप रहित अर्थात् आसक्ति के कारणों से रहित, अथवा साधु के लिए नहीं लीपे हुए, **असंथडाइं** - असंसृत-बीजादि से रहित और, **महायसेहिं** - महायशस्वी, **इसीहिं** - ऋषियों द्वारा, **चिण्णाइं** - सेवित, **विवित्त लयणाइं** - स्त्री-पशु-नपुंसक से रहित स्थानों का, **भएज्ज** - सेवन करे और ऐसे उपाश्रय में रहते हुए यदि, **परीसहाइं** - परीषह उपस्थित हों तो साधु उन्हें समभाव पूर्वक, **काएण** - काया से, **फासेज्ज** - सहन करे । समुद्रपाल मुनि ऐसा ही करते थे ॥ २२ ॥

सण्णाण-णाणोवगए महेसी,
अणुत्तरं चरिउं धम्मसंचयं।
अणुत्तरे णाणधरे जसंसी,
ओभासइ सूरिए वंऽतलिक्खे ॥ २३ ॥

- **सण्णाणणाणोवगए** - अनेक प्रकार के श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करके, **अणुत्तरं** - प्रधान, **धम्मसंचयं** - क्षमा आदि यतिधर्मों के समुदाय का, **चरिउं** - सेवन करके, **अणुत्तरे णाणधरे** - सर्वश्रेष्ठ केवलज्ञान को धारण करने वाला, **जसंसी** - यशस्वी मुनि, **अंतलिक्खे** - आकाश में, **सूरिए व** - सूर्य के समान, **ओभासइ** - प्रकाशित होता है ॥ २३ ॥

दुविहं खवेऊण य पुण्णपावं
णिरंजणे सव्वओ
तरित्ता समुद्दं च
समुद्दपाले अपुणागमं गए



- दुविहं - दोनों प्रकार के कर्मों का अर्थात् घाती और अघाती कर्मों का, **य** - तथा, **पुण्णपावं** - पुण्य और पाप का, **खवेऊण** - सर्वथा क्षय करके, **णिरंजणे (णिरंगणे)** - निरञ्जन (कर्ममल से रहित अथवा संयम में निश्चल अर्थात् शैलेशी अवस्था को प्राप्त हुआ) **सव्वओ** - बाह्य और आभ्यन्तर सभी प्रकार के बन्धनों से, **विप्पमुक्के** - मुक्त होकर, **च** - तथा, **महाभवोघं** - महाभव रूपी, **समुद्दं** - समुद्र को, **तरित्ता** - तिर कर **समुद्दपाले** - समुद्रपाल मुनि, **अपुणागमं (गइं)** - पुनरागमन रहित (जहाँ जाकर लौटना नहीं पड़े ऐसे स्थान) मोक्ष को, **गए** - प्राप्त हुए । **त्ति बेमि** - ऐसा मैं कहता हूँ ॥ २४ ॥

॥ इक्कीसवाँ अध्ययन समाप्त ॥



रथनेमीय बाईसवाँ अध्ययन

सोरियपुरम्मि णयरे, आसी राया महिड्डिए ।
वसुदेवत्ति णामेणं, रायलक्खण-संजुए ॥ १ ॥

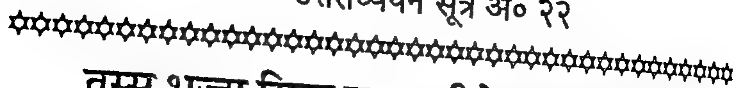
– **सोरियपुरम्मि** – शौर्यपुर नामक, **णयरे** – नगर में, **रायलक्खण संजुए** – चक्र स्वस्तिक अंकुश आदि लक्षणों से तथा सत्य शूरवीरता आदि राजा के गुणों से युक्त तथा, **महिड्डिए** – महाऋद्धि वाले, **वसुदेवत्ति णामेणं** – वसुदेव नाम के, **राया** – राजा, **आसी** – थे ॥ १ ॥

तस्स भज्जा दुवे आसी, रोहिणी देवई तहा ।
तासिं दोण्हं दुवे पुत्ता, इट्ठा रामकेसवा ॥ २ ॥

– **तस्स** – उस वसुदेव के, **रोहिणी** – रोहिणी, **तहा** – और, **देवई** – देवकी नाम की, **दुवे** – दो, **भज्जा** – भार्या-स्त्रियाँ, **आसी** – थी, **तासिं** – उन, **दोण्हं** – दोनों के, **इट्ठा** – इष्ट (सभी को प्रिय लगने वाले), **रामकेसवा** – राम और केशव (रोहिणी के राम बलदेव और देवकी के कृष्ण-वासुदेव), **दुवे** – दो, **पुत्ता** – पुत्र थे ॥ २ ॥

सोरियपुरम्मि णयरे, आसी राया महिड्डिए ।
समुद्दविजए णामं, रायलक्खण-संजुए ॥ १३ ॥

– **सोरियपुरम्मि णयरे** – शौर्यपुर नगर में, **महिड्डिए** – महाऋद्धि वाले, **रायलक्खण संजुए** – राजा के [illegible] और [illegible] से युक्त, **समुद्दविजए** – समुद्रविजय, **णामं** [illegible] य [illegible] राजा, **आसी** – थे ॥ ३ ॥



तस्स भज्जा सिवा णाम, तीसे पुत्तो महायसो ।
भयवं अरिट्ठणेमित्ति, लोगणाहे दमीसरे ॥ ४ ॥

– **तस्स** – समुद्रविजय के, **सिवा णाम** – शिवा नाम की, **भज्जा** – भार्या थी, **तीसे** – उसके, **पुत्तो** – पुत्र, **महायसे** - महायशस्वी, **दमीसरे** – परम जितेन्द्रिय, **लोगणाहे** – तीनों लोक के नाथ, **भयवं (भगवं)** – भगवान्, **अरिट्ठणेमित्ति** – अरिष्टनेमि थे ॥ ४ ॥

सोऽरिट्ठणेमि-णामो य, लक्खणस्सरसंजुओ ।
अट्ठसहस्स-लक्खणधरो, गोयमो कालग-च्छवी ॥

– **सो** – वे, **अरिट्ठणेमि णामो** – अरिष्टनेमि नामक कुमार, **लक्खणस्सरसंजुओ** – लक्षण और स्वरों से संयुक्त, **अट्ठसहस्स लक्खणधरो** – एक हजार आठ शुभ लक्षणों को धारण करने वाले, **गोयमो** – गोतम गोत्रीय, **य** – और, **कालग-च्छवी** - कृष्ण कांति वाले थे ॥ ५ ॥

विवेचन – हेमचन्द्राचार्य कृत त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र में ६३ महापुरुषों का जीवन चरित्र दिया गया है यथा – २४ तीर्थङ्कर, २ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव । इनको शलाका पुरुष या श्लाघ्य पुरुष भी कहते हैं । इनमें से अभी यादव कुल में तीन महापुरुष मौजुद थे । यथा – तीर्थङ्कर (अरिष्टनेमि), बलदेव (बलभद्र) और वासुदेव (श्रीकृष्ण) । इन महापुरुषों के कारण अभी यादव वंश उन्नति के शिखर पर था ।

वज्जरिसह-संघयणो, समचउरंसो झसोयरो ।
तस्स राईमई कण्णं, भज्जं जायइ केसवो ॥ ६ ॥



- वे अरिष्टनेमि कुमार, **वज्जरिसह संघयणो** - वज्रऋषभनाराच संहनन वाले, **समचउरंसो** - समचतुरस्र संस्थान वाले और, **झसोयरो** - झस उदर - झस अर्थात् मछली के उदर के समान सुन्दर उदर वाले थे । **केसवो** - केशव-वासुदेव श्री कृष्ण ने, **तस्स**- उस अरिष्टनेमि कुमार की, **भज्जं** - भार्या बनाने के लिए उग्रसेन राजा से, **कण्णं** - उनकी कन्या, **राईमई** - राजीमती की, **जायइ** - याचना की ॥ ६ ॥

अह सा रायवरकण्णा, सुसीला चारुपेहिणी ।
सव्वलक्खण-संपण्णा, विज्जुसोयामणिप्पभा ॥

- **अह** - अथ, **सा** - वह, **रायवर कण्णा** - उग्रसेन राजा की श्रेष्ठ कन्या राजीमती, **सुसीला** - सुशीला-उत्तम आचार वाली, **चारुपेहिणी** - सुन्दर दृष्टि वाली, **सव्वलक्खण संपण्णा** - स्त्री के सभी शुभ लक्षणों से संपन्न, **विज्जुसोयामणिप्पभा** - विद्युत् (विशेष चमकने वाली) और सौदामिनी (बिजली की लता) के समान प्रभा वाली थी ॥ ७ ॥

अहाह जणओ तीसे, वासुदेवं महिड्डियं ।
इहागच्छउ कुमारो, जा से कण्णं ददामिऽहं ॥८॥

- **अह** - इसके बाद, **तीसे** - उस राजीमती के, **जणओ** - जनक-पिता राजा उग्रसेन ने, **महिड्डियं** - महाऋद्धि वाले, **वासुदेवं**- कृष्ण-वासुदेव से, **आह** - कहा कि यदि, **कुमारो** - अरिष्टनेमि कुमार, **इह**- यहां, **आगच्छउ** - पधारें, **जा** - तो, **अहं** - मैं, **से**- उन्हें, **कण्णं** - अपनी कन्या, **ददामि (दलां)** - दूँ **अर्थात् यदि** आप अरिष्टनेमि कुमार को दुल्हा बनाकर और बारात यहाँ पधारें तो मैं अपनी कन्या राजीमती का उनके विवाह कर सकता हूँ ॥ ८ ॥



विवेचन - प्राचीन काल में राजा लोगों की यह परिपाटी रही हुई थी कि वे बारात बना कर और दुल्हे को सजा कर लड़की के घर नहीं जाते थे। किन्तु लड़की वाले अपनी अपनी लड़कियों को लेकर वर राजा के घर पहुँच जाते थे और सब लड़कियों का पाणिग्रहण (विवाह) एक ही दिन कर दिया जाता था । परन्तु अपने छोटे भाई अरिष्टनेमि का राजीमती के साथ सम्बन्ध करने के लिये वासुदेव श्री कृष्ण स्वयं श्री उग्रसेन जी के यहाँ पहुँचे थे और राजीमती की मांगणी की थी । तब उग्रसेनजी ने यह शर्त रखी कि - आप अरिष्टनेमि को दुल्हा बना कर और बारात सजा कर मेरे यहाँ पधारें तो मैं राजीमती को दे सकता हूँ। तब वासुदेव श्रीकृष्ण ने उनकी शर्त को स्वीकार किया है ।

उस समय श्री कृष्ण तीन खण्ड के स्वामी वासुदेव बन चुके थे । राजा उग्रसेन उनका मातहत (अधीनस्थ) राजा था । यदि वे चाहते तो उग्रसेनजी को आज्ञा दे सकते थे कि - तुम्हारी लड़की राजीमती को यहाँ लाकर मेरे छोटे भाई अरिष्टनेमि के साथ उसका विवाह कर दो । किन्तु श्री कृष्ण ने आज्ञा नहीं दी । बल्कि स्वयं चलकर राजा उग्रसेन के यहाँ पहुँचे और उनका शर्त स्वीकार की । यह उनकी महानता थी महापुरुषों के लिये शास्त्र में विशेषण आते हैं "**सीमंकरे सीमंधरे खेमंकरे, खेमंधरे**" अर्थात् वे प्रजा के हित के लिये मर्यादा बांधते हैं और उस मर्यादा का पालन स्वयं भी करते हैं । प्रजा में क्षेम - कुशलता बरताते हैं और आप स्वयं भी किसी प्रकार का उपद्रव नहीं करते हुए कुशलता बरताते हैं ।

सव्वोसहीहिं ण्हविओ, कयकोउयमंगलो ।
दिव्वजुयल-परिहिओ, आभरणेहिं विभूसिओ॥



– उग्रसेन राजा के वचन को स्वीकार करने पर विवाह निश्चित हो गया। अरिष्टनेमि कुमार को, **सव्वोसहीहिं** – जया, विजया आदि सभी औषधियों से मिश्रित जल द्वारा, **ण्हविओ** – स्नान कराया गया, **कयकोउयमंगलो** – कौतुक-मंगल किये गये, **दिव्वजुयल परिहिओ** – दिव्य वस्त्र-युगल पहनाया गया और, **आभरणेहिं** – आभूषणों से, **विभूसिओ** – विभूषित किया गया ॥ ९ ॥

मत्तं च गंधहत्थिं च, वासुदेवस्स जेट्ठगं ।
आरूढो सोहए अहियं, सिरे चूडामणी जहा ॥

– **जहा** – जिस प्रकार, **सिरे** – शिर पर, **चूडामणी** – चूड़ामणि शोभित होती है, उसी प्रकार, **वासुदेवस्स** – कृष्ण वासुदेव के, **मत्तं** – मदोन्मत्त, **जेट्ठगं** – ज्येष्ठ सब से प्रधान एवं बड़े, **गंधहत्थिं** – गन्ध-हस्ती पर, **आरूढो** – चढ़े हुए अरिष्टनेमि कुमार, **अहियं** – अत्यधिक, **सोहए** – शोभित होने लगे ॥ १० ॥

अह ऊसिएण छत्तेण, चामराहि य सोहिओ ।
दसारचक्केण य सो, सव्वओ परिवारिए ॥ ११ ॥

– **अह** – इसके पश्चात्, **ऊसिएण** – शिर पर किये जाने वाले, **छत्तेण** – छत्र, **य** – और दोनों ओर ढुलाये जाने वाले **चामराहि** – चँवर, **य** – और, **दसारचक्केण** – दशार्हचक्र से, (समुद्रविजय आदि दस यादवों के परिवार से) **सव्वओ** – चारों ओर से, **परिवारिए** – घिरे हुए, **सो** – वे नेमिकुमार, **सोहिओ** – अत्यधिक शोभित होने लगे ॥ ११ ॥

चउरंगिणीए सेणाए, रइयाए जहक्कमं ।
तुरियाण-सण्णिणाएण, दिव्वेण गगणं फुसे

– **जहक्कमं** – यथाक्रम से, **रइयाए** – सज्जित की हुई, **चउरंगिणीए** – हाथी, घोड़े रथ और पैदल रूप चतुरंगिणी, **सेणाए** – सेना से तथा, **तुरियाण** – मृदंग ढोल आदि वादित्रों के, **सण्णिणाएण** – शब्द से, **गगणं** – आकाश को, **फुसे** – गुञ्जित करने लगे ॥ १२ ॥

एयारिसाए इड्ढीए, जुईए उत्तमाइ य ।
णियगाओ भवणाओ, णिज्जाओ वण्हिपुंगवो ॥

– **एयारिसाए** – इस प्रकार की, **उत्तमाइ** – उत्तम, **इड्ढीए** - ऋद्धि, **य** – और, **जुईए** – द्युति (कान्ति) से सम्पन्न, **वण्हिपुंगवो**- वृष्णिपुङ्गव–यादवों में प्रधान वे अरिष्टनेमि कुमार, **णियगाओ** - अपने, **भवणाओ** – भवन से, **णिज्जाओ** – निकले ॥ १३ ॥

अह सो तत्थ णिज्जंतो, दिस्स पाणे भयद्दुए ।
वाडेहिं पंजरेहिं च, सण्णिरुद्धे सुदुक्खिए ॥ १४ ॥

– **अह** – इसके बाद, **तत्थ** – भवन से, **णिज्जंतो** - निकलते हुए और क्रमशः आगे बढ़ते हुए विवाह–मंडप के निकट पहुँचने पर, **सो** – वह अरिष्टनेमि कुमार, **भयद्दुए** – मृत्यु के भय से भयभीत बने हुए, **वाडेहिं** – बाड़ों में, **सण्णिरुद्धे** – रोके हुए अतएव, **सुदुक्खिए** – दुःखित, **पाणे** – पशुओं को, **च** - और, **पंजरेहिं** – पिंजरों में पक्षियों को, **दिस्स** – देख कर विचार करने लगे ॥ १४ ॥

जीवियंतं तु संपत्ते, मंसट्ठा भक्खियव्वए ।
पासित्ता से महापण्णे, सारहिं इणमब्बवी ॥ १५ ॥

– **जीवियंतं** – जीवन के अन्त को, **संपत्ते** – प्राप्त हुए

मंसट्ठा – मांस के लिए **भक्खियव्वाए** – खाये जाने वाले अर्थात् मांसभोजी बारातियों के लिए मारे जाने वाले प्राणियों को, **पासित्ता**– देख कर, **महापण्णे** – अतिशय प्रज्ञावान्, **से** – वह अरिष्टनेमि कुमार, **सारहिं** – सारथि (महावत) से, **इणं** – इस प्रकार, **अब्बवी** – पूछने लगे ॥ १५ ॥

विवेचन – यद्यपि 'सारथि' शब्द का अर्थ रथवान् – रथ को चलाने वाला होता है तथापि यहाँ सारथि शब्द का अर्थ महावत (हाथी को चलाने वाला) करना ही प्रकरण-संगत है क्योंकि भगवान् अरिष्टनेमि कुमार हाथी पर आरूढ़ हुए थे । इस बात का उल्लेख दसवीं गाथा में किया गया है । अथवा ऐसा भी संभव है कि कुछ दूर जाने पर भगवान् हाथी से उतर कर रथ में बैठ गये हों । उस दृष्टि से सारथि शब्द का अर्थ 'रथवान्' ठीक है ।

टीकाकार ने तो सारथि शब्द के दो अर्थ किये हैं – १. रथ को चलाने वाला रथवान् । २. हाथी को चलाने वाला 'हस्तिपक' अर्थात् महावत को सारथि कहा हैं ।

कस्स अट्ठा इमे पाणा, एए सव्वे सुहेसिणो ।
वाडेहिं पंजरेहिं च, सण्णिरुद्धा य अच्छहिं ॥ १६ ॥

– **एए** – ये, **सव्वे** – सब, **सुहेसिणो** – सुख को चाहने वाले, **पाणा** – प्राणी, **कस्स अट्ठा** – किस लिए, **इमे** – ये, **वाडेहिं** – बाड़ों में, **य** – और, **पंजरेहिं** – पिंजरों में, **सण्णिरुद्धा अच्छहिं** – रोके हुए हैं ॥ १६ ॥

अह सारही तओ भणइ, एए भद्दा उ
तुज्झं विवाहकज्जम्मि, भोयावेउं बहुं

अह - इसके बाद, **तओ** - भगवान् के प्रश्न को सुन कर **सारही** - सारथि, **भणइ** - कहने लगा कि हे भगवन् !, **एए** - इन सभी, **भद्दा** - भद्र एवं निर्दोष, **पाणिणो** - प्राणियों को, **तुज्झं** - आपके, **विवाह कज्जमि** - विवाह में आये हुए, **बहुं जणं** - बहुत-से मांसभोजी मनुष्यों को, **भोयावेउं** - भोजन कराने के लिए यहाँ बन्द कर रखा है ॥ १७ ॥

सोऊण तस्स वयणं, बहुपाणिविणासणं ।
चिंतेइ से महापण्णे, साणुक्कोसे जिएहि उ ॥१८॥

बहुपाणिविणासणं - बहुत से प्राणियों का विनाश रूप अर्थ को बतलाने वाले, **तस्स** - उस सारथि के, **वयणं** - वचन को, **सोऊण** - सुन कर, **जिएहि उ** - जीवों के विषय में, **साणुक्कोसे** - करुणाभाव सहित (प्राणियों पर दया युक्त) होकर, **से** - वे, **महापण्णे** - महा प्रज्ञावान् भगवान् नेमिनाथ, **चिंतेइ** - विचार करने लगे ॥ १८ ॥

जइ मज्झ कारणा एए, हम्मंति सुबहू जिया ।
ण मे एयं तु णिस्सेसं, परलोगे भविस्सइ ॥१९॥

- **जइ** - यदि, **मज्झ कारणा** - मेरे कारण, **एए** - ये, **सुबहू** - बहुत-से, **जिया** - जीव, **हम्मंति** - मारे जाएंगे, **तु** - तो, **एयं** - यह कार्य, **मे** - मेरे लिए, **परलोगे** - परलोक में, **णिस्सेसं** - कल्याणकारी, **ण भविस्सइ** - नहीं होगा ॥ १९ ॥

विवेचन - भगवान् अरिष्टनेमि तीर्थङ्कर हैं इसलिए इसी भव में मोक्ष जाने वाले हैं । फिर जो यह कथन किया गया कि यह हिंसा परलोक में मेरे लिए कल्याणकारी नहीं होगी । ऐसा कथन पूर्व भवों के अभ्यास के कारण कर दिया गया हैं । अथवा



हिंसा कल्याणकारी नहीं होती हैं । यह संसारी प्राणियों को बोध देने के लिए ऐसा कथन किया गया है ।

सो कुंडलाण जुयलं, सुत्तगं च महायसो ।
आभरणाणि य सव्वाणि, सारहिस्स पणामए ✿ ॥

- **महायसो** - महायशस्वी, **सो** - उस भगवान् अरिष्टनेमि ने, **कुंडलाण जुयलं** - कुण्डलों की जोड़ी, **च** - और, **सुत्तगं** - कन्दोरा **य** - तथा, **सव्वाणि** - सभी, **आभरणाणि** - आभूषण, **सारहिस्स** - सारथि को, **पणामए** - प्रदान कर दिये ॥ २० ॥

विवेचन - भगवान् अरिष्टनेमि ने उन जीवों को बंधन मुक्त करवा कर अभय दान दिया । यह अभय दान और अनुकम्पा (जीव दया-रक्षा) का उत्कृष्ट उदाहरण है । प्रश्न व्याकरण सूत्र के प्रथम संवर द्वार में कहा है । "**सव्व जग जीव रक्खण दयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं**" अर्थात् जगत् के सब जीवों की रक्षा रूप दया के लिए तीर्थङ्कर भगवान् ने प्रवचन फरमाया है। दया और दान तो जैन धर्म का मूल सिद्धान्त है ।

मणपरिणामे य कए,
देवा य जहोइयं समोइण्णा ।
सव्विड्ढीइ सपरिसा,
णिक्खमणं तस्स काउं जे ॥ २१ ॥

✿ टीका - एवं च विदितभगवदाकूतेन सारथिना मोचितेषु सत्त्वेषु परितोषितोऽसो यत्कृतवास्तदाह - अर्थात् भगवान् नेमिनाथ के अभिप्राय को समझ कर सारथि ने जब उन प्राणियों को बन्धन से मुक्त कर दिया तब प्रसन्न होकर कुमार अरिष्टनेमि ने अपने आभूषण प्रदान कर दिये।



– मरते हुए प्राणियों पर अनुकम्पा कर के उन्हें बन्धन से मुक्त करवा कर तथा सारथि को पुरस्कृत कर भगवान् नेमिनाथ द्वारिका में लौट आये । तत्पश्चात् उन्होंने दीक्षा अंगीकार करने के लिए, **मणपरिणामे** – मन में विचार, **कए** – किया तब, **तस्स** - उनका, **णिक्खमणं** – निष्क्रमण (दीक्षा-महोत्सव) **काउं** - करने के लिए, **जहोइयं** – यथोचित समय पर, **सव्विड्ढीइ** – सभी प्रकार की ऋद्धि से युक्त, **य** – और, **सपरिसा** – परिषद सहित, **देवा** - लोकान्तिक आदि देव, **समोइण्णा** – मनुष्य लोक में आये ॥ २१॥

विवेचन – दीक्षा लेने से पहले सभी तीर्थङ्कर वर्षीदान देते हैं । प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख सोना मोहर दान में देते हैं । इस प्रकार बारह महिने में तीन अरब अठयासी करोड अस्सी लाख सोना मोहर (स्वर्ण मुद्राएं) दान में देते है । दीक्षा लेने की भावना बारह महिने पहले हो जाती है । वर्षीदान पूर्ण हो जाने पर लोकांतिक देव अपना जीताचार पालन करने के लिये सेवा में उपस्थित होकर निवेदन करते हैं कि – "हे भगवन् ! अब आप धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति कीजिए ।" इस नियम के अनुसार अरिष्टनेमिकुमार सारथि को दान देकर द्वारिका पधारे । वहाँ आकर एक वर्ष तक वर्षीदान दिया । फिर लोकांतिक देव आये और कृष्ण वासुदेव ने बड़े हर्षोल्लास और ठाठ बाठ के साथ अरिष्टनेमि कुमार का महाभिनिष्क्रमण दीक्षा महोत्सव किया और अरिष्टनेमिकुमार ने दीक्षा अंगीकार की ।

देवमणुस्स-परिवुडो,
सिवियारयणं तओ समारूढो ।
णिक्खमिय बारगाओ,
रेवययम्मि ठिओ भयवं ॥ २२ ॥



- **तओ** - इसके बाद, **देवमणुस्सपरिवुडो** - देव और मनुष्यों से घिरे हुए, **भयवं** - भगवान्, **सिवियारयणं** - शिविकारत्न-देवनिर्मित उत्तम पालखी पर, **समारूढो** - आरूढ़ हो कर, **बारगाओ** - द्वारिकापुरी से, **णिक्खमिय** - निकल कर, **रेवययम्मि** - रैवतक पर्वत पर, **ठिओ** - पधारे ॥ २२ ॥

उज्जाणं संपत्तो, ओइण्णो उत्तमाओ सीयाओ ।
साहस्सीए परिवुडो, अह णिक्खमइ उ चित्ताहिं ॥

- **अह** - इसके पश्चात् वे, **उज्जाणे** - सहस्राम्र वन नामक उद्यान में, **संपत्तो** - पधारे और, **उत्तमाओ** - उस उत्तम, **सीयाओ**- शिविका से, **ओइण्णो** - नीचे उतरे, **उ** - तत्पश्चात्, **चित्ताहिं** - चित्रा नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग मिलने पर, **साहस्सीए** - एक हजार पुरुषों से, **परिवुडो** - परिवृत्त हो कर, **णिक्खमइ** - दीक्षा अंगीकार की । भगवान् के साथ ही एक हजार पुरुषों ने भी दीक्षा ली ॥ २३ ॥

अह सो सुगंधगंधिए, तुरियं मउकुंचिए ।
सयमेव लुंचइ केसे, पंच-मुट्ठीहिं समाहिओ ॥

- **अह** - इसके पश्चात्, **समाहिओ** - समाधिवान्, **सो** - उन भगवान् अरिष्टनेमि ने, **सुगंधगंधिए** - सुगंध से सुवासित, **मउकुंचिए** - कोमल और आकुञ्चित-टेडे मुडे हुए, **केसे** - केशों का, **सयमेव**- स्वयमेव, **तुरियं** - शीघ्र ही, **पंचमुट्ठीहिं** - पंचमुष्टि, **लुंचइ** - लोच कर डाला ॥ २४ ॥

विवेचन - पंचमुष्टि लोच का अर्थ में
केशों का लोच कर देना यह अर्थ नहीं है तरफ
केशों का लोच करना अर्थात् दाहिनी

तरफ से खींचकर लोच करना, इसी प्रकार बायीं तरफ, आगे की तरफ, पीछे की तरफ और ऊपर की तरफ खींच कर, केशों का लोच करना । इस प्रकार पञ्चमुष्टि का अर्थ समझना चाहिये । गर्दन से ऊपर दाढी, मूंछ और मस्तक का लोच किया जाता है ।

वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसं जिइंदियं ।
इच्छिय-मणोरहं तुरियं, पावसु तं दमीसरा ॥ २५ ॥

वासुदेवो - वासुदेव, **य** - और बलराम, समुद्रविजय आदि, **लुत्तकेसं** - केशों का लोच किये हुए, **जिइंदियं** - जितेन्द्रिय, **णं** - अरिष्टनेमि को, **भणइ** - कहने लगे कि, **दमीसरा** - हे दमीश्वर! **तुरियं** - शीघ्र ही; **इच्छियमणोरहं** - मुक्ति प्राप्ति रूप इच्छित मनोरथ को, **पावसु** - प्राप्त करो ॥ २५ ॥

णाणेणं दंसणेणं च, चरित्तेणं तवेण य ।
खंतीए मुत्तीए चेव, वड्ढमाणो भवाहि य ॥ २६ ॥

- वासुदेव आदि फिर कहने लगे कि, **णाणेणं** - ज्ञान से, **च** - और, **दंसणेणं** - दर्शन से, **चरित्तेणं** - चारित्र से, **य** - और, **तवेण** - तप से, **य** - तथा, **खंतीए** - क्षमा से और, **मुत्तीए** - निर्लोभता से, **वड्ढमाणो** - वृद्धिवंत, **भवाहि** - हो अर्थात् आप ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, क्षमा, निर्लोभता आदि गुणों की वृद्धि करें ॥ २६ ॥

एवं ते रामकेसवा, दसारा य बहू जणा ।
अरिट्ठणेमिं वंदित्ता, अइगया बारगापुरिं ॥ २७ ॥

- **एवं** - इस प्रकार, **ते** - वे बलराम और श्रीकृष्ण, **दसारा** - दशार्ह प्रमुख यादव, **य** - और, **बहू जणा** - बहुत से मनुष्य,

अरिट्ठणेमिं – अरिष्टनेमि को, **वंदित्ता** – वन्दना करके, **बारगापुरिं**– द्वारिका नगरी में, **अभिगया** – लौट आये और भगवान् भी अन्यत्र विहार कर गये ॥ २७ ॥

सोऊण रायकण्णा, पव्वज्जं सा जिणस्स उ ।
णीहासा य णिराणंदा, सोगेण उ समुत्थिया ॥२८ ॥

– **सा** – वह **रायकण्णा** – राजकन्या राजीमती, **जिणस्स** – जिनेन्द्र भगवान् अरिष्टनेमि की, **पव्वज्जं** – दीक्षा होना, **सोऊण** – सुन कर, **णीहासा** – हास्यरहित, **उ** – और, **णिराणंदा** – आनन्द से रहित होकर, **सोगेण** – शोक से, **समुत्थिया** – व्याप्त हो गई ॥ २८ ॥

राईमई विचिंतेइ, धिरत्थु मम जीवियं ।
जाऽहं तेणं परिच्चत्ता, सेयं पव्वइउं मम ॥ २९ ॥

– **राईमई** – राजीमती, **विचिंतेइ** – विचार करने लगी कि, **मम**- मेरे, **जीवियं** – जीवन को, **धिरत्थु** – धिक्कार है, **जा** – जो, **अहं** – मैं, **तेणं** – उन भगवान् नेमिनाथ द्वारा, **परिच्चत्ता** – त्याग दी गई हूँ । अब तो, **मम** – मेरे लिए, **पव्वइउं** – दीक्षा लेना ही, **सेयं** – श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥

अह सा भमरसण्णिभे, कुच्चफणगप्पसाहिए ।
सयमेव लुंचइ केसे, धिइमंता ववस्सिया ॥ ३० ॥

– **अह** – इसके बाद **धिइमंता** – धैर्य वाली, **ववस्सिया** – संयम के लिए उद्यत हुई, **सा** – उस राजीमती ने, **भमरसण्णिभे** – भ्रमर सरीखे काले, **कुच्चफणगप्पसाहिए** – कूर्च (बाँस से निर्मित कूंची) और कंघी से संवारे हुए, **केसे** – केशों का, **सयमेव** – स्वयमेव, **लुंचइ** – लोच कर डाला ॥ ३० ॥



वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसं जिइंदियं ।
संसारसायरं घोरं, तर कण्णे लहुं लहुं ॥ ३१ ॥

- **वासुदेवो** - श्रीकृष्ण वासुदेव, **य** - और बलदेव तथा समुद्रविजय आदि, **लुत्तकेसं** - केशों का लोच की हुई, **जिइंदियं** - जितेन्द्रिय, **णं** - उस राजीमती से, **भणइ** - कहने लगे कि, **कण्णे**- हे कन्ये ! तू, **लहुं लहुं** - बहुत शीघ्र, **घोरं** - इस घोर, **संसारसायरं**- संसारसागर को, **तर** - पार कर (मोक्ष प्राप्त कर) ॥ ३१ ॥

सा पव्वइया संती, पव्वावेसी तहिं बहुं ।
सयणं परियणं चेव, सीलवंता बहुस्सुया ॥ ३२ ॥

- **सीलवंता** - शीलवती, **बहुस्सुया** - बहुश्रुत, **सा** - उस राजीमती ने, **पव्वइया संती** - दीक्षित होकर, **तहिं** - द्वारिका पुरी , **बहुं** - बहुत से, **सयणं** - स्वजन, **चेव** - और, **परियणं** - [illegible] की स्त्रियों को, **पव्वावेसी** - दीक्षा दी ॥ ३२ ॥

विवेचन - राजीमती के लिए **'बहुस्सुया'** विशेषण देने का अभिप्राय यह है कि गृहवास में भी उसने बहुत श्रुत का अभ्यास किया था । इस पाठ से यह स्पष्ट होता है कि - गृहस्थ भी श्रुत-शास्त्रों का पठन-पाठन एवं अभ्यास कर सकते हैं ॥ ३२ ॥

गिरिं रेवतयं जंती, वासेणुल्ला उ अंतरा ।
वासंते अंधयारम्मि, अंतो लयणस्स सा ठिया ॥ ३३ ॥

- जिन्हें राजीमती ने दीक्षा दी थी उन सभी साध्वियों को साथ ले कर रैवतकगिरि पर विराजमान भगवान् नेमिनाथ को वन्दना करने चली, **रेवतयं गिरिं** - रैवतक पर्वत पर, **जंती** - जाती हुई वह, **अंतरा** - बीच रास्ते में, **उ** - ही, **वासेण** - वर्षा से, **उल्ला** - भीग गई और उस घनघोर वर्षा के कारण साथ वाली दूसरी साध्वियाँ

इधर-उधर बिखर गई तब, **सा** - वह राजीमती, **वासंते** - वर्षा के होते हुए, **अंधयारम्मि** - अन्धकार युक्त, **लयणस्स अंतो**- एक पर्वत की गुफा में, **ठिया** - जाकर ठहर गई ॥ ३३ ॥

चीवराणि विसारंती, जहाजायत्ति पासिया ।
रहणेमी भग्गचित्तो, पच्छा दिट्ठो य तीइ वि ॥ ३४ ॥

- **चीवराणि** - भीगे हुए कपड़ों को, **विसारंती** - सूखाती हुई वह राजीमती, **जहाजाया** - यथाजाता (जन्म के समय बालक जैसा निर्वस्त्र होता है वैसी निर्वस्त्र) हो गई । **त्ति** - उसे निर्वस्त्र, **पासिया**- देख कर उस गुफा में पहले से ध्यानस्थ बैठे हुए, **रहणेमी** - रथनेमि मुनि का, **भग्गचित्तो** - चित्त संयम से विचलित हो गया । गुफा में प्रवेश करते समय अन्धकार के कारण राजीमती को रथनेमि दिखाई नहीं दिया, क्योंकि बाहर से भीतर आने वाले को भीतर अन्धकार में बैठा हुआ व्यक्ति दिखाई नहीं देता है, किन्तु, **पच्छा** - पीछे, **तीइ वि** - राजीमती ने भी, **दिट्ठो** - उसे देखा ॥ ३४ ॥

भीया य सा तहिं दट्ठुं, एगंते संजयं तयं ।
बाहाहिं काउं संगोप्फं, वेवमाणी णिसीयइ ॥ ३५ ॥

- **तहिं** - वहाँ, **एगंते** - एकान्त स्थान में, **तयं** - उस, **संजयं**- संयत रथनेमि को, **दट्ठुं** - देख कर, **सा** - वह राजीमती, **भीया** - अत्यन्त भयभीत हुई कि कहीं ऐसा न हो कि बलात्कार करके यह मेरा शील भंग कर दे । इसलिए, **बाहाहिं** - दोनों भुजाओं से, **संगोप्फं काउं** - अपने अंगों को ढक कर अर्थात् दोनों हाथों से स्तनादि को वेष्टित करके मर्कटबन्ध से अपने अंगों को **छिपाती** हुई, **वेवमाणी** - काँपती हुई, **णिसीयइ** - बैठ गई ॥ ५ ॥



अह सोऽवि रायपुत्तो, समुद्दविजयंगओ ।
भीयं पवेवियं दट्ठुं, इमं वक्कमुदाहरे ॥ ३६ ॥

– **अह** – इसके बाद , **समुद्दविजयंगओ** – समुद्रविजय का अंगजात पुत्र, **सोऽवि** – वह, **रायपुत्तो** – राजपुत्र रथनेमि, **भीयं** - राजीमती को डरी हुई और, **पवेवियं** – काँपती हुई, **दट्ठुं** – देख कर, **इमं** – इस प्रकार, **वक्कं** – वचन, **उदाहरे** – कहने लगा ॥ ३६ ॥

रहणेमी अहं भद्दे ! सुरूवे चारुभासिणि !
ममं भयाहि सुयणु, ण ते पीला भविस्सइ ॥ ३७॥

भद्दे – हे भद्रे ! हे कल्याणकारिणि ! **सुरूवे** – हे सुन्दर रूप वाली ! **चारुभासिणी** – हे मनोहर बोलने वाली ! **सुयणु** - हे सुतनु ! हे श्रेष्ठ शरीर वाली ! **अहं** – मैं, **रहणेमी** – रथनेमि हूँ । तू, **मम** – मुझे, **भयाहि** – सेवन कर । **ते** – तुझे, **पीला** - किसी प्रकार की पीड़ा, **ण भविस्सइ** – नहीं होगी, अर्थात् हे सुन्दरि ! तू निर्भय होकर मेरे समागम में आ । तुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा ॥ ३७ ॥

एहि ता भुंजिमो भोए, माणुस्सं खु सुदुल्लहं ।
भुत्तभोगी तओ पच्छा, जिणमग्गं चरिस्सामो ॥३८॥

– **खु** – निश्चय ही, **माणुस्सं** – मनुष्य-जन्म का मिलना, **सुदुल्लहं** – अत्यन्त दुर्लभ है, **ता** – इसलिए हे भद्रे ! **एहि** - इधर आओ पहले हम दोनों, **भोए** – भोगों का, **भुंजिमो** – उपभोग करें, **पुणो** – फिर, **भुत्तभोगी** – भुक्तभोगी होकर, **पच्छा** - बाद में अपन दोनों, **जिणमग्गं** – जिनेन्द्र भगवान् के मार्ग का, **चरिस्सामो** - अनुसरण करेंगे ॥ ३८ ॥

दट्ठूण रहणेमिं तं, भग्गुज्जोय-पराइयं ।
राईमई असंभंता, अप्पाणं संवरे तहिं ॥ ३९ ॥

☆☆

- **भग्गुज्जोय पराइयं** - संयम में हतोत्साह बने हुए और स्त्रीपरीषह से पराजित, **तं** - उस, **रहणेमिं** - रथनेमि को, **दट्ठूण** - देख कर, **असंभंता** - भयरहित बनी हुई, **राईमई** - राजीमती ने, **तहिं** - उसी समय गुफा में, **अप्पाणं** - अपने शरीर को, **संवरे** - वस्त्र से ढक लिया ॥ ३९ ॥

अह सा रायवरकण्णा, सुट्ठिया णियमव्वए ।
जाइं कुलं च सीलं च, रक्खमाणी तयं वए ॥ ४० ॥

- **अह** - इसके बाद, **णियमव्वए** - नियम और व्रतों में **सुट्ठिया** - भलीभांति स्थित, **सा** - वह, **रायवरकण्णा** - राज कन्या राजीमती, **जाइं** - जाति, **च** - और, **कुलं** - कुल, **च** - तथा, **सीलं** - शील की, **रक्खमाणी** - रक्षा करती हुई, **तयं** - उस रथनेमि को, **वए** -इस प्रकार कहने लगी ॥ ४० ॥

जइऽसि रूवेण वेसमणो, ललिएण णलकूबरो ।
तहा वि ते ण इच्छामि, जइऽसि सक्खं पुरंदरो ॥ ४१ ॥

- **जइ** - यदि तू, **रूवेण** - रूप में, **वेसमणो** - वैश्रमण देव के समान, **असि** - हो और, **ललिएण** - लीला - विलास में, **णलकूबरो** - नलकूबर देव के समान हो । अधिक तो क्या, **जइ** - यदि, **सक्खं** - साक्षात्, **पुरंदरो** - पुरंदर (इन्द्र) भी, **असि** - हो, **तहा वि** - तो भी मैं, **ते** - तेरी, **ण इच्छामि** - इच्छा नहीं करती हूँ ॥ ४१ ॥

विवेचन - इन्द्र का आज्ञाकारी वैश्रमण देव है । वह धन का स्वामी है । अर्थात् इन्द्र का भण्डारी (खजाञ्ची) है । उसका आज्ञाकारी कूबेर देव है । वह लीला विलास करने में अत्यन्त् निपुण होता है । कूबेर की सन्तान को नलकूबर कहते हैं । किन्तु

प्रश्न होता है कि - देवताओं के तो सन्तान होती नहीं है तो फिर कूबेर की सन्तान ऐसा कैसे कहा गया है ? तो इसका समाधान यह दिया गया है कि - कूबेर जो वैक्रिय रूप से बालक बालिका का रूप बनाता है वे अधिक सुन्दर व लीला विलास युक्त होते हैं । इसलिये उन वैक्रिय रूपों को कूबेर की सन्तान कह दिया गया है ।

पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं ।
णेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे ॥४२॥

- **अगंधणे** - अगन्धन नामक, **कुले** - कुल में, **जाया** - उत्पन्न हुए सर्प, **जलियं** - जलती हुई, **धूमकेउं** - धूमकेतु-धूआँ निकलती हुई, **दुरासयं** - कठिनाई से सहने योग्य, **जोइं** - ज्योति - अग्नि में, **पक्खंदे**- गिर जाते हैं अर्थात् अग्नि में गिर कर मर जाना तो पसंद करते हैं किन्तु, **वंतयं** - वमन किये हुए विष को, **भोत्तुं** - पुनः पीने की, **ण इच्छंति** - इच्छा नहीं करते ॥४२॥

धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीविय-कारणा ।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ॥४३॥

- **अजसोकामी** - हे अपयश के इच्छुक ! **ते** - तुझे, **धिरत्थु** - धिक्कार हो, **जो** - जो, **तं** - तू **जीवियकारणा** - असंयम रूप जीवन के लिए, **वंतं** - वमन किये हुए को, **आवेउं** - पुनः पीना, **इच्छसि** - चाहता है । इसकी अपेक्षा तो, **ते** - तेरे लिए, **मरणं** - मर जाना, **सेयं** - श्रेष्ठ, **भवे** - है, क्योंकि संयम धारण कर के असंयम में जाना निन्दनीय है । ऐसे असंयमपूर्ण और पतित जीवन की अपेक्षा तो संयमावस्था में मृत्यु हो जाना अच्छा है ॥४३॥



अहं च भोगरायस्स, तं चऽसि अंधगवण्हिणो ।
मा कुले गंधणा होमो, संजमं णिहुओ चर ॥ ४४ ॥

- **अहं** - मैं राजीमती, **भोगरायस्स** - भोजराज (उग्रसेन की पुत्री हूँ), **च** - और, **तं** - तू, **अंधगवण्हिणो** - अन्धकवृष्णि (समुद्रविजय का पुत्र), **असि** - है । अतः, **गंधणा कुले** - गन्धन-कुल में उत्पन्न हुए सर्प के समान, **मा होमो** - मत हो, और, **णिहुओ** - निभृत-मन को स्थिर रख कर, **संजमं** - संयम का, **चर** - भली प्रकार पालन कर ॥ ४४ ॥

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि णारीओ ।
वाया-विद्धुव्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥ ४५ ॥

- हे रथनेमि ! **तं** - तुम, **जा जा** - जिन जिन, **णारीओ** - स्त्रियों को, **दिच्छसि** - देखोगे, **जइ** - यदि उन-उन पर, **भावं** - बुरे भाव, **काहिसि** - करोगे तो, **वायाविद्धुव्व-हडो** - वायु से प्रेरित हड नामक वनस्पति की भाँति, **अट्ठि अप्पा** - अस्थिर आत्मा वाले, **भविस्ससि** - हो जाओगे अर्थात् हे रथनेमि ! जिस किसी भी स्त्री को देख कर यदि तुम इस प्रकार काम-मोहित हो जाओगे तो जैसे नदी के किनारे खड़ा हुआ हड़ नाम का वृक्ष जड़ मजबूत न होने के कारण हवा के झोंके से नदी में गिर कर समुद्र में पहुँच जाता है, वैसे ही संयम में अस्थिर तुम्हारी आत्मा भी उच्च पद से नीचे गिर जायगी और फिर संसार-समुद्र में परिभ्रमण करती रहेगी ॥ ४५ ॥

गोवालो भंडवालो वा जहा तद्दव्व
एवं अणीसरो तं पि, सामण्णस्स

- **जहा** - जिस प्रकार, **गोवालो** -

या **भंडवालो** - भाण्डपाल-भण्डारी, **तद्दव्वऽणिस्सरो** - उस द्रव्य का स्वामी नहीं होता है, **एवं** - इसी प्रकार, **तं पि** - तू भी, **सामण्णस्स**- श्रमणपन का, **अणीसरो** - अनीश्वर (अस्वामी) **भविस्ससि** - हो जायगा ॥ ४६ ॥

विवेचन - राजीमती रथनेमि को दृष्टांत देकर समझाती है कि हे मुने ! जैसे गौओं को चराने वाला ग्वाला उन गौओं का स्वामी नहीं होता और न उसे उनके दूध आदि को ग्रहण करने का अधिकार होता है, और जैसे कोषाध्यक्ष उस धन का स्वामी नहीं होता और न उस धन को खर्च करने का अधिकारी होता है, उसी प्रकार तू भी संयम का वास्तविक स्वामी नहीं होगा क्योंकि द्रव्य-संयम से आत्मा का कल्याण कभी नहीं हो सकता ।

तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाई सुभासियं ।
अंकुसेण जहा णागो, धम्मे संपडिवाइओ॥ ४७ ॥

- **सो** - वह रथनेमि, **तीसे** - उस, **संजयाई** - संयमवती साध्वी के, **सुभासियं** - सुभाषित, **वयणं** - वचनों को, **सोच्चा** - सुन कर, **धम्मे** - धर्म में, **संपडिवाइओ** - स्थिर हो गया, **जहा** - जैसे, **अंकुसेण** - अंकुश से, **णागो** - हाथी वश में हो जाता है ॥ ४७ ॥ ❁

❁ गाथा ४७ और ४८ के क्रम में अन्तर हो रहा है । अनुवादक महोदय ने ४७ वाँ को ४८ वाँ और ४८ को ४७ वाँ स्थान दिया । किन्तु लुधियाना की प्रति में प्रस्तुत क्रमानुसार ही है और हैदराबाद वाली प्रति में बीकानेर वाली सम्पादक महोदय की आवृत्ति के समान है । पूज्य श्री घासीलाल जी म. सा. वाली प्रति में तो यह गाथा है ही नहीं । इसी प्रकार श्री संतबाल सम्पादित पुस्तक में भी नहीं है और आचार्य श्री नेमीचन्द की वृत्ति (संवत् ११२९) में भी यह गाथा नहीं है, इतना ही नहीं गाथा ४२ भी



कोहं माणं णिगिण्हित्ता, माया लोभं च सव्वसो ।
इंदियाइं वसे काउं, अप्पाणं उवसंहरे ॥ ४८ ॥

- **कोहं** - क्रोध, **माणं** - मान, **माया** - माया, **च** - और, **लोभं**- लोभ - इन सब को, **सव्वसो** - सर्वथा प्रकार से, **णिगिण्हित्ता** - निग्रह कर (जीत कर) और, **इंदियाइं** - पाँचों इन्द्रियों को, **वसे** - वश में, **काउं** - कर के, **अप्पाणं** - अपनी आत्मा को, **उवसंहरे** - वश में कर लिया ॥ ४८ ॥

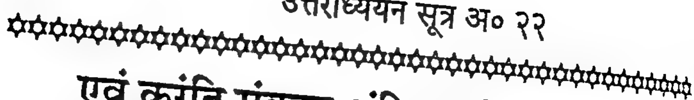
मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ ।
सामण्णं णिच्चलं फासे, जावज्जीवं दढव्वओ ॥

- **मणगुत्तो** - मन-गुप्त, **वयगुत्तो** - वचन-गुप्त, **कायगुत्तो**- काय-गुप्त **जिइंदिओ** - जितेन्द्रिय और, **दढव्वओ** - व्रतों में दृढ़ एवं, **णिच्चलं** - निश्चल होकर उस रथनेमि ने, **जावज्जीवं** - जीवनपर्यन्त, **सामण्णं** - साधु-धर्म का, **फासे** - पालन किया ॥ ४९ ॥

उग्गं तवं चरित्ता णं, जाया दोण्णि वि केवली ।
सव्वं कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥ ५० ॥

- **उग्गं** - उग्र, **तवं** - तप का, **चरित्ता णं** - **सेवन** करके, **दोण्णि वि** - राजीमती और रथनेमि दोनों ही, **केवली-केवल**ज्ञानी, **जाया** - हो गये । तत्पश्चात्, **सव्वं** - सभी, **खवित्ता णं** - क्षय करके, **अणुत्तरं** - **सिद्धिं** - सिद्धि गति को, **पत्ता** - प्राप्त हुए

नहीं है और कुल ४९ गाथाएँ ही हैं । हमारे अर्थ दिया वही उपयुक्त लगता है । - डोशी



एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से पुरिसुत्तमो ।५१।

त्ति बेमि।

- **संबुद्धा** - तत्त्वज्ञ, **पंडिया** - पाप से डरने वाले और पाप नहीं करने वाले पण्डित, **पवियक्खणा** - विचक्षण पुरुष, **एवं** - ऐसा ही, **करंति** - करते हैं अर्थात्, **भोगेसु** - भोगों से, **विणियट्टंति**- निवृत्त हो जाते हैं, **जहा**- जैसे, **से** - वह, **पुरिसुत्तमो** - पुरुषों में उत्तम रथनेमि भोगों से निवृत्त हो गया अर्थात् जो विवेकी होते हैं वे विषय भोगों के दोषों को जान कर रथनेमि के समान भोगों का परित्याग कर देते हैं ॥ ५१ ॥ **त्ति बेमि** - ऐसा मैं कहता हूँ ।

विवेचन - इस गाथा में रथनेमि को पुरुषोत्तम कहा है यह कैसे ? क्यों कि वे तो साध्वी राजीमती को देख कर चलित हो गये थे ? इसका समाधान यह दिया गया है कि - जातिवन्त लाखीणा घोड़ा भी कभी ठोकर खा जाता है किन्तु गिर पड़ता नहीं है तब तक वह जातिवन्त लाखीणा घोड़ा ही कहलाता है । इसी प्रकार रथनेमि मन से और वचन से चलित हो गये थे किन्तु काया से चलित नहीं हुए थे । इसलिये संयम से सर्वथा पतित नहीं बने थे तथा वे जिनेन्द्र भगवान् के मार्ग को और संयम को श्रेष्ठ समझते थे । इसीलिये गाथा ३८ में रथनेमि ने कहा है कि -

"भुत्तभोगी तओ पच्छा जिणमग्गं चरिस्सामो ॥३८॥"

इस कारण से और राजीमती के वचनों से वे संयम में स्थिर हो गये थे । इसलिये शास्त्रकार ने उनको पुरुषोत्तम कहा है सो उचित ही है ।

॥ बाईसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

केशी-गौतमीय तेइसवाँ अध्ययन

जिणे पासित्ति णामेणं, अरहा लोगपूइओ ।
संबुद्धप्पा य सव्वण्णू, धम्म-तित्थयरे जिणे ॥१ ॥

- **जिणे** - राग-द्वेष को जीतने वाले, **अरहा** - नरेन्द्र देवेन्द्रों से पूजित एवं वन्दित, **लोगपूइए** - लोक में पूजित, **संबुद्धप्पा** - तत्त्वज्ञान से युक्त आत्मा वाले, **सव्वण्णू** - सर्वज्ञ, **धम्मतित्थयरे** - धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले, **जिणे** - समस्त कर्मों को जीतने वाले, **पासित्ति णामेणं** - पार्श्वनाथ नाम के भगवान् थे ॥१ ॥

तस्स लोगपईवस्स, आसी सीसे महायसे ।
केसी कुमार समणे, विज्जाचरण-पारगे ॥२ ॥

- **लोगपईवस्स** - लोक में दीपक के समान अर्थात् संसार के सम्पूर्ण पदार्थों को अपने ज्ञान द्वारा प्रकाशित करने वाले, **तस्स** - उन पार्श्वनाथ भगवान् के, **विज्जाचरण पारगे** - विद्या (ज्ञान) और चारित्र के पारगामी, **महायसे** - महायशस्वी, **केसी कुमार समणे** - कुमार श्रमण केशी स्वामी, **सीसे** - शिष्य, **आसी** - थे ।

विवेचन - भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य केशी स्वामी थे । उन्होंने बचपन में यानी छोटी उम्र में दीक्षा ली थी इसलिये शास्त्रकार ने उनको कुमार श्रमण कहा है ।

ओहिणाणसुए बुद्धे, सीससंघसमाउले ।
गामाणुगामं रीयंते, सावत्थिं पुरिमागए

- **ओहिणाण सुए** - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और

युक्त, **बुद्धे** – तत्त्वों को जानने वाले, **सीससंघसमाउले** – शिष्यों के परिवार सहित, **गामाणुगामं** – ग्रामानुग्राम, **रीयंते** – विचरते हुए वे कुमार श्रमण केशी स्वामी, **सावत्थिं पुरिं (णयरिं)** – श्रावस्तीपुरी नामक नगरी में, **आगए** – पधारे ॥ ३ ॥

तिंदुयं णाम उज्जाणं, तम्मि णगरमंडले ।
फासुए सिज्ज-संथारे, तत्थ वासमुवागए ॥ ४ ॥

– **तम्मि णगरमंडले** – उस श्रावस्ती नगरी के समीप, **तिंदुयं णाम** – तिन्दुक नाम का, **उज्जाणं** – एक उद्यान था । **तत्थ** - वहाँ, **फासुए** – प्रासुक (जीव-रहित) **सिज्जसंथारे** – संस्तारक युक्त स्थान में वे केशी कुमार श्रमण, **वासमुवागए** – ठहरे ॥ ४ ॥

अह तेणेव कालेणं, धम्मतित्थयरे जिणे ।
भगवं वद्धमाणित्ति, सव्वलोगम्मि विस्सुए ॥ ५ ॥

– **अह** – अथ, **तेणेव कालेणं** – उसी समय, **धम्मतित्थयरे**- धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले, **जिणे** – राग-द्वेष को जीतने वाले, **भगवं** – भगवान्, **वद्धमाणित्ति** – वर्द्धमान स्वामी, **सव्वलोगम्मि** – समस्त लोक (संसार) में, **विस्सुए** – विश्रुत-सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर रूप से प्रसिद्ध थे ॥ ४ ॥

तस्स लोगपईवस्स, आसी सीसे महायसे ।
भगवं गोयमे णाम, विज्जाचरण-पारगे ॥ ६ ॥

– **लोगपईवस्स** – लोक में दीपक के समान अर्थात् संसार के सम्पूर्ण पदार्थों को अपने ज्ञान द्वारा प्रकाशित करने वाले, **तस्स** - उन भगवान् वर्द्धमान स्वामी के, **विज्जाचरणपारगे** – विद्या, ज्ञान



और चारित्र के पारगामी, **महायसे** - महायशस्वी, **भगवं** - भगवान्, **गोयमे** - गौतम, **सीसे** - शिष्य, **आसी** - थे ॥ ६ ॥

बारसंगविऊ बुद्धे, सीस-संघसमाउले ।
गामाणुगामं रीयंते, सेऽवि सावत्थिमागए ॥ ७ ॥

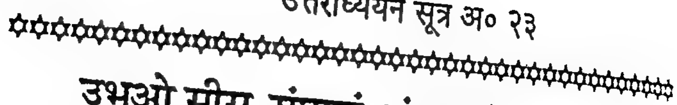
- **बारसंगविऊ** - आचाराङ्ग से लेकर दृष्टिवाद तक के बारह अंगों के ज्ञाता, **बुद्धे** - तत्त्वज्ञानी, **सीससंघसमाउले** - शिष्यों के परिवार सहित, **गामाणुगामं** - ग्रामानुग्राम, **रीयंते** - विचरते हुए, **सेऽवि** - वे गौतम स्वामी भी, **सावत्थिं** - श्रावस्ती नगरी में, **आगए** - पधारे ॥ ७ ॥

कोट्ठगं णाम उज्जाणं, तम्मि णगरमंडले ।
फासुए सिज्जसंथारे, तत्थ वासमुवागए ॥ ८ ॥

- **तम्मि णगरमंडले** - उस श्रावस्ती नगरी के समीप, **कोट्ठगं णाम** - कोष्ठक नाम का, **उज्जाणं** - एक उद्यान था, **तत्थ** - वहाँ, **फासुए** - प्रासुक (जीव-रहित), **सिज्जसंथारे** - संस्तारक युक्त स्थान में, **वासं उवागए** - ठहर गये ॥ ८ ॥

केसीकुमार समणे, गोयमे य महायसे ।
उभओऽवि तत्थ विहरिंसु, अल्लीणा सुसमाहिया ॥

- **अल्लीणा** - मन-वचन-काया से गुप्त, **सुसमाहिया** - ज्ञान दर्शन-चारित्र की समाधिवंत, **महायसे** - महा यशस्वी, **केसी कुमार समणे** - कुमार श्रमण केशी स्वामी, **य** - और **गोयमे** - गौतम स्वामी, **उभओ** - दोनों ही, **तत्थ** - वहाँ सुख-शांतिपूर्वक, **विहरिंसु** - विचरते थे ॥ ९ ॥



उभओ सीस-संघाणं, संजयाणं तवस्सिणं।
तत्थ चिंता समुप्पण्णा गुणवंताण ताइणं ॥ १० ॥

- **उभओ** - कुमारश्रमण केशीस्वामी और गौतम स्वामी दोनों के, **संजयाणं** - संयत, **तवस्सिणं** - तपस्वी, **गुणवंताण** - ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुण सम्पन्न, **ताइणं** - छह काय जीवों के रक्षक, **सीससंघाणं** - शिष्य-समुदाय के मन में, **तत्थ** - वहां, **चिंता** - चिन्ता, शंका, **समुप्पण्णा** - उत्पन्न हुई अर्थात् गोचरी के लिए निकले हुए उन दोनों के शिष्य-समुदाय को, एक ही धर्म के उपासक होने पर भी, एक-दूसरे के वेष आदि में अन्तर दिखाई देने के कारण एक-दूसरे के प्रति शंका उत्पन्न हुई ॥ १० ॥

केरिसो वा इमो धम्मो ? इमो धम्मो व केरिसो ?।
आयार-धम्मप्पणिही, इमा वा सा व केरिसी ? ॥

- वे शिष्य इस प्रकार शंका करने लगे कि, **इमो** - यह हमारा, **धम्मो** - धर्म, **केरिसो** - कैसा है, **वा** - और, **इमो** - यह इनका, **धम्मो** - धर्म, **केरिसो** - कैसा है ? **वा** - तथा, **इमा** - यह हमारी, **आयारधम्मप्पणिही** - आचार धर्म की व्यवस्था अर्थात् बाह्य वेष धारणादि क्रिया, **केरिसी** - कैसी है, **व** - और, **सा** - उनकी आचार-धर्म की व्यवस्था कैसी है ? ॥

चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंच-सिक्खिओ।
देसिओ वद्धमाणेणं, पासेण य महामुणी ॥ १२ ॥

- **महामुणी** - महामुनि, **पासेण** - पार्श्वनाथ भगवान् ने, जो-जो, **चाउज्जामो** - चतुर्याम अर्थात् चार महाव्रत वाला, **धम्मो** -

☆☆

धर्म, **देसिओ** - कहा है, **य** - और, **वद्धमाणेणं** - वर्द्धमान स्वामी ने, **जो** - जो, **इमो** - यह, **पंचसिक्खिओ** - पाँच महाव्रत वाला धर्म कहा है, तो इस भेद का क्या कारण है ? ॥ १२ ॥

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो संतरुत्तरो ।
एगकज्जपवण्णाणं, विसेसे किं णु कारणं ॥ १३ ॥

- भगवान् वर्द्धमान स्वामी ने, **जो** - जो, **अचेलगो** - अचेलक-परिमाणोपेत श्वेत एवं अल्पमूल्य वाले वस्त्र रखने का, **धम्मो** - धर्म कहा है; **य** - और भगवान् पार्श्वनाथ ने, **जो** - जो, **इमो** - यह, **संतरुत्तरो** - विशिष्ट एवं बहुमूल्य वस्त्र रखने रूप धर्म कहा है तो, **एगकज्जपवण्णाणं** - मोक्ष प्राप्ति रूप एक कार्य के लिए प्रवृत्ति करने वालों के बाह्य-आचार में, **विसेसे** - इतना अन्तर होने का, **किं णु** - क्या, **कारणं** - कारण है ? ॥ १३ ॥

अह ते तत्थ सीसाणं, विण्णाय पवितक्कियं ।
समागमे कयमई, उभओ केसीगोयमा ॥ १४ ॥

- **अह** - इसके बाद, **तत्थ** - वहाँ पर, **सीसाणं** - अपने-अपने शिष्यों की, **पवितक्कियं** - प्रवितर्कित - तर्क रूप शंका को, **विण्णाय** - जान कर उसकी निवृत्ति के लिए, **ते** - उन, **केसीगोयमा** - कुमार श्रमण केशी स्वामी और गौतम स्वामी, **उभओ** - दोनों महापुरुषों ने, **समागमे** - एक स्थान पर मिलने का, **कयमई** - विचार किया ॥ १४ ॥

गोयमो पडिरूवण्णू, सीससंघसमाउले ।
जेट्ठं कुलमवेक्खंतो, तिंदुयं वणमागओ ॥ १



- केशी कुमार श्रमण तेवीसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानिये (शिष्यानुशिष्य) थे, इसलिये उनके, **कुलं** - कुल को, **जेट्ठं** - ज्येष्ठ (बड़ा), **अवेक्खंतो** - मान कर, **पडिरूवण्णू** - प्रतिरूपज्ञ-विनय-धर्म के ज्ञाता, **गोयमो** - गौतम स्वामी, **सीससंघसमाउले** - अपने शिष्य-समुदाय सहित, **तिंदुयं** - तिंदुक, **वणं** - उद्यान में जहाँ केशीकुमार श्रमण ठहरे हुए थे वहाँ, **आगओ** - आये ॥ १५ ॥

केसीकुमार-समणे, गोयमं दिस्समागयं ।
पडिरूवं पडिवत्तिं, सम्मं संपडिवज्जइ ॥ १६ ॥

- **केसीकुमार समणे** - केशी कुमार श्रमण, **गोयमं** - गौतम स्वामी को **आगयं** - आते हुए, **दिस्स** - देख कर बहुमान भक्ति के साथ, **पडिरूवं** - प्रतिरूप-उनके योग्य, **पडिवत्तिं** - प्रतिपत्ति-सत्कार-सम्मान, **सम्मं संपडिवज्जइ** - सम्यक् प्रकार से ..रने लगे ॥ १६ ॥

पलालं फासुयं तत्थ, पंचमं कुसतणाणि य ।
गोयमस्स णिसेज्जाए, खिप्पं संपणामए ॥ १७ ॥

- केशी कुमार श्रमण ने, **तत्थ** - वहाँ, **गोयमस्स** - गौतम स्वामी के, **णिसेज्जाए** - बैठने के लिए, **फासुयं** - प्रासुक, **पलालं** - पलाल अर्थात् शाली, व्रीहि, कोद्रव, राल यह चार, **य** - और, **पंचमं** - पाँचवाँ, **कुसतणाणि** - डाभ के तृण, ये पाँच प्रकार का पलाल, **संपणामए** - दिये ॥ १७ ॥

केसीकुमार-समणे, गोयमे य महायसे ।
उभओ णिसण्णा सोहंति, चंदसूरसमप्पभा ॥ १८ ॥



- **चंदसूरसमप्पभा** - चन्द्र और सूर्य के समान कान्ति वाले, **महायसे** - महा यशस्वी, **केसीकुमार समणे** - केशी कुमार श्रमण, **य** - और, **गोयमे** - गौतम स्वामी, **उभओ** - दोनों, **णिसण्णा** - आसन पर बैठे हुए चन्द्रमा और सूर्य के समान, **सोहंति** - शोभित हो रहे थे ॥ १८ ॥

समागया बहू तत्थ, पासंडा कोउगा मिया ।
गिहत्थाण अणेगाओ, साहस्सीओ समागया ॥ १९ ॥

- उन दोनों मुनियों की चर्चा-वार्ता को सुनने के लिए, **गिहत्थाण** - गृहस्थों के, **अणेगाओ** - अनेक, **साहस्सीओ** - सहस्त्र - हजारों अर्थात् हजारों गृहस्थ, **तत्थ** - वहाँ तिन्दुक वन में, **समागया** - आये और, **बहू** - बहुत-से, **मिया** - मृग के समान अज्ञानी, **पासंडा** - पाखंडी लोग और, **कोउगा** - कुतूहली लोग भी, **समागया** - वहाँ आकर इकट्ठे हुए ॥ १९ ॥

देव-दाणव-गंधव्वा, जक्ख-रक्खस-किण्णरा ।
अदिस्साणं च भूयाणं, आसी तत्थ समागमो ॥

- **देवदाणवगंधव्वा** - ज्योतिषी और वैमानिक देव, दानव (भवनपति, गन्धर्व) **जक्खंरक्खस किण्णरा** - यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि वाणव्यंतर देव भी वहाँ आये, **च** - और, **अदिस्साणं**- दिखाई न देने वाले, **भूयाणं** - वाणव्यंतर जाति के भी, **तत्थ** - वहाँ, **समागमो**- समागम, **आसी** - था भूत भी वहाँ आये थे ॥ २० ॥

पुच्छामि ते महाभाग ! केसी ।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो ।

– **केसी** – केशी कुमार श्रमण ने, **गोयमं** – गौतम स्वामी से, **अब्बवी** – कहा कि, **महाभाग** – हे महाभाग ! मैं, **ते** – आपसे, **पुच्छामि** – कुछ पूछना चाहता हूँ, **तओ** – तब, **बुवंतं** – इस प्रकार बोलते हुए, **केसिं** – केशी कुमार श्रमण को, **गोयमो** – गौतम स्वामी, **इण** – इस प्रकार, **अब्बवी** – कहने लगे ॥ २१ ॥

पुच्छ भंते ! जहिच्छं ते, केसिं गोयम-मब्बवी ।
तओ केसी अणुण्णाए, गोयमं इणमब्बवी ॥ २२ ॥

– **गोयमं** – गौतम स्वामी ने, **केसिं** – केशीकुमार श्रमण को, **अब्बवी** – कहा कि, **भंते** – हे भगवन् !, **ते** – आपकी, जहिच्छं - जैसी इच्छा हो वैसा, **पुच्छ** – प्रश्न करो । **तओ** – इसके वाद, **अणुण्णाए** – गौतम स्वामी की अनुमति प्राप्त होने पर, **केसी** - केशी कुमार श्रमण, **गोयमं** – गौतम स्वामी से, **इणं** – इस प्रकार, – पूछने लगे ॥ २२ ॥

चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥ २३ ॥

– पहला प्रश्नः – **महामुणी** – महामुनि, **पासेण** – पार्श्वनाथ भगवान् ने, **जो** – जो, **चाउज्जामो** – यह चार याम (महाव्रत) वाला, **धम्मो**- धर्म, **देसिओ** – कहा है और, **वद्धमाणेण** – भगवान् वर्द्धमान स्वामी ने, **जो** – जो, **इमो** – यह, **पंचसिक्खिओ** – पाँच महाव्रत वाला धर्म कहा है ॥ २३ ॥

एगकज्ज पवण्णाणं, विसेसे किं णु कारणं ! ।
धम्मे दुविहे मेहावि ! कहं विप्पच्चओ ण ते ? ॥



- **एगकज्जपवण्णाणं** - एक ही कार्य (मोक्ष प्राप्ति रूप कार्य) के लिए प्रवृत्ति करने वालों में परस्पर, **विसेसे** - विशेषता का, **किं णु** - क्या, **कारणं** - कारण है अर्थात् इस, **दुविहे** - दो प्रकार के, **धम्मे** - धर्म के विषय में, **मेहावी** - हे मेधाविन् ! **कहं** - क्या, **ते** - आपको, **विप्पच्चओ** - संशय, **ण** - नहीं होता ? अर्थात् भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् वर्द्धमान स्वामी दोनों सर्वज्ञ हैं, तो फिर मतभेद का क्या कारण है ? ॥ २४ ॥

तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ।
पण्णा समिक्खए धम्मं, तत्तं तत्तविणिच्छियं ॥२५॥

- **तओ** - इसके बाद, **बुवंतं** - इस प्रकार कहते हुए, **केसिं**- केशीकुमार श्रमण से, **गोयमो** - गौतम स्वामी, **इणं** - इस प्रकार, **अब्बवी** - कहने लगे कि, **तत्तविणिच्छियं** - जीवादि तत्त्वों का जिसमें निश्चय किया जाता है, **धम्मं तत्तं** - ऐसे धर्म तत्त्व को, **पण्णा** - बुद्धि ही, **समिक्खए** - ठीक समझ सकती है अर्थात् बुद्धि के द्वारा ही तत्त्वों का निर्णय होता है ॥ २५ ॥

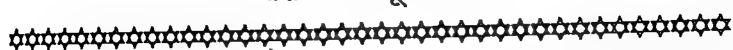
पुरिमा उज्जुजडा उ, वंक्कजडा य पच्छिमा ।
मज्झिमा उज्जुपण्णा उ, तेण धम्मे दुहा कए ॥ २६ ॥

- **पुरिमा** - पहले तीर्थंकर के साधु, **उज्जुजडा** - ऋजुजड़ होते हैं **उ** - और, **पच्छिमा** - अन्तिम तीर्थंकर के साधु **वंक्कजडा**- वक्रजड़ होते हैं, **य** - और, **मज्झिमा** - मध्य के बाईस के साधु, **उज्जुपण्णा** - ऋजुप्राज्ञ होते हैं, **तेण** - इसलि धर्म, **दुहा** - दो प्रकार का, **कए** - कहा गया है ॥ २

विवेचन – प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजुजड़ होते हैं । वे प्रकृति के सरल होते हैं । किन्तु क्षयोपशम की मन्दता के कारण मन्द बुद्धि वाले होते हैं इसलिए वे तत्त्वों के अभिप्राय को शीघ्र नहीं समझ पाते हैं । अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्रजड़ होते हैं, उन्हें हितशिक्षा दी जाने पर भी वे अनेक प्रकार के कुतर्कों द्वारा परमार्थ की अवहेलना करने में उद्यत रहते हैं तथा वक्रता के कारण छल पूर्वक व्यवहार करते हुए अपनी मूर्खता को चतुरता के रूप में प्रदर्शित करने की चेष्टा करते हैं । मध्य के बाईस तीर्थंकरों के साधु ऋजुप्राज्ञ अर्थात् सरल और बुद्धिमान् होते हैं । वे सरलता पूर्वक समझाये जा सकते हैं और ऐसे बुद्धिमान् होते हैं कि संकेतमात्र कर देने से ही वे उस तत्त्व के मर्म तक पहुँच जाते हैं । इसलिए धर्म के नियमों में भेद किया गया है अर्थात् प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं के लिए पाँच महाव्रतों का विधान गया है और मध्य के बाईस तीर्थंकरों के साधुओं के लिए चार याम (महाव्रतों) का कथन किया गया है ।

पुरिमाणं दुव्विसोज्झो उ, चरिमाणं दुरणुपालओ ।
कप्पो मज्झिमगाणं तु, सुविसोज्झो सुपालओ ॥२७॥

– **पुरिमाणं** – पहले तीर्थंकर के साधुओं का, **कप्पो** – कल्प–आचार, **दुव्विसोज्झो** – दुर्विशोध्य है, **उ** – और, **चरिमाणं** – अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं का आचार, **दुरणुपालओ** – दुरनुपालक है, **तु** – और, **मज्झिमगाणं** – मध्य के बाईस तीर्थंकरों के साधुओं का आचार, **सुविसोज्झो** – सुविशोध्य और, **सुपालओ** – सुपालक है अर्थात् प्रथम तीर्थंकर के साधु अपने कल्प (आचार) को शीघ्रता से नहीं समझ पाते हैं । उनकी प्रकृति सरल होती है. तथा



बुद्धि मंद होती है । इसलिए उनकी बुद्धि शीघ्रता से पदार्थों के अवधारण करने में समर्थ नहीं होती । अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्रजड़ होते हैं, वे किसी बात को सरलतापूर्वक समझते नहीं और समझ जाने पर भी उसका सरलता से पालन नहीं करते, क्योंकि इस काल के जीव कुतर्क उत्पन्न करने में बड़े कुशल होते हैं । मध्य के बाईस तीर्थंकरों के मुनियों को शिक्षित करना या साधु-कल्प का बोध देना और उनके द्वारा उसका पालन किया जाना ये दोनों बातें सुलभ होती हैं, इसलिए इनके लिए चार महाव्रतों का विधान किया गया है और प्रथम तीर्थंकर तथा अन्तिम तीर्थंकर के मुनियों के लिए पाँच महाव्रतों का विधान किया गया है ॥ २७ ॥

विवेचन - प्रथम और अंतिम तीर्थंकर के समय पांच महाव्रत इस प्रकार होते हैं - सर्वथा प्रकार से हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह का तीन करण तीन योग से त्याग करना । बीच के बाईस-तीर्थंकर तथा महाविदेह के सभी तीर्थङ्करों के साधुओं के चार याम धर्म इस प्रकार होते हैं - सर्वथा प्रकार से हिंसा, झूठ, चोरी और बहिद्धादान का तीन करण तीन योग से त्याग होता है । "बहिद्धादान" का अर्थ है - बहिद्धा - अर्थात् बाहर की वस्तु को, आदान-अर्थात् लेना।" विषय भोग की सामग्री (स्त्री आदि) तथा धन-धान्य सोना-चांदी आदि सब बाहर की वस्तु हैं । इसलिये "बहिद्धादान" शब्द में दोनों बाहरी वस्तु का लिया गया है । इसलिये पांच महाव्रत रूप धर्म - का अर्थ एक ही है । केवल शब्दों का फर्क है । ६० कहे और कोई अनपढ़ व्यक्ति तीन बीसी

व्यक्ति के लिये दोनों का अर्थ एक ही है ६०। २०+२०+२०= ६०। इस तरह व्रतों के विषय में भी समझना चाहिए।

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो।
अण्णो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा !॥

- **गोयम** - हे गौतम ! **ते** - आपकी, **पण्णा** - प्रज्ञा-बुद्धि, **साहु**- साधु-श्रेष्ठ है । आपने, **मे** - मेरा, **इमो** - यह, **संसओ** - संशय, **छिण्णो**- दूर कर दिया है । **मज्झं** - मेरा, **अण्णो वि** - और भी, **संसओ** - संशय है इसलिए, **गोयम** - हे गौतम ! **तं** - उसके विषय में भी, **मे** - मुझे, **कहसु** - कहिये अर्थात् मेरा जो दूसरा संशय है उसे भी दूर कीजिये ॥ २८ ॥

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो संतरुत्तरो।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महाजसा ॥ २९ ॥
एगकज्जपवण्णाणं, विसेसे किं णु कारणं।
लिंगे दुविहे मेहावि ! कहं विप्पच्चओ ण ते ॥ ३०॥

- दूसरा प्रश्नः - **महाजसा** - महायशस्वी महामुनीश्वर, **व** [illegible] **ण** - भगवान् वर्द्धमान स्वामी ने, **जो** - जो यह, **अचेलगो** - अचेलक (परिमाणोपेत श्वेत तथा अल्प मूल्य वाले वस्त्र रखने) रूप, **धम्मो** - धर्म, **देसिओ** - कहा है, **य** - और, **पासेण** - भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी ने, **जो** - जो, **इमो** - यह, **संतरुत्तरो** - मानोपेत-रहित, विशिष्ट एवं बहुमूल्य वस्त्र रख सकने रूप धर्म कहा है तो, **एगकज्जपवण्णाणं** - एक ही कार्य के लिए अर्थात् मोक्ष प्राप्ति रूप कार्य के लिए प्रवृत्ति करने वालों में परस्पर, **विसेसे** - विशेषता होने में, **किं णु** - क्या, **कारणं** -

कारण है ? **मेहावि** – हे मेधाविन् ! **लिंगे** – बाह्य वेश के, **दुविहे** – दो भेद हो जाने पर, **किं** – क्या, **ते** – आपके मन में, **विप्पच्चओ**– विप्रत्यय-संदेह, **ण** – उत्पन्न नहीं होता है ? जब दोनों बातें सर्वज्ञ-कथित हैं तो फिर मतभेद का क्या कारण है ?॥ २९-३० ॥

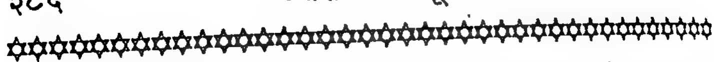
केसिमेवं बुवाणं तु, गोयमो इणमब्बवी ।
विण्णाणेण समागम्म, धम्म-साहण-मिच्छियं ॥

– **एवं** – इस प्रकार, **बुवाणं** – कहते हुए, **केसिं** – केशीकुमार श्रमण को, **गोयमो** – गौतम स्वामी, **इणं** – इस प्रकार, **अब्बवी** – कहने लगे – भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी ने और भगवान् वर्द्धमान स्वामी ने, **विण्णाणेण** – विज्ञान द्वारा अर्थात् केवलज्ञान द्वारा, **समागम्म** – जान कर यथायोग्य, **धम्मसाहणं** – धर्म साधन धर्म-उपकरणों की, **इच्छियं** – आज्ञा दी है ॥ ३१ ॥

पच्चयत्थं च लोगस्स, णाणाविह-विगप्पणं ।
जत्तत्थं गहणत्थं च, लोगे लिंगपओयणं ॥ ३२ ॥

– **णाणाविह विगप्पणं** – नानाविधविकल्पन अर्थात् अनेक प्रकार के उपकरणों की कल्पना, **लोगस्स** – लोगों की, **पच्चयत्थं**– प्रतीति एवं विश्वास के लिए है, **च** – और, **जत्तत्थं** – संयम-यात्रा का निर्वाह करने के लिए, **च** – तथा, **गहणत्थं** – ज्ञानादि ग्रहण के लिए, **लोगे** – लोक में, **लिंगपओयणं** – लिंग (वेष) का प्रयोजन है ॥ ३२ ॥

विवेचन– 'यह साधु है' लोक में ऐसी प्रतीति हो, इसके लिए लिंग (वेष) का प्रयोजन है । अन्यथा प्रत्येक व्यक्ति अपनी पूजा के लिए अपनी इच्छानुसार वेष धारण कर के साधु कहला



का ढोंग कर सकता है । संयम यात्रा के निर्वाह के लिए तथा ज्ञानादि के ग्रहण के लिए भी वेष की आवश्यकता है । कदाचित् कर्मोदय से संयम के प्रति अरुचि अथवा मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो जाय तो यह विचार करना चाहिए कि मेरा साधु-वेष है। मुझे इसके अनुसार ही प्रवृत्ति करनी चाहिए । अन्यथा मेरे कारण यह जिनशासन का वेष और जिनशासन लज्जित होगा, ऐसी प्रवृत्ति मुझे नहीं करनी चाहिए ।

अह भवे पइण्णा उ, मोक्ख-सब्भूयसाहणा ।
णाणं च दंसणं चेव, चरित्तं चेव णिच्छए ॥ ३३ ॥

- **अह** - अथ-भगवान् पार्श्वनाथ की और भगवान् वर्द्धमान स्वामी की दोनों तीर्थंकरों की, **पइण्णा** - प्रतिज्ञा, **उ** - तो यही **भवे**- है कि, **णिच्छए** - निश्चय में, **मोक्ख सब्भूयसाहणा** - मोक्ष के वास्तविक साधन, **णाणं** - ज्ञान, **दंसणं** - दर्शन, **च** - और, **चरित्तं**- चारित्र ही हैं, इसलिए निश्चय में दोनों महापुरुषों की एक ही प्रतिज्ञा है, इसमें कोई मतभेद नहीं है । व्यावहारिक दृष्टि से बाह्य वेष में उपरोक्त कारणों से भेद हैं ॥ ३३ ॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥

- इस गाथा का अन्वयार्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ॥३४॥

अणेगाणं सहस्साणं, मज्झे चिट्ठसि गोयमा ! ।
ते य ते अहिगच्छंति, कहं ते णिज्जिया तुमे ? ।३५।

- तीसरा प्रश्नः - **गोयमा** - हे गौतम ! आप, **अणेगाणं** -

☆☆☆

अनेक, **सहस्साणं** - हजारों शत्रुओं के, **मज्झे** - बीच में, **चिट्ठसि**- खड़े हो, **य** - और, **ते** - वे शत्रु, **ते** - आप पर, **अहिगच्छंति** - आक्रमण कर रहे हैं, **तुमे** - आपने, **ते** - उन सब शत्रुओं को, **कहं**- कैसे, **णिज्जिया** - जीत लिया है ? ॥५ ॥

एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जिया दस ।
दसहा उ जिणित्ताणं, सव्व-सत्तू जिणामहं ॥ ३६ ॥

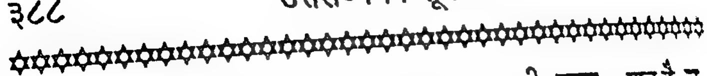
- **एगे** - एक के, **जिए** - जीतने पर, **पंच** - पाँच, **जिया** - जीते गये और पाँचों को, **जिए** - जीतने पर, **दस** - दस, **जिया** - जीते गये, **उ** - और, **दसहा** - दसों शत्रुओं को, **जिणित्ताणं** - जीत कर, **अहं** - मैने, **सव्वसत्तू** - सभी शत्रुओं को **जिणां** - जीत लिया है ॥ ३६ ॥ इस गाथा का खुलासा ३८ वीं गाथा में है।

सत्तू य इइ के वुत्ते ? केसी गोयममब्बवी ।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ३७ ॥

- उपरोक्त विषय को स्पष्ट करने के लिए, **केसी** - केशीकुमार श्रमण, **गोयमं** - गौतम स्वामी से, **इइ** - इस प्रकार, **अब्बवी** - पूछने लगे कि, **सत्तू** - वे शत्रु, **के** - कौन-से, **वुत्ते** - कहे गये हैं ? **तओ** - इसके पश्चात्, **तु** - उक्त प्रकार से, **बुवंतं** - प्रश्न करते हुए, **केसिं** - केशीकुमार श्रमण को, **गोयमो** - गौतम स्वामी, **इणं** - इस प्रकार, **अब्बवी** - कहने लगे ॥ ३७ ॥

एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इंदियाणि य ।
ते जिणित्तु जहाणायं, विहरामि अहं मुणी ! ॥ ३८

- गौतम स्वामी कहते हैं कि, **मुणी** - हे मुने ! **अजिए**



वश में न किया हुआ, **एगप्पा** - एक आत्मा ही, **सत्तू** - शत्रु है, य-और, **कसाया** - कषाय तथा, **इंदियाणि** - इन्द्रियाँ भी शत्रु हैं, ते-उनको, **जहाणायं** - न्यायपूर्वक, **जिणित्तु** - जीत कर, **अहं** - मैं, **विहरामि** - विचरता हूँ ॥ ३८ ॥

विवेचन - इस गाथा में दिये गये उत्तर से ऊपर की गाथा का स्पष्टीकरण हो जाता है अर्थात् वश में न किया हुआ आत्मा ही शत्रु है । उस एक शत्रु को जीत लेने पर पाँच (चार कषाय और एक आत्मा) शत्रु जीत लिये जाते हैं और पाँच को जीत लेने पर दस (पाँच इन्द्रियाँ, चार कषाय और एक आत्मा) शत्रु जीत लिए जाते हैं । इन को जीत लेने पर नोकषाय आदि समस्त शत्रु जीत लिए जाते हैं ।

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥३९॥

- अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ॥ ३९ ॥

दीसंति बहवे लोए, पासबद्धा सरीरिणो ।
मुक्क-पासो लहुब्भूओ, कहं तं विहरसि मुणी ! ।

- चौथा प्रश्नः - केशीकुमार श्रमण पूछते हैं कि, **लोए** - लोक में, **बहवे** - बहुत से प्राणी, **पासबद्धा** - पाश में बन्धे हुए, **दीसंति** - दिखाई देते हैं किन्तु, **मुणी** - हे मुने ! आप, **मुक्कपास**- बन्धन से मुक्त हो कर तथा, **लहुब्भूओ** - वायु के समान लघुभूत (हलके) हो कर, **कहं** - कैसे, **विहरसि** - विचरते हैं ॥ ४० ॥

ते पासे सव्वसो छित्ता, णिहंतूण उवायओ ।
मुक्कपासो लहुब्भूओ, विहरामि अहं मुणी ! ॥४१



- गौतम स्वामी कहते हैं कि, **मुणी** - हे मुने ! **उवायओ** - उपाय द्वारा, **ते** - उन, **पासे** - पाशों (बन्धनों) को, **सव्वसो** - सर्वथा प्रकार से, **छित्ता** - छेदन (काट) कर एवं, **णिहंतूण** - उनका सर्वथा नाश कर के, **अहं** - मैं, **मुक्कपासो** - मुक्त पाश-बन्धन-रहित हो कर तथा, **लहुब्भूओ**- अप्रतिबद्धविहारी होने से वायु के समान लघुभूत हो कर, **विहरामि**- विचरता हूँ ॥ ४१ ॥

पासा य इइ के वुत्ता ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ४२ ॥

- उपरोक्त विषय को स्पष्ट करने के लिए, **केसी** - केशीकुमार श्रमण, **गोयमं** - गौतम स्वामी से, **इइ** - इस प्रकार, **अब्बवी** - पूछने लगे कि, **पासा** - वे पाश, **के** - कौन से, **वुत्ता** - कहे गये हैं ? **एवं** - इस प्रकार, **बुवंतं** - प्रश्न करते हुए, **केसिं** - केशीकुमार श्रमण को, **गोयमो** - गौतम स्वामी, **इणं** - इस प्रकार, **अब्बवी** - कहने लगे ॥ ४२ ॥

रागद्दोसादओ तिव्वा, णेहपासा भयंकरा ।
ते छिंदित्तु जहाणायं, विहरामि जहक्कमं ॥ ४३ ॥

- गौतम स्वामी कहते हैं कि, **रागद्दोसादओ** - राग-द्वेष आदि तथा मोह और, **तिव्वा** - तीव्र, **णेहपासा** - धन-धान्य-पुत्र-कलत्र आदि के स्नेह रूपी पाश, **भयंकरा** - बड़े भयंकर हैं, **ते** - उनका, **जहाणायं** - यथान्याय, **छिंदित्ता** - छेदन करके मैं, **जहक्कमं** - यथाक्रम अर्थात् शान्तिपूर्वक, **विहरामि** - विचरता हूँ ॥ ४३ ॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ।



– अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ॥ ४४ ॥

अंतो-हिययसंभूया, लया चिट्ठइ गोयमा ! ।
फलेइ विस भक्खीणि, सा उ उद्धरिया कहं ॥ ४५ ॥

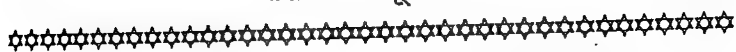
– पाँचवाँ प्रश्नः– **गोयमा** – हे गौतम !, **अंतोहिययसंभूया**- हृदय के अन्दर उत्पन्न हुई, **लया** – एक लता, **चिट्ठइ** – है । वह लता, **विस भक्खीणि** – विष (जहर) के समान जहरीले, **फलेइ**- फल देती है, **सा** – उस लता को आपने, **कहं** – किस प्रकार, **उद्धरिया**– उखाड़ कर समूल नष्ट कर दिया है ? ॥ ४५ ॥

तं लयं सव्वसो छित्ता, उद्धरित्ता समूलियं ।
विहरामि जहाणायं, मुक्को मि विसभक्खणं ॥ ४६ ॥

– गौतम स्वामी कहने लगे कि मैंने, **तं** – उस, **लयं** - लता को, **सव्वसो** – सर्वथा, **छित्ता** – छेदन (काट) कर, **समूलियं** - मूल सहित **उद्धरित्ता** – उखाड़ कर के फेंक दिया है, इसी कारण, **विसभक्खणं** – उसके विष समान फल खाने से, **मुक्को मि** - मैं मुक्त हूँ । अतएव मैं, **जहाणायं** – जिनेश्वर देव के न्याय युक्त मार्ग में, **विहरामि** – शांतिपूर्वक विचरता हूँ ॥ ४६ ॥

लया य इइ का वुत्ता ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ४७ ॥

– **केसी** – केशीकुमार श्रमण, **गोयमं** – गौतम स्वामी से, **इइ**- इस प्रकार, **अब्बवी** – पूछने लगे कि, **लया** – वह लता, **का** - कौन-सी, **वुत्ता** – कही गई है ? **एवं** – उपरोक्त प्रकार से, **बुवंतं**- प्रश्न करते हुए, **केसिं** – केशीकुमार श्रमण को, **गोयमो** – गौतम स्वामी, **इणं** – इस प्रकार, **अब्बवी** – कहने लगे ॥ ४७ ॥



भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीमफलोदया ।
तमुद्धित्तु जहाणायं, विहरामि महामुणी ॥ ४८ ॥

- **महामुणी** - हे महामुने ! **भवतण्हा** - संसार में तृष्णा रूपी, **लया** - लता, **वुत्ता** - कही गई है । **भीमा** - वह अत्यन्त भयंकर है तथा, **भीमफलोदया** - भयंकर फल देने वाली है, **तं** - उसको, **जहाणायं** - यथान्याय (जिनशासन की रीति के अनुसार), **उद्धित्तु** - उच्छेदन कर के, **विहरामि** - सुखपूर्वक विचरता हूँ ।

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥

- इस गाथा का अन्वयार्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ।

संपज्जलिया घोरा, अग्गी चिट्ठइ गोयमा ! ।
जे डहंति सरीरत्था, कहं विज्झाविया तुमे ? ॥

- छठा प्रश्नः - **गोयमा** - हे गौतम ! **घोरा** - भयंकर, **संपज्जलिया** - जलती हुई, **अग्गी** - एक अग्नि, **चिट्ठइ** - है, **जे** - जो, **सरीरत्था** - शरीर में रह कर, **डहंति** - आत्मगुणों को जलाती है । **तुमे** - आपने, **कहं** - किस प्रकार, **विज्झाविया** - उसे बुझाया है ॥ ५० ॥

महामेहप्पसूयाओ, गिज्झ वारि जलुत्तमं ।
सिंचामि सययं ते उ, सित्ता णो व डहंति मे ॥ ५१ ॥

- गौतम स्वामी कहते हैं कि, **महामेहप्पसूयाओ** - महामे से उत्पन्न हुए, **जलुत्तमं** - जलों में उत्तम, **वारि** - जल को, गि ग्रहण करके मैं, **ते** - शरीर में रही हुई उस अग्नि को, सतत-निरंतर, **सिंचामि** - बुझाता रहता हूँ इस प्रकार.

बुझाई हुई वह अग्नि, **मे** - मुझे अर्थात् मेरे आत्म-गुणों को, णो - नहीं, **डहंति** - जलाती है ॥५१ ॥

अग्गी य इइ के वुत्ता ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥५२ ॥

- **केसी** - केशीकुमार श्रमण, **गोयमं** - गौतम स्वामी से, इइ- इस प्रकार, **अब्बवी** - पूछने लगे कि, **अग्गी** - वह अग्नि, के - कौन-सी, **वुत्ता** - कही गई है, **य** - और महामेघ तथा जल कौन-सा कहा गया है ? **एवं** - उपरोक्त प्रकार से, **बुवंतं** - प्रश्न करते हुए, **केसिं** - केशीकुमार श्रमण से, **गोयमो** - गौतम स्वामी, इणं - इस प्रकार, **अब्बवी** - कहने लगे ॥५२ ॥

कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुय-सील-तवो जलं ।
सुयधाराभिहया संता, भिण्णा हु ण डहंति मे ॥

- **कसाया** - क्रोध-मान-माया-लोभ ये चार कषाय रूप, **अग्गिणो** - अग्नि, **वुत्ता** - कही गई है और, **सुयसीलतवो** - श्रुत शील-तप रूप, **जलं** - जल कहा गया है । **सुयधाराभिहया संता** - उस श्रुत रूप जल से सिंचित की जाने पर, **भिण्णा** - भिन्न-नष्ट हुई वह अग्नि, **मे** - मुझे, **ण डहंति** - नहीं जलाती है॥

विवेचन - श्री तीर्थंकर देव, महामेघ के समान हैं । जिस प्रकार मेघ से जल उत्पन्न होता है, उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् के मुखारविन्द से श्रुत-आगम उत्पन्न होता है । उसमें वर्णित श्रुतज्ञान, शील और तप रूप जल है । उस श्रुत-शील और तप रूप जल के छिड़कने से कषाय रूपी अग्नि शान्त हो जाती है, फिर वह आत्मगुणों को नहीं जला सकती है ॥५३ ॥



साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥

- अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ॥ ५४ ॥

अयं साहस्सिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावइ ।
जंसि गोयम ! आरूढो, कहं तेण ण हीरसि ? ॥

- सातवाँ प्रश्नः- **गोयम** - हे गौतम ! **अयं** - यह, **साहस्सिओ** - साहसिक और, **भीमो** - भयानक, **दुट्ठस्सो** - दुष्ट अश्व (घोड़ा) **परिधावइ** - चारों ओर भागता फिरता है, **जंसि** - उस पर, **आरूढो** - चढ़े हुए आप, **तेण** - उस घोड़े द्वारा, **कहं ण हीरसि**- उन्मार्ग में क्यों नहीं ले जाये जाते हो अर्थात् वह दुष्ट घोड़ा आपको उन्मार्ग में क्यों नहीं ले जाता ? ।। ५५ ॥

पहावंतं णिगिण्हामि, सुयरस्सीसमाहियं ।
ण मे गच्छइ उम्मग्गं, मग्गं च पडिवज्जइ ॥ ५६ ॥

- गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मुने ! **पहावंतं** - उन्मार्ग की ओर जाते हुए उस दुष्ट घोड़े को, **सुयरस्सीसमाहियं** - श्रुतज्ञान रूपी लगाम से बांध कर, **णिगिण्हामि** - मैं वश कर लेता हूँ । इससे वह, **मे** - मुझे, **उम्मग्गं** - उन्मार्ग में, **ण** - नहीं, **गच्छइ** - ले जाता है, **च** - किन्तु, **मग्गं** - सन्मार्ग में ही, **पडिवज्जइ** - प्रवृत्ति कराता है ॥ ५६ ॥

आसे य इइ के वुत्ते ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ५७

- **केसी** - केशीकुमार श्रमण, **गोयमं** - गौतम

इइ – इस प्रकार, **अब्बवी** – पूछने लगे कि, **आसे** – अश्व वह घोड़ा, **के** – कौन-सा, **वुत्ते** – कहा गया है ? **एवं** – इस प्रकार, **बुवंतं** – प्रश्न करते हुए, **केसिं** – केशीकुमार श्रमण से, **गोयमो** - गौतम स्वामी, **इणं** – इस प्रकार, **अब्बवी** – कहने लगे ॥ ५७ ॥

मणो साहस्सिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावइ ।
तं सम्मं तु णिगिण्हामि, धम्मसिक्खाइ कंथगं ॥

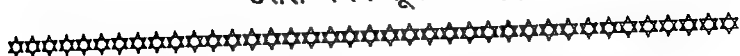
– **मणो** – मन रूपी **साहस्सिओ** – साहसिक और, **भीमो** - भयानक, **दुट्ठस्सो** – दुष्ट अश्व-दुष्ट घोड़ा, **परिधावइ** – चारों ओर भागता रहता है । जिस प्रकार, **कंथगं** – जातिवान घोड़ा शिक्षा द्वारा सुधर जाता है, उसी प्रकार **तं** – इस मन रूपी घोड़े को, **सम्मं** – सम्यक् प्रकार से, **धम्मसिक्खाइ** – धर्म की शिक्षा द्वारा, **णिगिण्हामि** – मैं वश में रखता हूँ ॥ ५८ ॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥

– अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ॥ ५९ ॥

कुप्पहा बहवो लोए, जेहिं णासंति जंतवो ।
अद्धाणे कहं वट्टंतो, तं ण णाससि गोयमा ? ॥ ६० ॥

आठवाँ प्रश्नः– **लोए** – लोक में, **बहवे** – बहुत-से **कुप्पहा**- कुपथ-कुमार्ग हैं, **जेहिं** – जिनसे, **जंतुणो** – प्राणी, **णासंति** - सुमार्ग से नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं । **गोयमा** – हे गौतम ! **अद्धाणे** - सुमार्ग में, **वट्टंतो** – रहे हुए, **तं** – आप, **कहं** – कैसे, **ण णाससि**- सुमार्ग से नष्ट-भ्रष्ट नहीं होते हो ? ॥ ६० ॥



जे य मग्गेण गच्छंति, जे य उम्मग्ग-पट्ठिया ।
ते सव्वे वेइया मज्झं, तो ण णस्सामहं मुणी ॥६१॥

– गौतम स्वामी कहते हैं कि **जे** – जो **मग्गेण** – सुमार्ग से, **गच्छंति** – जाते हैं, **य** – और, **जे** – जो, **उम्मग्ग पट्ठिया** – उन्मार्ग में प्रवृत्ति करते हैं, **ते सव्वे** – उन सब को, **मज्झं** – मैने, **वेइया** – जान लिया है, **तो** – इसलिए, **मुणी** – हे मुने ! **अहं** – मैं, **ण णस्सं** – सुमार्ग से नष्ट-भ्रष्ट **ण** – नहीं होता हूँ॥ ६१ ॥

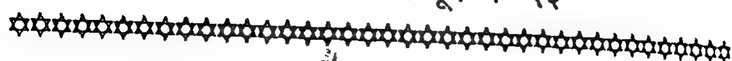
मग्गे य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥६२॥

– **केसी** – केशीकुमार श्रमण, **गोयमं** – गौतम स्वामी से, **इइ** – इस प्रकार, **अब्बवी** – पूछने लगे कि, **मग्गे** – वह सुमार्ग और कुमार्ग, **के** – कौन-सा, **वुत्ते** – कहा गया है, **एवं** –इस प्रकार, **बुवंतं** – प्रश्न करते हुए, **केसिं** – केशीकुमार श्रमण से, **गोयमो** – गौतम स्वामी, **इणं** – इस प्रकार, **अब्बवी** – कहने लगे ॥ ६२ ॥

कुप्पवयण-पासंडी, सव्वे उम्मग्ग-पट्ठिया ।
सम्मग्गं तु जिणक्खायं, एस मग्गे हि उत्तमे ॥६३॥

– **कुप्पवयणपासंडी** – जो कुप्रवचन को मानने वाले पाखण्डी लोग हैं, **सव्वे** – वे सभी, **उम्मग्गपट्ठिया** – उन्मार्ग में प्रवृत्ति करने वाले हैं । **जिणक्खायं** – जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्ररूपित मार्ग ही, **सम्मग्गं** – सन्मार्ग है । इसलिए, **एस** – यह, **मग्गे** – मार्ग, **हि** – ही, **उत्तमे** – उत्तम है ॥ ६३ ॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥



– अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ॥ ६४ ॥

महा-उदगवेगेण, वुज्झमाणाण पाणिणं ।
सरणं गई पइट्ठा य, दीवं कं मण्णसि मुणी ? ॥ ६५ ॥

– नौवां प्रश्नः– केशीकुमार श्रमण पूछते हैं कि, **मुणी** - हे मुने! **महाउदगवेगेण** – पानी के महान् प्रवाह द्वारा, **वुज्झमाणाण**- वाह्यमान–बहाये जाते हुए, **पाणिणं** – प्राणियों के लिए, **सरणं** - शरण रूप, **य** – तथा, **गई** – गति रूप और, **पइट्ठा** – प्रतिष्ठा रूप अर्थात् दुःख से पीड़ित प्राणी जिसका आश्रय ले कर सुख पूर्वक रह सकें ऐसा, **दीवं** – द्वीप आप, **कं** – किसे, **मण्णसि** - मानते हैं ॥ ६५ ॥

अत्थि एगो महादीवो, वारिमज्झे महालओ ।
महाउदगवेगस्स, गई तत्थ ण विज्जइ ॥ ६६ ॥

– **वारिमज्झे** – पानी (समुद्र) के मध्य में, **महालओ** - ऊँचा एवं विस्तृत, **एगो** – एक, **महादीवो** – महाद्वीप, **अत्थि**- है, **तत्थ** – उस पर, **महाउदगवेगस्स** – पानी के महान् प्रवाह की, **गई** – गति, **ण विज्जइ** – नहीं है अर्थात् उस महाद्वीप में जल का प्रवेश नहीं हो सकता ॥ ६६ ॥

दीवे य इइ के वुत्ते ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ६७ ॥

– **केसी** – केशीकुमार श्रमण, **गोयमं** – गौतम स्वामी से, **इइ**- इस प्रकार, **अब्बवी** – पूछने लगे कि, **दीवे** – वह द्वीप, **के** - कौन-सा **वुत्ते** – कहा गया है ? **एवं** – उपरोक्त प्रकार से, **बुवंतं** -

प्रश्न करते हुए, **केसिं** - केशीकुमार श्रमण से, **गोयमो** - गौतम स्वामी, **इणं** - इस प्रकार, **अब्बवी** - कहने लगे ॥ ६७ ॥

जरामरणवेगेणं, वुज्झमाणाण पाणिणं ।

धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं ॥ ६८ ॥

- **जरामरणवेगेणं** - जरा (बुढापा) और मरण के वेग से, **वुज्झमाणाण**- प्रवाहित होते हुए, **पाणिणं** - प्राणियों के लिए **धम्मो** - धर्म रूपी, **दीवो** - द्वीप है, **गई** - वह गति रूप है य - और, **उत्तमं** - उत्तम, **सरणं** - शरण रूप है तथा, **पइट्ठा** - प्रतिष्ठा रूप है अर्थात् धर्म ही एक ऐसा द्वीप है जिसका आश्रय ले कर प्राणी संसार रूपी समुद्र से पार हो सकते हैं ॥ ६८ ॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।

अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥

- अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ॥ ६९ ॥

अण्णवंसि महोहंसि, णावा विपरिधावइ ।

जंसि गोयम आरूढो, कहं पारं गमिस्ससि ? ॥७०॥

- दसवाँ प्रश्नः- **महोहंसि** - महाओघ अर्थात् महाप्रवाह वाले, **अण्णवंसि** - अर्णव-समुद्र में, **णावा** - एक नौका, **विपरिधावइ**- विपरीत दिशा में - इधर-उधर जा रही **है** । **गोयम** - हे

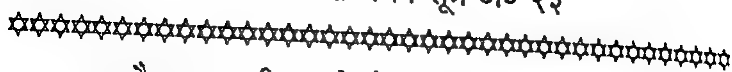
- के

जंसि - उस पर, **आरूढो** - चढ़े

पार, **गमिस्ससि** - जाओगे ? ॥ ७

जा उ अस्साविणी

जा णिरस्साविणी



– गौतम स्वामी कहते हैं कि, **जा** – जो, **णावा** – नौका, **अस्साविणी** –आस्रव (छिद्रों) वाली होती है, **सा** – वह, **उ** – कभी, **पारस्स गामिणी** – पार ले जाने वाली, **ण** – नहीं होती, अपितु वह स्वयं समुद्र में डूब जाती है और उसमें बैठे हुए मनुष्यों को भी डूबा देती है किन्तु, **जा** – जो, **णावा** – नौका, **णिरस्साविणी**– निर्आस्रव छिद्रों रहित है, **सा** – वह, **उ** – अवश्य ही, **पारस्स गामिणी** – पार ले जाने वाली होती है ॥७१ ॥

णावा य इइ का वुत्ता ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥७२ ॥

– **केसी** – केशीकुमार श्रमण, **गोयमं** – गौतम स्वामी से, **इइ** – इस प्रकार, **अब्बवी** – पूछने लगे कि, **णावा** – वह नौका, **का** – कौन–सी, **वुत्ता** – कही गई है ? **एवं** – उपरोक्त प्रकार से, – प्रश्न करते हुए, **केसिं** – केशीकुमार श्रमण से, **गोयमो** - स्वामी, **इणं** – इस प्रकार, **अब्बवी** – कहने लगे ॥७२ ॥

सरीरमाहु णावत्ति, जीवो वुच्चइ णाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो ॥७३॥

– तीर्थंकर देव ने, **सरीरं** – इस शरीर को, **णावा** – नौका, **आहु** – कही है और, **जीवो** – जीव, **णाविओ** – नाविक-नौका को चलाने वाला, **वुच्चइ** – कहा जाता है तथा, **संसारो** – संसार, **अण्णवो** – अर्णव–समुद्र, **वुत्तो** – कहा गया है, **जं**-जिसे, **महेसिणो**– महर्षि लोग, **तरंति** – तिर कर पार हो जाते हैं ॥७३॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥



- अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ॥ ७४ ॥

अंधयारे तमे घोरे, चिट्ठंति पाणिणो बहू ।
को करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोयम्मि पाणिणं ॥

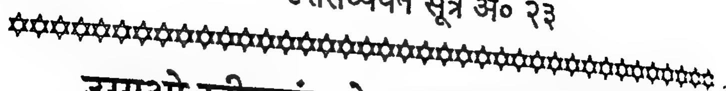
ग्यारहवाँ प्रश्न-**अंधयारे**-जहाँ आँखों की प्रवृत्ति रुक जाने से पुरुष अन्धे के समान बन जाता है ऐसे, **घोरे** - घोर, **तमे**-अन्धकार में, **बहू**-बहुत-से, **पाणिणो**-प्राणी, **चिट्ठंति**-रहते हैं । **पाणिणं**-उन प्राणियों के लिए, **सव्वलोयम्मि**-सम्पूर्ण लोक में, **को**-कौन, **उज्जोयं**-उद्योत (प्रकाश) **करिस्सइ**-करेगा ? ॥ ७५ ॥

उग्गओ विमलो भाणू, सव्वलोय-पभंकरो ।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोयम्मि पाणिणं ॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि, **सव्वलोयपभंकरो** - सम्पूर्ण लोक में प्रकाश करने वाला एक, **विमलो** - निर्मल, **भाणू** - भानु-सूर्य, **उग्गओ**- उदय हुआ है, **सो** - वह, **पाणिणं** - प्राणियों के लिए, **सव्वलोयम्मि** - सारे लोक (संसार) में, **उज्जोयं** - उद्योत, **करिस्सइ** - करेगा ॥ ७६ ॥

भाणू य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ७७ ॥

- **केसी** - केशीकुमार श्रमण, **गोयमं** - गौतम स्वामी से **इइ** - इस प्रकार, **अब्बवी** - पूछने लगे [illegible] वह स[illegible] **के** - कौन-सा, **वुत्ते** - कहा गया है ? [illegible] प्रकार **बुवंतं** - प्रश्न करते हुए, **केसिं** - के[illegible] गौतम स्वामी, **इणं** - इस प्रकार, [illegible] ॥



उग्गओ खीणसंसारो, सव्वण्णू जिणभक्खरो ।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोयम्मि पाणिणं ॥

– **खीणसंसारो** – क्षीण हो गया है संसार जिसका अर्थात् संसार के मूलभूत कर्मों का क्षय कर देने वाला, **सव्वण्णू** - सर्वज्ञ, **जिणभक्खरो** – जिनेन्द्र भगवान् रूपी भास्कर (सूर्य) **उग्गओ** - उदय हुआ है, **सो** – वह, **पाणिणं** – प्राणियों के लिए, **सव्वलोयम्मि** – सम्पूर्ण लोक में, **उज्जोयं** – उद्योत-प्रकाश, **करिस्सइ** – करेगा ॥ ७८ ॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥

– अर्थ अट्ठाईसवीं गाथा के समान है ॥ ७९ ॥

सारीरमाणसे दुक्खे, बज्झमाणाण पाणिणं ।
खेमं सिव-मणाबाहं, ठाणं किं मण्णसि मुणी ! ॥

– बारहवाँ प्रश्नः – **मुणी** – हे मुने !, **सारीरमाणसे** - शारीरिक और मानसिक, **दुक्खे** – दुःखों से, **बज्झमाणाण** - बाद्धयमान–पीड़ित होते हुए अथवा आकुल–व्याकुल बने हुए, **पाणिणं** – प्राणियों के लिए, **खेमं** – क्षेम रूप **सिवं** – शिव रूप और, **अणाबाहं**– बाधा–पीड़ा रहित, **ठाणं** – स्थान आप, **किं** - कौन–सा, **मण्णसि** – मानते हैं ? ॥ ८० ॥

अत्थि एगं धुवं ठाणं, लोगग्गम्मि दुरारुहं ।
जत्थ णत्थि जरामच्चू, वाहिणो वेयणा तहा ॥ ८१ ॥

– गौतम स्वामी कहते हैं कि, **लोगग्गम्मि** – लोक के

✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡✡

अग्रभाग पर, **एगं** - एक, **धुवं** - ध्रुव (निश्चल), **ठाणं** - स्थान **अत्थि** - है, **जत्थ** - जहाँ **जरा** - बुढ़ापा, **मच्चू** - मृत्यु, **वाहिणो**- व्याधि, **तहा** - तथा, **वेयणा** - वेदना, **णत्थि** - नहीं है किन्तु, **दुरारुहं** - वह स्थान दुरारुह है अर्थात् उस स्थान तक पहुँचना बड़ा कठिन है ॥८१ ॥

ठाणे य इइ के वुत्ते ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥८२ ॥

- **केसी** - केशीकुमार श्रमण, **गोयमं** - गौतम स्वामी से, **इइ** - इस प्रकार, **अब्बवी** - पूछने लगे कि, **ठाणे** - वह स्थान **के** - कौन-सा, **वुत्ते** - कहा गया है ? **एवं** - उपरोक्त प्रकार से, **बुवंतं** - प्रश्न करते हुए, **केसिं** - केशीकुमार श्रमण से, **गोयमो** - गौतम स्वामी, **इणं** - इस प्रकार, **अब्बवी** - कहने लगे ॥८२ ॥

णिव्वाणं ति अबाहं ति, सिद्धी लोगग्गमेव य ।
खेमं सिवं अणाबाहं, जं चरंति महेसिणो ॥८३॥

- गौतम स्वामी केशीकुमार श्रमण से कहते हैं कि हे मुने ! **णिव्वाणं** - निर्वाण, **अबाहं** - अव्याबाध, **सिद्धी**- सिद्धि, **खेमं** - क्षेम, **सिवं** - शिव और **अणाबाहं** - अनाबाध इत्यादि नामों से कहा जाता है, **य** - और वह स्थान, **लोगग्गमेव** - लोकाग्र पर स्थित है, **जं** - उस स्थान को, **महेसिणो** - महर्षि (महात्मा) लोग, **चरंति** - प्राप्त करते हैं ॥

तं ठाणं सासयं वासं, लोगग्गम्मि दुरारुहं ।
जं संपत्ता ण सोयंति, भवोहंतकरा मुणी ।

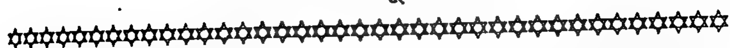
– **तं** – वह, **ठाणं** – स्थान, **सासयं वासं** – आत्मा का शाश्वत वास है, **लोगग्गम्मि** – लोक के अग्रभाग पर स्थित है, **दुरारुहं** – वह दुरारुह है अर्थात् वहाँ पर पहुँचना अत्यन्त कठिन है। **भवोहंतकरा** – नरकादि भवों की परम्परा का अन्त करने वाले **मुणी** – मुनि, **जं** – उस स्थान को, **संपत्ता** – प्राप्त होते हैं और वहाँ पहुँचने पर, **ण सोयंति** – शोक नहीं करते अर्थात् वहाँ पहुँचने के बाद शोक, क्लेश, जन्म, जरा आदि दुःख कभी भी नहीं होते फिर कभी संसार में नहीं आना पड़ता ॥ ८४ ॥

साहु गोयम ! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो ।
णमो ते संसयातीत ! सव्वसुत्तमहोयही ॥ ८५ ॥

– केशीकुमार श्रमण कहने लगे कि, **गोयम** – हे गौतम ! **ते** – आपकी, **पण्णा** – प्रज्ञा-बुद्धि **साहु** – बहुत उत्तम है, आपने, **मे** – मेरे, **इमो** – इन, **संसओ** – संशयों को, **छिण्णो** – छिण्ण-दूर कर दिया है, **संसयातीत** – हे संशयातीत-संशय रहित ! **सव्वसुत्तमहोयही** – हे सर्वसूत्रमहोदधि ! अर्थात् सर्वशास्त्रों के ज्ञाता ! **ते** – आपको, **णमो** – नमस्कार करता हूँ ॥ ८५ ॥

एवं तु संसए छिण्णे, केसी घोरपरक्कमे ।
अभिवंदित्ता सिरसा, गोयमं तु महायसं ॥ ८६ ॥
पंचमहव्वयधम्मं पडिवज्जइ भावओ ।
पुरिमस्स पच्छिमम्मि, मग्गे तत्थ सुहावहे ॥ ८७ ॥

– **एवं** – इस प्रकार, **संसए** – संशय, **छिण्णे** – दूर हो जाने पर, **घोर परक्कमे** – घोर पराक्रम वाले, **केसी** – केशीकुमार श्रमण ने, **महायसं** – महायशस्वी, **गोयमं** – गौतम स्वामी को, **सिरसा** –



शिर से-मस्तक झुकाकर, **अभिवंदित्ता** - वंदना करके (हाथ जोड़ कर तथा शिर झुका कर) **तत्थ** - वहीं तिन्दुक वन में, **पंचमहव्वयधम्मं** - पाँच महाव्रत रूप धर्म को, **भावओ** - भाव पूर्वक, **पडिवज्जइ** - अंगीकार किया और वे, **सुहावहे** - उस सुखकारी, **मग्गे** - मार्ग में विचरण करने लगे जो, **पुरिमस्स पच्छिमम्मि** - प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर देवों के साधुओं के लिए प्ररूपित किया गया है ॥ ८६-८७ ॥

विवेचन - प्रथम तीर्थङ्कर जब मोक्ष चले जाते हैं तब लम्बे समय तक उनकी पाट परम्परा चलती है । जब उनमें केवलज्ञानी नहीं रहते किन्तु छद्मस्थ शिष्यानुशिष्य रहते हैं, उन्हीं दिनों दूसरे तीर्थङ्कर को केवलज्ञान हो जाता है तब उनका - दूसरे तीर्थङ्कर का शासन चलता है । उस समय प्रथम तीर्थङ्कर के साधुओं का दूसरे तीर्थङ्कर अथवा उनके शिष्यों के साथ मिलन होता है तब चर्चा वार्ता होने के बाद वे दूसरे तीर्थङ्कर के शासन में चले जाते हैं । इसी प्रकार तेवीसवें तीर्थङ्कर के साधु साध्वी भी चौबीसवें तीर्थङ्कर के साधुओं के साथ मिलन होने पर चर्चा वार्ता के बाद उनकी शंका का समाधान हो जाने पर वे चौबीसवें तीर्थङ्कर का शासन स्वीकार कर लेते हैं । जैसा कि यहाँ कुमार श्रमण केशी स्वामी ने किया है । यदि पूर्व साधु साध्वी से मिलान न हो तो भी वे आराधक ही होते ... ए केवलज्ञानी होकर मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं । ... भी मान कषाय आदि के कारण दूसरे तीर्थङ्कर ... न करें तो विराधक भी बन जाते हैं ।

केसीगोयमओ णिच्चं, तम्मि आसी समागमे।
सुय-सील-समुक्कसो, महत्थत्थ-विणिच्छओ॥

- **तम्मि** - उस तिन्दुक उद्यान में, **केसीगोयमओ** - केशीकुमार श्रमण और गौतम स्वामी का जो, **णिच्चं** - नित्य, **समागमे** - समागम, **आसी** - हुआ, **सुयसील समुक्कसो** - श्रुतशील-समुत्कर्ष-उससे श्रुत और चारित्र की वृद्धि करने वाले, **महत्थत्थविणिच्छओ**- महार्थार्थ-महान् पदार्थों का निर्णय हुआ ॥ ८८ ॥

विवेचन - श्री केशीकुमार श्रमण और उनके शिष्य तथा श्री गौतम स्वामी और उनके शिष्य जब तक श्रावस्ती नगरी में रहे तब तक नित्य प्रति उनका समागम (मिलन) होता रहा।

तोसिया परिसा सव्वा, सम्मग्गं समुवट्ठिया।
संथुया ते पसीयंतु, भयवं केसीगोयमे ॥८९त्तिबेमि।

- **सव्वा** - सर्व देव, असुर और मनुष्यों से युक्त यह सारी **परिसा** - सभा, **तोसिया** - अत्यन्त संतुष्ट हुई और सभी, **सम्मग्गं** - सन्मार्ग में, **समुवट्ठिया** - प्रवृत्त हुए तथा, **ते** - वे सभी, **संथुया** - स्तुति करने लगे कि, **भयवं (भगवं)** - भगवान्, **केसी-गोयमे** - केशी कुमार और गौतम स्वामी, **पसीयंतु** - सदा प्रसन्न रहें एवं जयवंत रहें। कुमार श्रमण केशीस्वामी और गौतम स्वामी दोनों महापुरुष कर्म क्षय कर मोक्ष पधार गये हैं ॥ ८९ ॥ **त्तिबेमि** - ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ तेईसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

'प्रवचन माता' चौवीसवाँ अध्ययन

अट्ठ पवयण-मायाओ, समिई गुत्ती तहेव य ।
पंचेव य समिईओ, तओ गुत्तीउ आहिया ॥ १ ॥

- समिई - समिति, **तहेव य** - और, **गुत्ती** - गुप्ति, **अट्ठ** - ये आठ, **पवयणमायाओ** - प्रवचन-माता हैं । **समिईओ** - समितियाँ, **पंचेव** - पाँच, **य** - और, **गुत्तीउ** - गुप्तियाँ, **तओ** - तीन, **आहिया** - कही गई हैं ॥ १ ॥

ईरिया-भासे-सणादाणे, उच्चारे समिई इय ।
मणगुत्ती वयगुत्ती, कायगुत्ती य अट्ठमा ॥ २ ॥

- ईरियाभासेसणादाणे - ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदानभंडमात्र-निक्षेपणा समिति, **य** - और, **उच्चारे** - उच्चार-प्रस्त्रवण-जल्ल-मल-सिंघाण-परिस्थापनिका समिति, **इय** - ये पाँच, **समिई** - समितियाँ हैं, **मणगुत्ती** - मन गुप्ति, **वयगुत्ती** - वचनगुप्ति, **य** - और, **कायगुत्ती** - कायगुप्ति, **अट्ठमा** - आठवीं है । ये आठ प्रवचन माताएँ हैं ॥ २ ॥

मायं – समाया हुआ है, इसलिए ये 'प्रवचन-माता' कहलाती हैं। ॥ ३ ॥ ये आठ समितियाँ यहाँ संक्षेप से बतलाई गई है। शास्त्र विधि के अनुसार आत्मा की प्रवृत्ति गुप्तियों में भी है। इसलिये शास्त्रकार ने यहाँ समिति शब्द से गुप्तियों को भी ग्रहण कर लिया है। इसलिये आठ समिति कही गई है। तीर्थङ्कर भगवान् द्वारा प्रतिपादित द्वादशांग रूप प्रवचन का इन समितियों में अन्तर्भाव हो जाता है। क्योंकि समिति गुप्ति चारित्र रूप है और जहाँ चारित्र है वहां सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन अवश्य है। अतः ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप द्वादशांग का समिति गुप्ति में अन्तर्भाव हो जाता है ऐसा कहा गया है। जिसमें समावेश हो जाता है वह माता कहलाती है। द्वादशाङ्ग का इसमें समावेश हो जाने से समिति गुप्ति को प्रवचन की माता कहा है।

आलंबणेण कालेण, मग्गेण जयणाइ य।
चउकारण-परिसुद्धं, संजए ईरियं रिए ॥ ४ ॥

– **आलंबणेण** – आलम्बन, **कालेण** – काल, **मग्गेण** – मार्ग, **य** – और, **जयणाइ** – यतना, **चउकारणपरिसुद्धं** – इन चार कारणों से शुद्ध, **ईरियं** – ईर्यासमिति से, **संजए** – संयत-साधु, **रिए** – गमन करे ॥ ४ ॥

तत्थ आलंबणं णाणं, दंसणं चरणं तहा।
काले य दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पहवज्जिए ॥ ५ ॥

– **तत्थ** – ईर्यासमिति के लिए, **णाणं-दंसणं तहा चरणं** – ज्ञान-दर्शन और चारित्र, **आलंवणं** – आलम्बन है, **काले** – काल, **दिवसे** – दिवस-दिन, **वुत्ते** – कहा गया है, **य** – और, **मग्गे** –

मार्ग, **उप्पह वज्जिए** - उत्पथ वर्जित (सुमार्ग) कहा गया है ॥५॥

विवेचन - ज्ञान दर्शन और चारित्र ईर्यासमिति में आलंबन (कारण) हैं । इन्हीं का आलम्बन लेकर साधु को गमन करना चाहिए । दिवस, ईर्यासमिति का काल है अर्थात् साधु को दिन में ही गमन करना चाहिए । रात्रि में ईर्या शुद्ध नहीं होती । इसलिए रात्रि में साधु को बाहर गमन करने की मनाई है । उत्पथ को छोड़ कर साधु को सुमार्ग से गमन करना चाहिए, क्योंकि कुमार्ग में जाने से संयम की विराधना होने की सम्भावना रहती है ।

दव्वओ खेत्तओ चेव, कालओ भावओ तहा ।
जयणा चउव्विहा वुत्ता, तं मे कित्तयओ सुण ।६ ।

- **दव्वओ** - द्रव्य से, **खेत्तओ** - क्षेत्र से, **तहा** - तथा, **कालओ** - काल से, **चेव** - और, **भावओ** - भाव से, **जयणा** - यतना, **चउव्विहा**- चार प्रकार की, **वुत्ता** - कही गई है, **तं** - उनका, **मे** - मैं, **कित्तयओ** - कीर्तन-वर्णन करूँगा, **सुण** - तुम ध्यानपूर्वक सुनो ॥६॥

दव्वओ चक्खुसा पेहे, जुगमित्तं च खेत्तओ ।
कालओ जाव रीइज्जा, उवउत्ते य भावओ ॥ ७ ॥

- **दव्वओ** - द्रव्य की अपेक्षा, **चक्खुसा** - आँखों से, **पेहे** - जीवादि द्रव्यों को देख कर चले । यह 'द्रव्य उपयोग' क है, **य** - और, **खेत्तओ** - क्षेत्र से, **जुगमित्तं** - युगप्रमाण (भूमि) आगे देख कर चले । यह 'क्षेत्र उपयोग' क ग **कालओ** - काल से, **जाव** - जब तक, **रीइज्जा** - चले अ

तक दिन रहे तब तक यतना पूर्वक चले यह 'काल उपयोग' कहलाता है **य** – और, **भावओ** – भाव से, **उवउत्ते** – उपयोग पूर्वक चले अर्थात् चलते समय अपने उपयोग को ठीक रखना 'भाव उपयोग' कहलाता है ॥ ७ ॥

इंदियत्थे विवज्जित्ता, सज्झायं चेव पंचहा ।
तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे, उवउत्ते रियं रिए ॥ ८ ॥

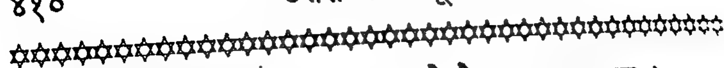
– **इंदियत्थे** – पाँच इन्द्रियों के अर्थों-विषयों को, **चेव** - और, **पंचहा** – पाँच प्रकार की, **सज्झायं** – स्वाध्याय को, **विवज्जित्ता** – वर्ज कर, **तम्मुत्ती** – ईर्यासमिति में अपने शरीर को लगा कर तथा, **तप्पुरक्कारे** – ईर्यासमिति को ही प्रधान मान कर साधु, **उवउत्ते** – उपयोगपूर्वक, **रियं रिए** – ईर्यासमिति से चले अर्थात् चलते समय शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श इन पाँच इन्द्रियों के विषय की ओर ध्यान न देवे और चलते समय वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा रूप पाँच प्रकार की स्वाध्याय में से कोई भी स्वाध्याय नहीं करे, क्योंकि इनमें ध्यान देने से जीवों की यतना भली प्रकार नहीं हो सकती, जिससे जीव-विराधना होने की सम्भावना रहती है । इसलिए चलते समय चलने की क्रिया की ओर ही उपयोग रखे ।

विवेचन – ईर्या समिति के चार कारण बतलाये हैं - आलम्बन, काल, मार्ग और यतना । इनमें से यतना के फिर चार भेद किये हैं – द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव । द्रव्य की अपेक्षा यतना- गंतव्य मार्ग को देखकर के चलना । क्षेत्र से – धूसरा परिमाण अर्थात् चार हाथ जमीन आगे देख कर चलना । काल से – दिन

में देख कर चलना । रात्रि में विहारादि नहीं करना । किन्तु जहाँ रात्रि विश्राम किया है वहाँ लघुशंका आदि के लिये जाना पड़े तो शरीर को वस्त्र से अच्छी तरह आच्छादित कर रजोहरण से भूमि को पूंज कर जावे और परठ कर वापिस पूजता हुआ अपने स्थान पर लौट जाय । भाव से उपयोग पूर्वक चले । आलम्बन में ज्ञान दर्शन चारित्र की वृद्धि और रक्षा हो तो चले, यह तीर्थङ्कर भगवान् की आज्ञा है । इसके २७ भंग बनते हैं – यथा –

१. ज्ञान २. दर्शन ३. चारित्र ४. ज्ञान दर्शन ५. ज्ञान चारित्र ६. दर्शन चारित्र ७. ज्ञान दर्शन चारित्र ८. आचार्य महाराज आदि की वैयावृत्य के लिये तथा ९. आचार्य महाराज आदि जहाँ जाने की आज्ञा प्रदान करे वहाँ काल, मार्ग और यतनापूर्वक जावे इन नौ भङ्गों को मन, वचन और काया इन तीन से गुणा (९×३=२७) करने पर २७ भंग बन जाते हैं ।

दूसरी तरह से २७ भंग इस प्रकार होते हैं । १. ज्ञान २. दर्शन ३. चारित्र ४. ज्ञान दर्शन ५. ज्ञान चारित्र ६. दर्शन चारित्र ७. ज्ञान दर्शन चारित्र ८. काल में चलना ९. अकाल में नहीं चलना १०. मार्ग में चलना ११. उन्मार्ग में नहीं चलना १५. शब्द १६. रूप १७. गंध १८. रस १९. स्पर्श २०. वाचना २१. पृच्छना २२. परिवर्तना २३. अनुप्रेक्षा २४. धर्म-कथा ~ वर्ज कर चलना २५. तम्मुत्ती (तन्मूर्ति) ~ समिति में ही लगाना २६. तप्पुरक्कारे (त. को ही प्रधानता देकर चले अर्थात् शरीर चले २७. उपयोग सहित चलना ।



कोहे माणे य मायाए, लोभे य उवउत्तया ।
हासे भए मोहरिए, विकहासु तहेव य ॥ ९ ॥
एयाइं अट्ठ ठाणाइं, परिवज्जित्तु संजए ।
असावज्जं मियं काले, भासं भासिज्ज पण्णवं ॥

– अब भाषासमिति के विषय में कहते हैं:- **कोहे** – क्रोध, **माणे** – मान, **मायाए** – माया, **य** – और, **लोभे** – लोभ, **हासे** – हास्य, **भए** – भय, **मोहरिए** – मौखर्य (वाचालता) **तहेव य** – और, **विकहासु** – विकथाओं में, **उवउत्तया** – उपयुक्त रहना, **एयाइं** – इन, **अट्ठ ठाणाइं** – आठ स्थानों (दोषों) को, **परिवज्जित्तु** – त्याग कर, **पण्णवं** – बुद्धिमान, **संजए** – संयत-साधु, **काले** – समय पर, **असावज्जं** – निरवद्य और, **मियं** – परिमित, **भासं** – भाषा, **भासिज्ज** – बोले अर्थात् उपरोक्त क्रोधादि आठ दोषों को छोड़ कर समय पर हित-मित और पाप-रहित निर्दोष भाषा बोले ॥ ९-१० ॥

गवेसणाए गहणे य परिभोगेसणा य जा ।
आहारोवहि-सेज्जाए, एए तिण्णि विसोहए ॥ ११ ॥

– अब एषणासमिति के विषय में कहते हैं :- **आहारोवहि सेज्जाए** – आहार, उपधि और शय्या की, **गवेसणाए** – गवेषणैषणा, **य** – और, **गहणे** – ग्रहणैषणा, **य** – तथा, **परिभोगेसणा** – परिभोगैषणा (ग्रासैषणा) **एए** – ये प्रत्येक की, **जा** – जो, **तिण्णि**- तीन-तीन एषणाएँ हैं, **विसोहए** – उनकी विशुद्धि को अर्थात् गवेषण, ग्रहण और ग्रास (परिभोग) सम्बन्धी दोषों से अदूषित आहार, विशुद्ध आहार, पानी, रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि उपधि और शय्या, पाट, पाटलादि का ग्रहण करना एषणासमिति है ॥ ११ ॥



उग्गमुप्पायणं पढमे, बीए सोहेज्ज एसणं ।

परिभोयम्मि चउक्कं, विसोहेज्ज जयं जई ॥ १२ ॥

- **जयं** - यतनावान्, **जई** - यति-साधु, **पढमं** - पहली गवेषणैषणा में, **उग्गमुप्पायणं** - उद्गम के १६ और उत्पादन के १६ दोषों की और, **बीए** - दूसरी ग्रहणैषणा में, **एसणं** - एषणा के शंकितादि दस दोषों की, **सोहेज्ज** - शुद्धि करे तथा, **परिभोयम्मि (परिभोगम्मि)** - परिभोगैषणा में, **चउक्कं** - संयोजना प्रमाण, अंगार धूम और कारण इन चार माँडला के दोषों की, **विसोहेज्ज** - विशुद्धि करे तथा आहार, शय्या, वस्त्र और पात्र इन चारों को उद्गमादि के दोष टाल कर भोगे ॥ १२ ॥

विवेचन - मोहनीय-कर्म के अन्तर्गत होने के कारण अंगार और धूम इन दोनों दोषों को यहाँ एक ही गिना गया है । इन दोनों को पृथक् गिनने से माँडला के पाँच दोष होते हैं । यथा- (१) संयोजना (२) प्रमाण (३) अंगार (४) धूम (५) कारण ।

साधु साध्वी अपने स्थान पर एक जगह बैठ कर आहार करते हैं उसको मंडल (माण्डला) कहते हैं । आहार करते समय जो दोष लगते हैं उनको मांडला के दोष कहते हैं । ४२ दोष टाल कर जो शुद्ध आहार मिला है उनको इन पांच दोषों से दूषित नहीं करना चाहिये । आहार की तरह शय्या-उपाश्रय, वस्त्र और पात्र भी ४२ दोष टालकर ही काम में लेना चाहिये ।

ओहोवहोवग्गहियं, भंडयं ु ।

गिण्हंतो णिक्खिवंतो य, व हे

- अब आदानभंड मात्र-निक्षे के वि

कहते हैं - **ओहोवहोवग्गहियं** - अ ओ

उपधि **दुविहं** - इन दोनों प्रकार की उपधि तथा, **भंडयं** - भंडोपकरण को, **गिण्हंतो** - ग्रहण करता हुआ, **य** - और, **णिक्खिवंतो** - रखता हुआ, **मुणी** - मुनि, **इमं** - इस, **विहिं** - विधि का, **पउंजेज्ज** - प्रयोग करे ॥ १३ ॥

विवेचन - जो सदैव पास रखी जाती है, वह 'ओघ उपधि' कहलाती है । यथा - रजोहरण वस्त्र-पात्र आदि । जो संयम-रक्षार्थ थोड़े समय के लिए ग्रहण की जाती है वह 'औपग्रहिक' उपधि कहलाती है । जैसे - पाट-पाटला शय्या आदि ।

चक्खुसा पडिलेहित्ता, पमज्जेज्ज जयं जई ।
आइए णिक्खिवेज्जा वा, दुहओ वि समिए सया ॥

- **समिए** - समितिवन्त, **जई** - यति-साधु, **सया** - सदैव, - यतनापूर्वक, **चक्खुसा** - आँखों से, **पडिलेहित्ता** - देख [illegible]र, **पमज्जेज्ज** - प्रमार्जन कर के, **दुहओ वि** - दोनों [illegible] की उपधि को, **आइए** - ग्रहण करे, **वा** - तथा, [illegible]ज्जा - रखे ॥ १४ ॥

उच्चारं पासवणं, खेलं सिंघाण-जल्लियं ।
आहारं उवहिं देहं, अण्णं वा वि तहाविहं ॥ १५ ॥

पाँचवी परिस्थापनिका समिति कहते हैं, **उच्चारं** - बड़ीनीत (विष्ठा), **पासवणं** - प्रस्रवण - लघुनीत (मूत्र), **खेलं** - खंखार, **सिंघाण** - नाक का मैल, **जल्लियं** - शरीर का मैल, **आहारं** - जिस आहार को कारण वश परठना पड़े वैसा विष मिश्रित आहार, **उवहिं** - जीर्ण वस्त्रादि उपधि, **देहं** - मृत शरीर, **वा वि** - अथवा, **तहाविहं** - इसी प्रकार की, **अण्णं** - अन्य कोई वस्तु जो परठने



योग्य हो, इन सब को यतनापूर्वक दस विशेषणों वाले स्थण्डिल में परठे ॥ १५ ॥

अणावायमसंलोए, अणावाए चेव होइ संलोए ।
आवायमसंलोए, आवाए चेव संलोए ॥ १६ ॥

- कैसे स्थण्डिल में परठना चाहिए ? इसके लिए प्रथम बोल के चार भांगे करके बतलाये जाते हैं :- **अणावायमसंलोए** - १ - जहाँ कोई आता जाता भी न हो और देखता भी न हो, **चेव** - और, **अणावाए होइ संलोए** - २ - जहाँ आता जाता तो कोई नहीं किन्तु दूर खड़ा हुआ देखता हो, **आवायमसंलोए** - ३ - जहाँ कोई आता जाता तो है, परन्तु देखता नहीं, **चेव** - और, **आवाए संलोए** - ४ - जहाँ कोई आता जाता भी है और देखता भी है । ये चार भंग हैं । इनमें पहला भंग शुद्ध है । शेष तीन भंग अशुद्ध हैं ॥ १६ ॥

अणावायमसंलोए, परस्सऽणुवघाइए ।
समे अज्झुसिरे यावि, अचिर-कालकयम्मि य ॥
वित्थिण्णे दुरमोगाढे, णासण्णे बिलवज्जिए ।
तसपाण-बीयरहिए, उच्चाराईणि वोसिरे ॥

- अब स्थण्डिल के दस विशेषण कहे - परस्स

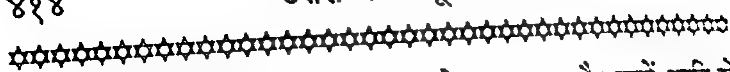
दूसरों का, **अणावायमसंलोए** - १ -

वाले किसी का आना-जाना न हो पड़ती

अणुवघाइए- २ - जहाँ संयम की

विराधना न हो तथा आत्मा की और

समे - ३ - जहाँ ऊंची-नीची भूमि न



अज्झुसिरे – ४ – जहाँ पोलार न हो या घास और पत्तों आदि से ढंकी हुई न हो अर्थात् साफ खुली हुई भूमि हो, **यावि** – और, **अचिर काल कयम्मि** – ५ – जो भूमि दाह आदि से थोड़े काल पहले अचित्त हुई हो, **वित्थिण्णे** – ६– जो भूमि विस्तृत हो अर्थात् कम से कम एक हाथ लम्बी चौड़ी हो, **दूरमोगाढ़े** – ७ – जहाँ कम से कम चार अंगुल नीचे तक भूमि अचित्त हो, **ण आसण्णे** – ८ – जहाँ गांव बगीचा आदि अति निकट न हो, **बिलवज्जिए** – ९– जहाँ चूहे आदि का बिल न हो, **तसपाण बीयरहिए** – १० – जहाँ बेइन्द्रियादि त्रस जीव तथा शालि आदि बीज न हों । इन दस विशेषणों वाले स्थण्डिल में **उच्चाराईणि** – मल-मूत्रादि का, **वोसिरे** – त्याग करे ॥ १७-१८ ॥

एयाओ पंच समिईओ, समासेण वियाहिया ।
इत्तो य तओ गुत्तीओ, वोच्छामि अणुपुव्वसो ॥

– **एयाओ** – ये, **पंच** – पाँच, **समिईओ** – समितियाँ, – संक्षेप से, **वियाहिया** – कही गई हैं । **इत्तो** – अब इसके पश्चात्, **तओ** – तीन, **गुत्तीओ** – गुप्तियों का, **अणुपुव्वसो**- अनुक्रम से, **वोच्छामि (वुच्छामि)** – वर्णन करूँगा ॥ १९ ॥

सच्चा तहेव मोसा य, सच्चामोसा तहेव य ।
चउत्थी असच्चमोसा य, मणगुत्ती चउव्विहा ॥

– **सच्चा** – सत्या, **य** – और, **मोसा** – मृषा, **तहेव** – तथा, **सच्चामोसा** – सत्यामृषा, **तहेव य** – और, **चउत्थी** – चौथी, **असच्चमोसा** – असत्यामृषा । इस प्रकार, **मणगुत्ती** – मनोगुप्ति, **चउव्विहा** – चार प्रकार की कही गई है ।। २० ॥



संरंभ-समारंभे, आरंभे य तहेव य ।
मणं पवत्तमाणं तु, णियत्तेज्ज जयं जई ॥ २१ ॥

- **संरंभसमारंभे** - संरंभ और समारम्भ में, **तहेव य** - और, **आरंभे** - आरम्भ में, **पवत्तमाणं** - प्रवृत्ति करते हुए, **मणं** - मन को, **जई**- यति-साधु, **जयं**- यतनापूर्वक, **णियत्तेज्ज**- हटा लेवे ॥२१॥

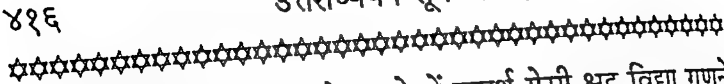
विवेचन - संरंभ अर्थात् मानसिक संकल्प, जैसे - 'मैं ऐसा ध्यान करूँगा जिससे वह मर जायगा' । मानसिक ध्यान द्वारा दूसरे को पीड़ा पहुँचाना या उच्चाटन आदि करने वाला ध्यान करना मन-समारम्भ है । मानसिक ध्यान द्वारा दूसरे के प्राणों को अत्यन्त क्लेश पूर्वक हरण करना मन-आरम्भ है । इन अशुभ संकल्पों से मन को हटाना चाहिए ।

सच्चा तहेव मोसा य, सच्चामोसा तहेव य ।
चउत्थी असच्चमोसा य, वयगुत्ती चउव्विहा ॥

- **सच्चा** - सत्या, **य** - और, **मोसा** - मृषा, **तहेव** - तथा, **सच्चामोसा** - सत्यामृषा, **तहेव य** - और, **चउत्थी** - चौथी, **असच्चमोसा** - असत्यामृषा । इस प्रकार **वयगुत्ती** - वचनगुप्ति, **चउव्विहा** - चार प्रकार की कही गई है ॥ २२ ॥

संरंभ-समारंभे, आरंभे य तहेव य ।
वयं पवत्तमाणं तु, णियत्तेज्ज जयं जई ॥ २३ ॥

- **संरंभसमारंभे** - संरंभ और समारम्भ में, और, **आरंभे** - आरम्भ में, **पवत्तमाणं** - **वयं** - वचन को, **जई** - यति-साधु, **जयं** - हटा लेवे ॥ २३ ॥



विवेचन - दूसरों को मारने में समर्थ ऐसी क्षुद्र विद्या गुणने के संकल्प को सूचित करने वाला शब्द बोलना वचन-संरंभ है । दूसरों को पीड़ा करने वाला मन्त्र गुणने को उद्यत होना वचन-समारम्भ है । प्राणियों के प्राणों का अत्यन्त क्लेशपूर्वक नाश करने में समर्थ मन्त्रादि गुणना वचन-आरम्भ है । संरंभ आदि में प्रवृत्ति करने वाले वचन को साधु यतना से रोके ।

ठाणे णिसीयणे चेव, तहेव य तुयट्टणे ।
उल्लंघणे पल्लंघणे, इंदियाण य जुंजणे ॥ २४ ॥

ठाणे - खड़े रहने में, **णिसीयणे** - बैठने में, **चेव** - और, **तुयट्टणे** - सोने में, **तहेव य** - तथा **उल्लंघणे** - किसी कारण ऊंची भूमि तथा खड्डे आदि के उल्लंघन में, **पल्लंघणे** - बार बार उल्लंघन करने में तथा सीधे चलने में, **य** - और, **इंदियाण** - इन्द्रियों के, **जुंजणे** - शब्दादि में प्रवृत्ति करने में साधु यतना पूर्वक काय-गुप्ति करे ॥ २४ ॥

संरंभ-समारंभे, आरंभे य तहेव य ।
कायं पवत्तमाणं तु, णियत्तेज्ज जयं जई ॥ २५ ॥

संरंभसमारंभे - संरम्भ और समारंभ में, **तहेव य** - और, **आरंभे** - आरम्भ में, **पवत्तमाणं** - प्रवृत्ति करती हुई, **कायं** - काया को, **जई** - साधु, **जयं** - यतनापूर्वक, **णियत्तेज्ज** - हटा लेवे ॥ २५ ॥

विवेचन - किसी प्राणी को लकड़ी आदि से पीटने के लिए तैयार होना काय-संरम्भ है । दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के लिए लकड़ी आदि का प्रहार करना कायसमारम्भ है । किसी प्राणी का

वध करने के लिए प्रवृत्ति करना काय-आरम्भ हैं । इन कार्यों में प्रवृत्त होते हुए अपने शरीर (काया) को साधु रोके ।

एयाओ पंच समिईओ, चरणस्स य पवत्तणे ।
गुत्ती णियत्तणे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो ॥ २६ ॥

- **एयाओ** - ये उपरोक्त, **पंच** - पाँच, **समिईओ** - समितियाँ, **चरणस्स** - चारित्र की, **पवत्तणे** - प्रवृत्ति के लिए, **वुत्ता**- कही गई हैं, **य** - और, **गुत्ती** - गुप्तियाँ, **असुभत्थेसु** - अशुभ कार्य से, **सव्वसो**- सर्वथा, **णियत्तणे** - निवृत्ति के लिए कही गई हैं ॥ २६ ॥

विवेचन - समिति का प्रयोजन चारित्र में प्रवृत्ति कराना है और गुप्ति का प्रयोजन शुभ और अशुभ सभी प्रकार के व्यापारों से निवृत्ति कराना है अर्थात् मन वचन काया रूप तीनों योगों का सर्वथा निरोध करना गुप्ति का प्रयोजन है । समिति प्रवृत्ति रूप और गुप्ति निवृत्ति रूप है ।

एसा पवयणमाया, जे सम्मं आयरे मुणी ।
सो खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिए ॥ २७ ॥
त्तिबेमि ॥

- **जे** - जो, **मुणी** - मुनि, **एसा** - इन, **पवयणमाया** - आठ प्रवचन माताओं का, **सम्मं** - सम्यक् प्रकार से, **आयरे** - आचरण करता है, **सो** - वह, **पंडिए** - पंडित सा.
संसार के समस्त बन्धनों से, **खिप्पं** - क्षिप्र-
छूट कर मोक्ष को प्राप्त हो जाता है ॥
ऐसा मैं कहता हूँ ।

॥ चौबीसवाँ . .

यज्ञीय पच्चीसवाँ अध्ययन

वाणारसी (बनारस) नगरी में जयघोष और विजयघोष नामक दो सगे भाई रहते थे । जो काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे । वे दोनों संस्कृत के महान् पंडित थे । अपने सिद्धांत वेद और वेदांगों के ज्ञाता थे । एक दिन जयघोष स्नान करने के लिये गंगा नदी पर गया वहां उसने एक दृश्य देखा । जिसको उसने श्लोक में निबद्ध किया वह इस प्रकार हैं –

भेको धावति तञ्च धावति फणी सर्पं शिखी धावति ।
व्याधो धावति के किनं विधिवशाद् व्याघ्रोऽपि तं धावति।
स्वस्वाहार विहार साधनविधौ सर्वे जना व्याकुलाः ।
कालस्तिष्ठति पृष्ठतः कचधरः केनापि नो दृश्यते ।।

अर्थ – एक मेंढक ने अपने मुख में मक्खी को पकड़ रखी है। वह चीं–चीं करती है फिर भी वह उसे खा रहा है। उसी प्रकार एक सांप ने उस मेंढक को पकड़ रखा है । वह उसे खा रहा है। सांप को एक मयूर (मोर) ने पकड़ रखा है और वह उसे खा रहा है और आधा निगल गयां है । ऐसी स्थिति में भी सांप मेंढक को, और मेंढक मक्खी को नहीं छोड़ रहा है। इधर एक शिकारी आया वह मोर को मारने के लिये धनुष पर बाण चढा रहा है। उधर जंगल से एक शेर पानी पीने के लिये आ रहा था ज्यों ही उसने मनुष्य को देखा वह उसे मारने के लिये झपटा। इस दृश्य को देख कर जयघोष बड़ा विचार में पड़ गया कि इस संसार में तो मच्छ गलागल न्याय चल रहा है। सबल व्यक्ति निर्बल को मारना चाहता है। परन्तु यह नहीं देखता कि मृत्यु तो हमारे पीछे लगी



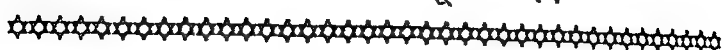
हुई है। केशों को पकड़ रखा है। न मालूम किस समय झटका देकर वह प्राणी को अपना ग्रास बना लेगी। यह दृश्य देख कर जयघोष को संसार की असारता और भयानकता दिखने लगी – हृदय कांप गया इतने में ही विहार कर आते हुए जैन मुनि दिखाई दिये वह उनके पास पहुँचा। विनयपूर्वक प्रणाम किया और अपना देखा हुआ दृश्य उनकी सेवा में निवेदन किया मुनि महात्मा अच्छे ज्ञानी थे । इसलिए अवसर के उचित उसको उपदेश दिया कि,

गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्म माचरेत् ।

अर्थात् बुद्धिमान् का कर्त्तव्य है कि, मानो मृत्यु ने पीछे से केश पकड़ रखे हैं । न मालूम कब वह एक झटका देकर प्राणी को अपना ग्रास बना लेगी ऐसा सोचकर धर्माचरण में विलंब नहीं करना चाहिए । क्योंकि –

एक्को हु धम्मो णरदेव ताणं,
ण विज्जइ अण्णमिहेह किंचि।

अर्थ – माता, पिता, स्त्री, पुत्र, कुटुंब, परिवार इस जीव के लिये कोई भी शरण भूत नहीं होता है । मात्र एक धर्म ही प्राणी के लिये त्राण और शरणरूप है इस प्रकार के धर्म उपदेश से जयघोष को वैराग्य उत्पन्न हो गया और पांच महाव्रत धारण करने रूप जैन दीक्षा अंगीकार कर ली । फिर तप संयम में पुरुषार्थ करने लगे । एक समय विचरते हुए वे बनारस पधारे । उनके मासखमण की तपस्या थी । उस समय उनका सांसारिक छोटा भाई विजयघोष यज्ञ कर रहा था । उसको सद्बोध देने के लिये यज्ञ शाला पहुँचे उनका उसके साथ जो तात्त्विक प्रश्नोत्तर हुये, उनका वर्णन इस अध्ययन में हैं ।



माहण-कुल-संभूओ, आसी विप्पो महाजसो ।
जायाई जम्मजण्णम्मि, जयघोसित्ति णामओ ॥

– **माहण कुल संभूओ** – ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, **महाजसो**- महायशस्वी, **जम्मजण्णम्मि जायाई** – यम-नियम रूप भाव यज्ञ करने वाले, **जयघोसित्ति णामओ** – जयघोष नाम के, **विप्पो** - विप्र-ब्राह्मण, **आसी** – थे ॥ १ ॥

इंदियग्गाम-णिग्गाही, मग्गगामी महामुणी ।
गामाणुगामं रीयंतो, पत्तो वाणारसिं पुरिं ॥ २ ॥

– **इंदियग्गामणिग्गाही** – इन्द्रियों के समूह को वश में रखने वाले, **मग्गगामी** – मोक्ष-मार्ग में प्रवृत्ति करने वाले, **महामुणी** – वे विजयघोष महामुनि, **गामाणुगामं** – ग्रामानुग्राम, **रीयंतो** – विहार करते हुए, **वाणारसिं पुरिं** – वाणारसी नगरी को, **पत्तो** – प्राप्त हुए ॥ २ ॥

वाणारसीए बहिया, उज्जाणम्मि मणोरमे ।
फासुए सिज्जसंथारे, तत्थ वास-मुवागए ॥ ३ ॥

– **तत्थ** – उस, **वाणारसीए** – वाणारसी नगरी के, **बहिया** - बाहर, **फासुए** – प्रासुक, **सिज्जसंथारे** – शय्या-संथारे वाले, **मणोरमे** – एक मनोहर, **उज्जाणम्मि** – उद्यान में, **वासं उवागए** - वास किया अर्थात् ठहरे ॥ ३ ॥

अह तेणेव कालेणं, पुरीए तत्थ माहणे ।
विजयघोसित्ति णामेणं, जण्णं जयइ वेयवी ॥ ४ ॥

– **अह** – अथ इसके बाद, **तेणेव कालेण** – उस समय, **तत्थ**- उस, **पुरीए** – नगरी में, **वेयवी** – वेदवित्-वेद का ज्ञाता,

विजयघोसित्ति णामेणं - विजयघोष नाम का, **माहणे** - एक ब्राह्मण, **जण्णं** - यज्ञ, **जयइ**- करता था ॥४ ॥

अह से तत्थ अणगारे, मासक्खमण-पारणे ।
विजयघोसस्स जण्णम्मि, भिक्खमट्ठा उवट्ठिए ॥५ ॥

- **अह** - अब, **से** - वे जयघोष, **अणगारे** - मुनि, **मासक्खमणपारणे** - मासखमण के पारणे के दिन, **विजयघोसस्स** - विजयघोष ब्राह्मण की, **जण्णम्मि** - यज्ञशाला में, **भिक्खमट्ठा** - भिक्षा के लिए, **उवट्ठिए** - पधारे ॥५ ॥

समुवट्ठियं तहिं संतं, जायगो पडिसेहए ।
ण हु दाहामि ते भिक्खं, भिक्खू ! जायाहि अण्णओ ॥

- **तहिं** - वहाँ, **समुवट्ठियं संतं** - आये हुए भिक्षु को, **पडिसेहए** - निषेध करता हुआ वह विजयघोष कहने लगा कि, **भिक्खू** - हे भिक्षो ! **ते** - तुझे, **भिक्खं ण दाहामि** - मैं भिक्षा नहीं दूँगा, **अण्णओ** - अन्यत्र जा कर, **जायाहि** - याचना करो-भिक्षा माँगो ।

जे य वेयविऊ विप्पा, जण्णट्ठा य जे दिया ।
जोइसंगविऊ जे य, जे य धम्माण-पारगा ॥७ ॥
जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव
तेसिं अण्णमिणं देयं, भो भिक्खू

- **जे** - जो, **विप्पा** - विप्र-ब्राह्मण,
जानने वाले हैं, **य** - और, **जे** - जो,
जण्णट्ठा - यज्ञार्थी (यज्ञ को जानने वा

जो, **जोइसंगविऊ**- ज्योतिष के ज्ञाता हैं अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष इन छह अंगों के जानने वाले हैं, **य** - और, **जे** - जो, **धम्माण** - धर्म के, **पारगा** - पारगामी हैं । **जे** - जो, **परमप्पाणमेव** - अपनी तथा दूसरों की आत्मा का, **समुद्धत्तुं**- उद्धार करने में, **समत्था** - समर्थ हैं । **भो भिक्खू** - हे भिक्षो ! **सव्वकामियं** - सर्वकामित-छह रस वाला, **इणं** - यह, **अण्णं** - अन्न-उत्तम भोजन, **तेसिं** - ऐसे ब्राह्मणों को, **देयं** - देने के लिए है ॥७-८॥

विवेचन - जैन सिद्धान्त में तीखा, कड़वा, कषैला, खट्टा और मीठा, ये पांच रस माने गये हैं । किन्तु साहित्य (हिन्दी व संस्कृत काव्य) में छठा रस और माना गया है वह है-लवण (नमक) । यथा "षष्ठो रसेः लवणः" ।

आचारांग आदि अनेक आगमों में 'रस' पांच प्रकार के बताये हैं। लवण रस को आगमकार स्वतंत्र रस नहीं मान कर 'संयोगी रस' (दो तीन आदि रसों के संयोग से उत्पन्न) एवं सर्वानुगत रस (पांचों रसों में रहा हुआ) मानते हैं अतः लवण रस का पांचों रसों में समावेश हो जाने से छठा 'लवण रस' नहीं माना है। अन्यत्र आगमों में (दशवैकालिक सूत्र अ. ५ उ. १ गाथा ९७) जहाँ छह रस बताये हैं वहाँ अपेक्षा विशेष से उसकी स्वतंत्र विवक्षा समझनी चाहिये। अन्यथा पांच रस ही होते हैं।

मारवाड़ी में लवण (नमक) को 'लूण' कहते हैं इसलिए मारवाड़ी में कहावत है "लूण बिना सब रसोई पूण" अर्थात् जिस रसोई (भोजन) में लूण नहीं हो तो वह रसोई पूण (अधूरी) मानी गई है ।



सो तत्थ एवं पडिसिद्धो, जायगेण महामुणी ।
ण वि रुट्ठो ण वि तुट्ठो, उत्तमट्ठ-गवेसओ ॥ ९ ॥

- **तत्थ** - वहाँ, **जायगेण** - यज्ञ करने वाले विजयघोष द्वारा, **एवं** - इस प्रकार, **पडिसिद्धो** - निषेध कर देने पर, **सो** - वे जयघोष **महामुणी** - महामुनि, **ण वि रुट्ठो** - न रुष्ट हुए और, **ण वि तुट्ठो**- न तुष्ट हुए (उन्होंने समभाव रखा) ॥ ९ ॥

णण्णट्ठं पाणहेउं वा, ण वि णिव्वाहणाय वा ।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए, इमं वयणमब्बवी ॥ १० ॥

- **ण अण्णट्ठं** - वे न तो अन्न के लिए, **वा** - और, **ण पाणहेउं**- न पानी के लिए, **वा** - और, **ण वि णिव्वाहणाय वा**- न निर्वाह के लिए, किन्तु उनका अज्ञान दूर करके, **तेसिं** - उनकी, **विमोक्खणट्ठाए** - मुक्ति के लिए, **इमं** - इस प्रकार, **वयणं** - वचन, **अब्बवी** - कहने लगे ॥ १० ॥

ण वि जाणासि वेयमुहं, ण वि जण्णाण जं मुहं ।
णक्खत्ताण मुहं जं च, जं च धम्माण वा मुहं ॥ ११ ॥
जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ।
ण ते तुमं वियाणासि, अह जाणासि तो भण ॥

- **ण वि** - तुम न तो, **वेयमुहं** - वेदों का मुख, **जाणासि** - जानते हो और, **ण वि** - न तुम, **जण्णाण** - यज्ञों का, **जं** - जो, **मुहं** - मुख है उसे जानते हो, **च** - और, **जं** - जो, **णक्खत्ताण** - नक्षत्रों के, **मुहं** - मुख, **च** - तथा, **जं** - जो, के, **मुहं** - मुख को तुम नहीं जानते अर्थात् वेद, यज्ञ धर्मों में किसे प्रधानता दी गई है तथा इनका क्या

भी तुम नहीं जानते हो, **य** - और, **जे** - जो, **परमप्पाणमेव** - अपनी तथा दूसरों की आत्मा का, **समुद्धत्तुं** - उद्धार करने में **समत्था**- समर्थ हैं, **ते** - उनको भी, **तुमं** - तुम, **ण वियाणासि** - नहीं जानते हो। **अह** - यदि तुम इन सभी बातों को, **जाणासि** - जानते हो, **तो** - तो, **भण** - बताओ ॥ ११-१२ ॥

तस्सक्खेवपमोक्खं च, अचयंतो तहिं दिओ ।
सपरिसो पंजलीहोउं, पुच्छइ तं महामुणिं ॥ १३ ॥

- **तस्सक्खेवपमोक्खं** - मुनि के प्रश्नों का उत्तर देने में, **अचयंतो** - असमर्थ **दिओ** - द्विज, वह विजयघोष ब्राह्मण, **तहिं** - उस यज्ञशाला में, **सपरिसो** - परिषद् सहित (अन्य समस्त ब्राह्मणो के साथ), **पंजलीहोउं** - हाथ जोड़ कर, **तं** - उस, **महामुणिं** - महामुनि से, **पुच्छइ** - पूछने लगा ॥ १३ ॥

वेयाणं च मुहं बूहि, बूहि जण्णाण जं मुहं ।
णक्खत्ताण मुहं बूहि, बूहि धम्माण वा मुहं ॥ १४॥
जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ।
एयं मे संसयं सव्वं, साहू ! कहसु पच्छिओ ॥ १५ ॥

- हे मुने ! **वेयाणं** - वेदों का, **मुहं** - मुख (प्रधान) कौन है उसे, **बूहि** - बताओ और, **जण्णाणं** - यज्ञों का, **जं** - जो, **मुहं**- मुख है उसे, **बूहि** - बताओ तथा, **णक्खत्ताण** - नक्षत्रों का, **मुहं**- मुख कौन है उसे, **बूहि** - बताओ, **वा** - और, **धम्माण** - धर्मों का, **मुहं** - मुख, **बूहि** - बताओ, **य** - और, **जे** - जो, **परमप्पाणमेव** - अपनी और दूसरों की आत्मा का, **समुद्धत्तुं** - उद्धार करने में, **समत्था** - समर्थ हैं वे कौन हैं ?, **मे** - मेरे मन में, **एयं** - यह, **सव्वं** - सभी, **संसयं** - संशय है । इसलिए, **साहू** - हे साधो !



पुच्छिओ - मैं आप से पूछता हूँ, **कहसु** - आप कृपा कर के कहिए ॥ १४-१५ ॥

अग्गिहुत्तमुहा वेया, जण्णट्ठी वेयसां मुहं ।

णक्खत्ताण मुहं चंदो, धम्माणं कासवो मुहं ॥ १६ ॥

- मुनि कहने लगे **वेया** - वेद, **अग्गिहुत्तमुहा** - अग्निहोत्र की मुख्यता वाले हैं, अर्थात् वेदों में अग्निहोत्र प्रधान है । धर्म-ध्यान रूप अग्नि में सद्भावना की आहुति दे कर कर्म रूप ईन्धन का जलाना भाव-अग्निहोत्र है । **जण्णट्ठी** - यज्ञार्थी अर्थात् अशुभ-कर्मों का नाश करने के लिए भाव-यज्ञ करने वाला यज्ञार्थी, **वेयसां** - वेदस्-यज्ञों का, **मुहं** - मुख्य है, **णक्खत्ताण** - नक्षत्रों का, **चंदो**- चन्द्रमा, **मुहं** - मुख्य है और, **धम्माण** - धर्म का, **कासवो**- काश्यप गोत्रीय भगवान् ऋषभदेव, **मुहं** - प्रधान हैं, क्योंकि युग की आदि में अर्थात् इस अवसर्पिणी काल में सर्व प्रथम धर्म की प्ररूपणा इन्हों ने की थी ॥ १६ ॥

जहा चंदं गहाइया, चिट्ठंति पंजलीउडा ।

वंदमाणा णमंसंता, उत्तमं मणहारिणो ॥ १७ ॥

- **जहा** - जिस प्रकार, **गहाइया** - ग्रह-नक्षत्र आदि, **चंदं** - चन्द्रमा के सम्मुख, **पंजलीउडा** - हाथ जोड़ कर, **वंदमाणा** - वंदन और स्तुति करते हुए, **णमंसंता** - नमस्कार करते हुए तथा, **मणहारिणो**- मन को हरण करते हुए, **उत्तमं** - अति विनम्र भाव से **चिट्ठंति** - खड़े रहते हैं, उसी प्रकार इन्द्र, चक्रवर्ती आदि सभी देव और मनुष्य तीर्थंकर भगवान् को विनम्रभाव से करते हैं ॥ १७ ॥

अजाणगा जण्णवाई, विज्जा-माहणसंपया

मूढा सज्झाय-तवसा, भासच्छण्णा ᐧ



– **विज्जामाहण संपया** – ब्रह्म विद्या रूपी ब्राह्मणों की सम्पत्ति को, **अजाणगा** – नहीं जानने वाले, **सज्झायतवसा** – स्वाध्याय और तप के विषय में, **मूढा (गूढा)** – मूढ (अज्ञानी) जण्णवाई - यज्ञ करने वाले ये ब्राह्मण, **भासच्छण्णा अग्गिणो इव** – राख से दबी हुई अग्नि के समान हैं अर्थात् ये ऊपर से शान्त दिखाई देते हैं किन्तु इनका हृदय कषायों से जल रहा है ॥ १८ ॥

जो लोए बंभणो वुत्तो, अग्गीव महिओ जहा ।
सया कुसल-संदिट्ठं, तं वयं बूम माहणं ॥ १९ ॥

– तत्त्वज्ञ पुरुषों द्वारा, **जो** – जो **लोए** – लोक में, **बंभणो** - ब्राह्मण, **वुत्तो** – कहा गया है और जो, **अग्गीव जहा** – अग्नि के समान, **सया** – सदा, **महिओ** – महित-पूजनीय होता है । **कुसल संदिट्ठं**– कुशल सन्दिष्ट तत्त्वज्ञ पुरुषों द्वारा कहे गये, **तं** – उसे, **वयं**- हम, **माहणं** – माहन-ब्राह्मण, **बूम** – कहते हैं ॥ १९ ॥ मा-मत हण–मारो अर्थात्–जीवों को मत मरो, मत मारो ऐसा जो उपदेश देते हैं । उसे 'माहन' कहते हैं । माहन का शब्दार्थ ब्राह्मण होता है तथा जैन मुनि को भी माहन कहते हैं ।

जो ण सज्जइ आगंतुं, पव्वयंतो ण सोयइ ।
रमए अज्जवयणम्मि, तं वयं बूम माहणं ॥ २० ॥

– **जो** – जो पुरुष, **आगंतुं** – स्वजनादि के समीप आने पर, **ण सज्जइ** – उनमें आसक्त नहीं होता है और, **पव्वयंतो** - स्वजनादि से पृथक् हो कर दूसरे स्थान जाता हुआ, **ण सोयइ** - शोक नहीं करता किन्तु, **अज्जवयणम्मि** – आर्य वचन-तीर्थंकर देव के वचनों में, **रमए** – जो रमण करता है **तं** – उसे, **वयं** – हम, **माहणं** – ब्राह्मण, **बूम** – कहते हैं ॥ २० ॥



जायरूवं जहामट्ठं, णिद्धंतमल-पावगं ।
रागद्दोसभयाईयं, तं वयं बूम माहणं ॥ २१ ॥

– **णिद्धंतमलपावगं** – पाप रूपी मल का नाश करके जो, **जहामट्ठं** – कसौटी पर कसे हुए एवं अग्नि में डाल कर शुद्ध किये हुए, **जायरूवं** – जात रूप-सोने के समान निर्मल है और जो, **रागद्दोसभयाईयं** – राग-द्वेष तथा भय से रहित है, **तं**– उसे, **वयं** – हम, **माहणं** – ब्राह्मण, **बूम** – कहते हैं ॥ २१ ॥

तवस्सियं किसं दंतं, अवचिय-मंस-सोणियं ।
सुव्वयं पत्तणिव्वाणं, तं वयं बूम माहणं ॥ २२ ॥

– **तवस्सियं** – उग्र तप का आचरण कर जिसने, **किसं** – अपना शरीर कृश (दुबला-पतला) कर डाला है और. **अवचियमंससोणियं** – रक्त तथा मांस सूखा डाला है, **दंतं** – जिसने पांचों इन्द्रियों का दमन किया है, **पत्तणिव्वाणं** – णिर्वाण प्राप्त-कषायाग्नि को शान्त कर जो, **सुव्वयं** – सुव्रत वाला-श्रेष्ठ व्रत वाला है । **तं** – उसे, **वयं** – हम, **माहणं** – ब्राह्मण, **बूम** – कहते हैं ॥ २२ ॥

तसे पाणे वियाणित्ता, संगहेण य थावरे ।
जो ण हिंसइ तिविहेणं, तं वयं बूम माहणं ॥ २३ ॥

– **जो** – जो, **तसे** – त्रस, **य** – और, **थावरे** – स्थावर, **पाणे**– प्राणियों को, **संगहेण** – संक्षेप से और विस्तार से भली प्रकार, **वियाणित्ता** – जान कर, **तिविहेणं** – तीन करण तीन **योग से, ण हिंसइ** – उनकी हिंसा नहीं करता, **तं** – उसे, **वयं** – –
ब्राह्मण, **बूम** – कहते हैं ॥ २३ ॥

विवेचन – जो त्रस और स्थावर
और काया से हिंसा करता नहीं तथा मन से

करवाता नहीं और हिंसा करने वालों का मन वचन काया से अनुमोदन करता नहीं। वह माहन (मुनि) कहलाता है। यह नवकोटि पच्चक्खाण कहलाता हैं। इस प्रकार तीन करण तीन योग से जीवों की रक्षा रूप दया करने वाला तथा १८ पापों का त्यागी मुनि कहलाता है ।

कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जइ वा भया ।
मुसं ण वयइ जो उ, तं वयं बूम माहणं ॥ २४ ॥

– **कोहा** – क्रोध से, **जइ वा** – अथवा, **हासा** – हास्य से, **लोहा** – लोभ से, **जइ वा** – अथवा, **भया** – भय से **जो** – जो तीन करण तीन योग से, **मुसं** – मृषा-झूठ, **ण वयइ** – नहीं बोलता, **तं** – उसे, **वयं** – हम, **माहणं** – ब्राह्मण, **बूम** – कहते हैं ॥ २४॥

चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं ।
ण गिण्हइ अदत्तं जे, तं वयं बूम माहणं ॥ २५ ॥

– **चित्तमंतं अचित्तं वा** – सचित्त अथवा अचित्त, **वा** - तथा, **अप्पं** – अल्पमूल्य वाली एवं अल्प परिमाण वाली, **जइ वा**- अथवा **बहुं** – बहु मूल्य वाली एवं बहु परिमाण वाली, **अदत्तं** - बिना दी हुई वस्तु को, **जे** – जो तीन करण तीन योग से, **ण गिण्हइ**- ग्रहण नहीं करता है, **तं** – उसको, **वयं** – हम, **माहणं** - ब्राह्मण, **बूम** – कहते हैं ॥ २५ ॥

दिव्व-माणुस्स-तेरिच्छं, जो ण सेवेइ मेहुणं ।
मणसा काय-वक्केणं, तं वयं बूम माहणं ॥ २६ ॥

– **जो** – जो, **मणसा काय वक्केणं** – मन, वचन, काया रूपी तीन योग तीन करण से, **दिव्वमाणुस्स तेरिच्छं** – देव- मनुष्य और तिर्यञ्च सम्बन्धी, **मेहुणं** – मैथुन का, **ण सेवेइ** – सेवन नहीं करता, **तं** – उसे, **वयं** – हम, **माहणं** – ब्राह्मण, **बूम** – कहते हैं ॥ २६ ॥



जहा पोमं जले जायं, णोवलिप्पइ वारिणा ।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥ २७ ॥

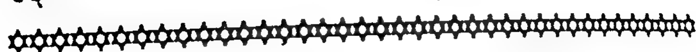
- **जहा** - जिस प्रकार, **जले** - पानी में, **जायं** - उत्पन्न होकर भी, **पोमं** - कमल, **वारिणा** - पानी से, **णोवलिप्पइ** - लिप्त नहीं होता, **एवं** - उसी प्रकार जो पुरुष, **कामेहिं** - काम-भोगों से, **अलित्तं** - लिप्त नहीं होता, **तं** - उसे, **वयं** - हम, **माहणं** - ब्राह्मण, **बूम** - कहते हैं ॥ २७ ॥

अलोलुयं मुहाजीविं, अणगारं अकिंचणं ।
असंसत्तं गिहत्थेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥ २८ ॥

- **अलोलुयं** - जो लोलुपता रहित, **मुहाजीविं** - मुधाजीवी-निस्पृह और निःस्वार्थ भाव से अज्ञात कुल से निर्दोष भिक्षा ग्रहण कर संयम जीवन बिताने वाला, **अकिंचणं** - अकिंचन-परिग्रह-रहित, **गिहत्थेहिं** - गृहस्थों के, **असंसत्तं** - परिचय रहित, **अणगारं**- अनगार है, **तं** - उसको, **वयं** - हम, **माहणं** - ब्राह्मण, **बूम** - कहते हैं ॥ २८ ॥

विवेचन - किसी भी सांसारिक लालसा के बिना साधु साध्वी के संयम पालन में सहायक बनने के लिये जो दाता गोचरी बहराता है उसे 'मुधादायी' कहते हैं । 'यह दाता मुझे अच्छी अच्छी वस्तु देता है इसलिये मैं इसका कुछ उपकार करूँ' ऐसी भावना रखे बिना जो सिर्फ संयम पालन के लिए निःस्वार्थ भाव से भिक्षा लेता है, उसे "मुधाजीवी" कहते हैं ।

जिस घर में यह मालूम नहीं है कि
आज गोचरी के लिये पधारेंगे । ऐसे कुल
हैं । कहाँ है -



मुधादायी मुधाजीवी दुर्लभ इण संसार।
वीर कहे सुण गोयमा, दोनों होवे भव पार॥

जहित्ता पुव्वसंजोगं, णाइसंगे य बंधवे।
जो ण सज्जइ भोगेसु, तं वयं बूम माहणं॥२९॥

– **पुव्वसंजोगं** – पूर्वसंयोग (माता-पितादि के संयोग) को, **य** – और, **णाइसंगे** – सास-ससुर आदि ज्ञाति-सम्बन्धीजनों के संयोग को तथा, **बंधवे** – बन्धुओं को, **जहित्ता** – छोड़ कर, जो – जो, **भोगेसु (एएसु)** – कामभोगों में, **ण सज्जइ** – आसक्त नहीं होता, **तं** – उसे, **वयं** – हम, **माहणं** – ब्राह्मण, **बूम** – कहते हैं।

पसुबंधा सव्ववेया, जट्ठं च पावकम्मुणा।
ण तं तायंति दुस्सीलं, कम्माणि बलवंति हि॥

– **पसुबंधा** – पशुवध का विधान करने वाले, **सव्ववेया** – सभी वेद, **च** – और, **पावकम्मुणा** – पाप-कर्मकारी, **जट्ठं** – यज्ञ, **तं** – उस, **दुस्सीलं** – दुःशील-हिंसादि कुकृत्यों में प्रवृत्ति करने वाले शील रहित पुरुष की, **ण तायंति** – दुर्गति से रक्षा नहीं करते, **हि** – क्योंकि, **कम्माणि** – कर्म, **बलवंति** – बड़े बलवान् होते हैं, वे अपना फल दिये बिना नहीं रहते॥३०॥

ण वि मुंडिएण समणो, ण ओंकारेण बंभणो।
ण मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण ण तावसो॥

– **मुंडिएण** – मस्तक मुंडाने से, **समणो** – कोई श्रमण, **ण वि** – नहीं होता और, **ओंकारेण** – ओंकार का उच्चारण करने से, **ण बंभणो** – कोई ब्राह्मण नहीं होता, **रण्णवासेणं** – अरण्य वास- वन में निवास करने मात्र से, **ण मुणी** – कोई मुनि नहीं बन जाता और **कुसचीरेण** – वृक्षों की छाल पहनने से, **ण तावसो** – कोई तापस नहीं होता॥३१॥

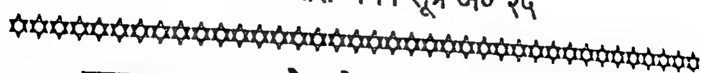


विवेचन - ॐ या ओंकार ये शब्द ब्राह्मण संस्कृति (वैदिक संस्कृति) का है किन्तु जैन संस्कृति (श्रमण संस्कृति) का नहीं है, क्योंकि जैनों के किसी भी आगम में ओम् शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है तब उसका अर्थ और महात्म्य तो मिले ही कहाँ से ? ब्राह्मण संस्कृति का अनुकरण दिगम्बर जैन सम्प्रदाय ने किया और देखा-देखी अन्य जैन सम्प्रदायों ने भी की । दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है कि ओम् शब्द में पञ्चपरमेष्टी का समावेश होता है। इसके लिये उन्होंने एक गाथा प्रचलित कर रखी है । वह इस प्रकार है -

अरिहंता असरीरा, आयरिय तह उवज्झाय मुणिणो।
पढमक्खर निप्पण्णो, ओंकारो पञ्च परमेट्ठी ॥

अर्थ - पञ्च परमेष्ठी का प्रथम अक्षर लेकर ओंकार शब्द बना है । परन्तु यह कहना प्रत्यक्ष विरुद्ध है क्योंकि प्रथम अक्षर तो ये हैं - अ, सि, आ, उ, सा । इनमें से सि और सा दोनों अक्षर ओम में आये ही नहीं है । सिद्ध के लिये अशरीरी और साधु के लिये मुनि शब्द लेकर "ओम्" शब्द बनाने की बात कहना अत्यन्त अनुचित है । क्योंकि इस प्रकार नमस्कार मंत्र को अपना इच्छानुसार तोड़ मरोड़ना अनन्त तीर्थङ्करों की आशातना करना है । अनादि काल से यह नमस्कार मंत्र इसी रूप में है इसको बदलना अनन्त तीर्थङ्करों की आशातना करना है । इसलिये तीर्थङ्करों के नाम के पहले ओम् शब्द लगाना उचित नहीं है ।

इस गाथा में ओंकार शब्द आया है वह **मण्डन रूप** नहीं है किन्तु खण्डन रूप है कि - केवल ओम् से कोई ब्राह्मण नहीं होता ।



समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो ।
णाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥ ३२॥

- **समयाए** - समताभाव धारण करने से, **समणो** - श्रमण, **होइ** - होता है और, **बंभचेरेण** - ब्रह्मचर्य का पालन करने से, **बंभणो** - ब्राह्मण होता है । **णाणेण** - ज्ञान की आराधना करने से, **मुणी** - मुनि, **होइ** - होता है, **य** - और, **तवेण** - तप का सेवन करने से, **तावसो** - तपस्वी, **होइ** - होता है ॥ ३२ ॥

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥ ३३॥

- **कम्मुणा** - कर्म से, **बंभणो** - ब्राह्मण, **होइ** - होता है, **कम्मुणा** - कर्म से, **खत्तिओ** - क्षत्रिय, **होइ** - होता है, **कम्मुणा**- कर्म से, **वइस्सो** - वैश्य, **होइ** - होता है और, **कम्मुणा** - कर्म से, **सुद्दो** - शूद्र, **हवइ** - होता है ॥ ३३ ॥

विवेचन - **ब्राह्मण** - 'ब्रह्म - आत्मानं वेत्ति जानाति इति ब्राह्मणः' अर्थात् ब्रह्म - आत्मा के स्वरूप को जानता है और [illegible] के लिये प्रवृत्ति करता है उसको ब्राह्मण कहते हैं । [illegible] - 'क्षतात् त्रायते इति क्षत्रियः' अर्थात् जो प्राणियों की रक्षा करे और उनके दुःख को दूर करे उसे क्षत्रिय कहते हैं जैसा कि - कहा है - 'क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः, क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।' **वैश्य** - 'वैशं व्यापारकरोति इति वैश्यः' अर्थात् जो व्यापार करता है उन्हें वैश्य कहते हैं । जिस देश का व्यापार बढ़ा चढ़ा एवं उन्नत होता है वह देश भी सब देशों से सब दृष्टि से बड़ा चढ़ा और उन्नत्त होता है । **शूद्र** - 'शुचं शोकं अशुचिं च द्रवति दूरीकरोति इति शुद्रः' अर्थात् जो शोक एवं अशुचि को दूर कर स्थान को पवित्र करता है उसे शूद्र कहते हैं । यह कर्म की अपेक्षा

चार वर्ण की व्याख्या है। नीति चार प्रकार की कही गई है - गृहस्थनीति, लोकनीति, राजनीति और धर्मनीति । सामाजिक दृष्टि से लोकनीति का महत्त्व है । अपने अपने वर्ण वाला अपने अपने वर्ण में ही कन्या आदि का लेने देन करे इससे सामाजिक व्यवस्था शुद्ध बनी रहती है वर्ण संकरता नहीं होती । जाति सम्पन्नता (मातृपक्ष की निर्मलता) और कुल सम्पन्नता (पितृपक्ष की निर्मलता) बनी रहती है ।

एए पाउकरे बुद्धे, जेहिं होइ सिणायओ ।
सव्वकम्म-विणिमुक्कं, तं वयं बूम माहणं ॥३४ ॥

- **बुद्धे** - तीर्थंकर देवों ने, **एए** - ये उपरोक्त अहिंसादि गुण, **पाउकरे** - बतलाये हैं, **जेहिं** - जिनका आचरण करने से मनुष्य क्रमशः **सिणायओ** - स्नातक अर्थात् केवलज्ञानी, **होइ** - हो जाता है और, **सव्वकम्म विणिमुक्कं**- सभी कर्मों से मुक्त हो जाता है, **तं** - उसे, **वयं** - हम, **माहणं** - ब्राह्मण, **बूम** - कहते हैं ॥ ३४ ॥

एवं गुणसमाउत्ता, जे भवंति दिउत्तमा ।
ते समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ॥ ३५ ॥

- **एवं** - इस प्रकार, **गुणसमाउत्ता** - उपरोक्त गुणों से युक्त, **जे** - जो, **दिउत्तमा** - द्विज उत्तम-उत्तम ब्राह्मण, **भवंति** - होते हैं, **ते** - वे, **परमप्पाणमेव य** - अपनी और दूसरों की आत्मा का, **समुद्धत्तुं** - उद्धार करने में, **समत्था** - समर्थ हैं ॥ ३५ ॥

एवं तु संसए छिण्णे, विजयघोसे य माहणे ।
समुदाय तओ तं तु, जयघोसं महामुणिं ॥

- **एवं** - इस प्रकार, **संसए** - संशय, **छिण्णे**
जाने पर, **विजयघोसे** - विजयघोष, **माहणे** -
जयघोष मुनि की वाणी, **समुदाय** - सुन कर

कर, तं - यह जान लिया कि, जयघोसं - यह मेरा संसारावस्था का भाई जयघोष ही, महामुणिं - महामुनि है ॥ ३६ ॥

तुट्ठे य विजयघोसे, इणमुदाहु कयंजली ।
माहणत्तं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं ॥ ३७ ॥

विजयघोसे - विजयघोष, **तुट्ठे** - प्रसन्न हुआ, और **कयंजली** - हाथ जोड़ कर, **इणं** - इस प्रकार, **उदाहु** - कहने लगा कि हे मुनि ! **जहाभूयं** - यथाभूत-वास्तविक, **माहणत्तं** - ब्राह्मणत्व का स्वरूप आपने, **मे** - मुझे, **सुट्ठु** - भली प्रकार, **उवदंसियं** - उपदर्शित-समझाया है ॥ ३७ ॥

तुब्भे जइया जण्णाणं, तुब्भे वेयविऊ विऊ ।
जोइसंगविऊ तुब्भे, तुब्भे धम्माण पारगा ॥ ३८ ॥

तुब्भे - वास्तव में आप ही, **जण्णाणं** - यज्ञों के, **जइया** - करने वाले हैं, **तुब्भे** - आप ही, **वेयविऊ** - वेदवित्-वेदों के ज्ञाता **विऊ** - विद्वान हैं, **तुब्भे** - आप ही, **जोइसंगविऊ** - ज्योतिष शास्त्र एवं उसके अंग जानने वाले हैं और, **तुब्भे** - आप ही, **धम्माण** धर्मों के, **पारगा** - पारगामी हैं ॥ ३८ ॥

तुब्भे समत्था उद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ।
तमणुग्गहं करेहम्हं, भिक्खेणं भिक्खुउत्तमा ! ॥ ३९ ॥

हे मुने ! **तुब्भे** - आप, **परमप्पाणमेव य** - अपनी और दूसरों की आत्मा का, **उद्धत्तुं** - उद्धार करने में, **समत्था** - समर्थ हैं, **तं** - इसलिए, **भिक्खु उत्तमा** - हे भिक्षुओं में श्रेष्ठ भिक्षु ! **भिक्खेणं** - भिक्षा ग्रहण कर के, **अम्हं** - हम पर, **अणुग्गहं** - अनुग्रह, **करेह** - कीजिये ॥ ३९ ॥

ण कज्जं मज्झ भिक्खेणं, खिप्पं णिक्खमसू दिया ।
मा भमिहिसि भयावट्टे, घोरे संसार-सागरे ॥ ४० ॥

- मुनि फरमाते हैं कि, **दिया** - हे द्विज ! **मज्झं** - मुझे, **भिक्खेण** - भिक्षा से, **ण कज्जं** - प्रयोजन नहीं है, किन्तु मैं चाहता हूँ कि तुम, **खिप्पं** - शीघ्र, **णिक्खमसू** - प्रव्रज्या स्वीकार करो । ऐसा करने से तुमको, **भयावट्टे** - भय रूप आवर्त्त वाले, **घोरे** - घोर, **संसार सागरे (सायरे)** - संसार-सागर में, **मा भमिहिसि** - परिभ्रमण नहीं करना पड़ेगा ॥ ४० ॥

उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी णोवलिप्पइ ।
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चइ ॥ ४१ ॥

- **भोगेसु** - भोगों को भोगने से, **उवलेवो** - कर्मों का बन्ध **होइ** - होता है और, **अभोगी** - भोगों का सेवन न करने वाला, **णोवलिप्पइ** - कर्मों से लिप्त नहीं होता । यही कारण है कि, **भोगी** - भोगी आत्मा, **संसारे** - संसार में, **भमइ** - परिभ्रमण करता रहता है और, **अभोगी** - भोगों का त्याग करने वाला आत्मा, **विप्पमुच्चइ** - मुक्त हो जाता है ॥ ४१ ॥

उल्लो सुक्को य दो छूढा, गोलया मट्टियामया ।
दो वि आवडिया कुड्डे, जो उल्लो सोऽत्थ लग्गइ ॥

- **उल्लो** - गीले, **य** - और, **सुक्को** - सूखे, **मट्टियामया** - मिट्टी के, **दो** - दो, **गोलया** - गोलों को यदि,
छूढा - फेंका जाय तो, **दो वि** - वे दोनों,
टकरायेंगे, **अत्थ** - उनमें, **जो** - जो, **उल्लो**
वह वहीं, **लग्गइ** - चिपक जायगा ॥ ४२

एवं लग्गंति दुम्मेहा, जे
विरत्ता उ ण लग्गंति, जहा

- **एवं** - इसी प्रकार, **जे** - जो **दुम्मेहा** - दुर्मेधा-दुर्बुद्धि, **णरा**- पुरुष, **कामलालसा** - कामभोगों में आसक्त रहते हैं वे, **लग्गंति** - कर्मों से लिप्त हो कर संसार में फँसे रहते हैं, **उ** - और **विरत्ता** - जो विरक्त हैं, **से** - वे, **जहा** - यथा, **सुक्क गोलए**- मिट्टी के सूखे गोले के समान, **ण लग्गंति** - कर्मों से लिप्त नहीं होते ॥४३ ॥

एवं से विजयघोसे, जयघोसस्स अंतिए ।
अणगारस्स णिक्खंतो, धम्मं सुच्चा अणुत्तरं ॥४४॥

- **एवं** - इस प्रकार, **अणुत्तरं** - अनुत्तर-श्रेष्ठ, **धम्मं** - धर्म, **सुच्चा (सोच्चा)** - सुन कर, **से** - उस, **विजयघोसे** - विजयघोष ब्राह्मण ने, **जयघोसस्स** - जयघोष, **अणगारस्स** - मुनि के, **अंतिए**- समीप, **णिक्खंतो** - निष्क्रमण किया अर्थात् दीक्षा धारण कर ली ॥ ४४ ॥

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ।
जयघोस विजयघोसा, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥४५॥
त्तिबेमि ॥

- **संजमेण** - संयम, **य** - और, **तवेण** - तप से, **पुव्वकम्माइं** - पूर्वकृत कर्मों का, **खवित्ता** - क्षय (नाश) कर के, **जयघोस-विजयघोसा** - जयघोष और विजयघोष दोनों मुनि, **अणुत्तरं** - अनुत्तर-प्रधान, **सिद्धिं** - सिद्धि गति को, **पत्ता** - प्राप्त हो गये ॥ ४५ ॥ **त्तिबेमि** - ऐसा मैं कहता हूँ ।

॥ पच्चीसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

समाचारी छब्बीसवाँ अध्ययन

सामायारिं पवक्खामि, सव्व-दुक्ख-विमोक्खणिं ।
जं चरित्ताण णिग्गंथा, तिण्णा संसारसागरं ॥ १ ॥

- **सव्वदुक्ख विमोक्खणिं** - सभी दुःखों से छुड़ाने वाली, **सामायारि** - समाचारी, **पवक्खामि** - कहूँगा, **जं** - जिसका, **चरित्ताण** - सेवन करके, **णिग्गंथा** - अनेक निर्ग्रन्थ मुनि, **संसारसागरं** - संसारसागर को, **तिण्णा** - तिर गये हैं । इसी प्रकार इसका सेवन करके अनेक निर्ग्रन्थ मुनि वर्तमान काल में संसार सागर से पार हो रहे हैं और आगामी काल में भी पार होंगे ॥ १ ॥

पढमा आवस्सिया णामं, बिइया य णिसीहिया ।
आपुच्छणा य तइया, चउत्थी पडिपुच्छणा ॥ २ ॥
पंचमी छंदणा णामं, इच्छाकारो य छट्ठओ ।
सत्तमो मिच्छाकारो य, तहक्कारो य अट्ठमो ॥ ३ ॥
अब्भुट्ठाणं च णवमं, दसमी उवसंपया ।
एसा दसंगा साहूणं, सामायारी पवेइया ॥ ४ ॥

- अब दस समाचारी के नाम कहे जाते हैं । यथा-**पढमा** - पहली, **आवस्सिया** - आवश्यकी, **णामं** - नाम वाली है, **य** - और, **बिइया** - दूसरी, **णिसीहिया** - नैषेधिकी, **तइया** - तीसरी **आपुच्छणा** - आपृच्छना, **य** - और, **चउत्थी** - **पडिपुच्छणा** - प्रतिपृच्छना है । **पंचमी** - पांचवीं, **छंदना** नाम की, **य** - और, **छट्ठओ** - छठी, इ

इच्छाकार, **य** - और, **सत्तमो** - सातवीं, **मिच्छाकारो** - मिथ्याकार, **य** - और, **अट्ठमो** - आठवीं, **तहक्कारो** - तथाकार है । **णवमं**- नवमी, **अब्भुट्ठाणं** - अभ्युत्थान, **च** - और, **दसमी** - दसवीं, **उवसंपया** - उपसंपदा है, **एसा** - यह, **साहूणं** - साधुओं की, **दसंगा** - दस प्रकार की, **सामायारी** - समाचारी, **पवेइया** - तीर्थंकर भगवान् ने फरमाई है ॥ २-३-४॥

गमणे आवस्सियं कुज्जा, ठाणे कुज्जा णिसीहियं ।
आपुच्छणा सयंकरणे, परकरणे पडिपुच्छणा ॥

१. **गमणे** - बाहर जाने में, **आवस्सियं** - आवश्यकी समाचारी, **कुज्जा** - करे अर्थात् आवश्यक कार्य के लिए अपने स्थान से बाहर जाते समय साधु को 'आवस्सिया आवस्सिया' कहना चाहिए अर्थात् मैं आवश्यक कार्य के लिए जाता हूँ । २. **ठाणे** - स्थान में, **णिसीहियं** - नैषेधिकी समाचारी, **कुज्जा**-करे, अर्थात् बाहर से लौट कर अपने स्थान में प्रवेश करते समय साधु को 'णिसीहिया णिसीहिया' कहना चाहिए (अब मैं बाहर के कार्यों से निवृत्त हो गया हूँ)। ३. **सयंकरणे** - स्वयं कार्य करने के लिए, **आपुच्छणा**-आपृच्छना समाचारी करनी चाहिए अर्थात् किसी भी कार्य में प्रवृत्ति करने से पहले गुरु से पूछना चाहिये कि 'क्या मैं यह कार्य करूँ ?' इत्यादि । ४. **परकरणे** - दूसरे मुनियों का कार्य करने के लिए, **पडिपुच्छणा**-प्रतिपृच्छना समाचारी करनी चाहिए अर्थात् दूसरे मुनि का जो कार्य करने के लिए गुरु ने पहले आज्ञा फरमाई हो उस कार्य में प्रवृत्ति करते समय गुरु महाराज से फिर पूछना कि 'हे भगवन् ! मैं अमुक मुनि का अमुक कार्य करूँ ?' इस प्रकार पूछना प्रतिपृच्छना है । फिर से पूछने का अभिप्राय यह

है कि कदाचित् वह कार्य किसी दूसरे मुनि ने कर दिया हो अथवा इस समय गुरु किसी दूसरे कार्य के लिए आज्ञा प्रदान करें' इसलिए प्रतिपृच्छना समाचारी का सेवन करना चाहिए ॥ ५ ॥

छंदणा दव्वजाएणं, इच्छाकारो य सारणे ।
मिच्छाकारो य णिंदाए, तहक्कारो पडिस्सुए ॥ ६ ॥

५. **दव्वजाएणं**-अशन-पान-खादिम-स्वादिम आदि के लिए दूसरे साधुओं को निमंत्रण देना, **छंदणा** - छंदना समाचारी है जैसे- यदि आपके उपयोग में आ सके तो मेरे इस आहार में से ग्रहण कीजिये, **य** - और, ६. **सारणे** - स्वयं कार्य करने में अथवा दूसरों से कोई कार्य करवाने में, **इच्छाकारो** - इच्छाकार समाचारी की जाती है जैसे-'हे भगवन् ! यदि आपकी इच्छा हो तो आप मुझे ज्ञानादि दे कर मुझ पर उपकार करें' इस प्रकार पूछना 'इच्छाकार' समाचारी है । ७. **णिंदाए** - कोई दोष लग जाने पर आत्म-निंदा करना, **मिच्छाकारो** - 'मिथ्याकार' समाचारी है । यदि साधुवृत्ति से विपरीत आचरण हो गया हो तो उसके लिए 'मिच्छामि दुक्कडं' देना, पश्चात्ताप करना तथा आत्मनिन्दा करना कि 'मेरी आत्मा को धिक्कार हो जो मैंने अमुक अकार्य किया,' यह मिथ्याकार समाचारी कहलाती है, **य** - और, ८. **पडिस्सुए** - गुरु महाराज के वचनों को सुन कर, **तहक्कारो** - 'तहत्ति' या 'तथास्तु' कहना 'तथाकार' समाचारी है ॥ ६ ॥

अब्भुट्ठाणं गुरुपूया, ।
एवं दुपंचसंजुत्ता, ॥

९. **गुरुपूया** - गुरुपूजा-गुरु अपने



साधुओं की विनय-भक्ति करना तथा बाल, वृद्ध और ग्लान साधुओं को यथोचित आहार औषधि आदि ला कर देना, **अब्भुट्ठाणं**- 'गुरुपूजा अभ्युत्थान' नाम की समाचारी है और, १०. **अच्छणे** - ज्ञानादि के लिए अन्य गच्छ के आचार्य के पास रहना, **उवसंपया**- 'उपसंपदा' समाचारी है, **एवं**-इस प्रकार, **दुपंचसंजुत्ता** - २ × ५=१० दस प्रकार की, **सामायारी**-समाचारी, **पवेइया**-कही गई है ॥ ७ ॥

पुव्विल्लम्मि चउब्भाए, आइच्चम्मि समुट्ठिए ।
भंडयं पडिलेहित्ता, वंदित्ता य तओ गुरुं ॥ ८ ॥
पुच्छिज्ज पंजलिउडो, किं कायव्वं मए इह ।
इच्छं णिओइउं भंते !, वेयावच्चे व सज्झाए ॥ ९ ॥

- **आइच्चम्मि** - आदित्य-सूर्य के, **समुट्ठिए** - उदय होने पर, **[illegible]** - प्रथम प्रहर के, **चउब्भाए** - चौथे भाग में, **भंडयं**- भंडोपकरण की, **पडिलेहित्ता** - प्रतिलेखना करे, **तओ** - उसके बाद, **गुरुं** - गुरु महाराज को, **वंदित्ता**-वंदना करके, **पंजलिउडो** - हाथ जोड़ कर, **पुच्छिज्ज** - पूछे कि, **भंते** - 'हे भगवन् ! **इह** - इस समय, **मए** - मुझे, **किं** - क्या, **कायव्वं** - करना चाहिए ? **सज्झाए**- स्वाध्याय और, **वेयावच्चे** - वैयावृत्य, इन दोनों में से किस कार्य में, **णिओइउं** - आप मुझे नियुक्त करना चाहते हैं ? **इच्छं**-आपकी इच्छानुसार आज्ञा दीजिये' ॥

वेयावच्चे णिउत्तेणं,
सज्झाए वा णिउत्तेणं,

☆☆

- **वेयावच्चे** - वैयावृत्य में, **णिउत्तेणं** - नियुक्त साधु को चाहिए कि वह, **अगिलायओ** - बिना ग्लानि के, **कायव्वं** - वैयावृत्य करे, **वा** - अथवा, **सज्झाए** - स्वाध्याय में, **णिउत्तेणं** -नियुक्त साधु को चाहिए कि, **सव्वदुक्ख विमोक्खणे** - समस्त दुःखों से मुक्त कराने वाली स्वाध्याय में दत्तचित्त हो कर लग जाय ॥ १० ॥

दिवसस्स चउरो भागे, भिक्खू कुज्जा वियक्खणो ।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, दिणभागेसु चउसु वि ॥

- **वियक्खणो** - विचक्षण, **भिक्खू** - साधु, **दिवसस्स** - दिन के, **चउरो** - चार, **भागे** - भाग, **कुज्जा** - करे, **तओ** - इसके बाद, **दिणभागेसु चउसु वि**-दिन के चारों भागों में, **उत्तरगुणे**-उत्तरगुणों का, **कुज्जा**-सेवन करें (स्वाध्यायादि करे) ॥ ११ ॥

पढमं पोरिसी सज्झायं, बीयं झाणं झियायइ ।
तइयाए भिक्खायरियं, पुणो चउत्थीइ सज्झायं ॥

-**पढमं** - प्रथम, **पोरिसी** - पहर में, **सज्झायं** - स्वाध्याय करे
बीयं - दूसरे पहर में, **झाणं** - ध्यान, **झियायइ** - करे,
तीसरे पहर में, **भिक्खायरियं** - भिक्षाचर्या करे और,
चौथे पहर में, **पुणो** - पुनः, **सज्झायं** - स्वाध्याय

विवेचन - यह गाथा सामान्य कथन की है
में दिन के चार भाग बतला कर चार कार्य ॰
ये चार ही कार्य करे तो प्रतिलेखन,
विहार करना, बीमार साधु साध्वी की सेवा ॰
करें ? अतः यह गाथा सामान्य रूप से कही
अगली गाथाओं में प्रतिलेखन आदि का वि

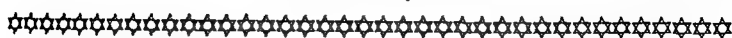
तीसरे प्रहर में ही गोचरी जाना यह एकान्त नियम नहीं है। क्योंकि दशवैकालिक सूत्र के ५ वें अध्ययन में बतलाया गया है कि - जिस गांव में भोजन का जो समय हो उस समय गोचरी जाना चाहिये। मुनि को सम्बोन्धित कर शास्त्रकार ने फरमाया है कि - हे मुने! यदि गोचरी के समय का ध्यान नहीं रखोगे तो अपनी आत्मा को भी क्लेशित करोगे और उस गांव की भी निंदा करोगे। अतः दशवैकालिक सूत्र के पाँचवें अध्ययन के दूसरे उद्देशक की चौथी गाथा में कहा है -

कालेण णिक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे।
अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे ॥४॥

जिस समय गृहस्थों के घर भोजन बन जाय और गृहस्थ भोजन करने लग जाय तब गोचरी के लिये जावे और नियत समय पर वापिस लौट आवे। गोचरी के समय गोचरी और स्वाध्याय के ५ स्वाध्याय करे। अकाल का विवर्जन करे।

दूसरी बात यह भी है कि - भगवती सूत्र शतक ७ उद्देशक १ में साधु के लिये कालातिक्रान्त दोष बताया है जिसका अर्थ है कि पहले प्रहर में लाया हुआ आहार पानी चौथे प्रहर में करता है तो साधु साध्वी को कालातिक्रान्त दोष लगता है और उसका प्रायश्चित्त आता है। इसलिये यदि तीसरे प्रहर में ही गोचरी जाने का एकान्त नियम होता तो पहले प्रहर में गोचरी जाता ही कैसे? अतः तीसरे प्रहर में ही गोचरी करना यह एकान्त नियम नहीं है। किन्तु यह सामान्य नियम है।

आसाढे मासे दुपया, पोसे मासे चउप्पया।
चित्तासोएसु मासेसु, तिप्पया हवइ पोरिसी ॥१३॥



- **आसाढे** - आषाढ़, **मासे** - मास में, **दुपया** - दो पाँव जितनी, **पोसे** - पौष, **मासे** - मास में, **चउप्पया** - चार पाँव और, **चित्तासोएसु** - चैत्र और आसोज, **मासेसु** - मासों में, **तिप्पया**- तीन पाँव की, **पोरिसी** - पोरिसी, **हवइ** - होती है ॥ १३ ॥

अंगुलं सत्तरत्तेणं, पक्खेणं च दुरंगुलं ।
वड्ढए हायए वावि, मासेणं चउरंगुलं ॥ १४॥

- ऊपर की गाथा में चार महीनों में पोरिसी का परिमाण बताया गया है । शेष आठ महीनों का परिमाण बतलाया जाता है- **सत्तरत्तेणं** - प्रत्येक सात दिन-रात में, **अंगुलं** - एक-एक अंगुल **च** - और, **पक्खेणं** - पक्ष, (पन्द्रह दिनों) में, **दुरंगुलं** - दो-दो अंगुल और, **मासेणं** - प्रत्येक मास में, **चउरंगुलं** - चार-चार अंगुल छाया, **वड्ढए हायए वावि** - बढ़ती और घटती है ❀ ॥ १४ ॥

आसाढ-बहुलपक्खे, भद्दवए कत्तिए य पोसे य ।
फग्गुण-वइसाहेसु य, बोद्धव्वा ओमरत्ताओ ॥

- **आसाढ** - आषाढ़, **भद्दवए** - भाद्रपद, **कत्तिए** - कार्तिक, **य** - और, **पोसे** - पौष, **य** - तथा, **फग्गुण वइसाहेसु य** - फाल्गुन और वैशाख, इन सब महीनों के, **बहुलपक्खे** - **कृष्ण**-पक्ष में, **ओमरत्ताओ** - **अवमरात्रि** एक एक तिथि घटती है, (**णायव्वा**) - ऐसा जानना चाहिए अर्थात् कृष्णपक्ष १४ दिन का होता है ॥ १५ ॥

❀ बारह महीनों में पोरिसी के परिमाण खुलासा 'श्री जैन सिद्धांत बोल संग्रह बीकानेर' में देखना चाहिए ।

जेट्ठामूले आसाढ-सावणे, छहिं अंगुलेहिं पडिलेहा।
अट्ठहिं बीयतयम्मि, तइए दस अट्ठहिं चउत्थे ॥ १६ ॥

– **जेट्ठामूले** - जेठ, **आसाढसावणे** - आषाढ और श्रावण मास में पोरिसी का जो परिमाण कहा गया है उसमें, **छहिं** - छह, **अंगुलेहिं** - अंगुल और मिला देने से, **पडिलेहा** - प्रतिलेखना का समय होता है, **बीयतयम्मि**-दूसरे त्रिक में (भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक में) पोरिसी के परिमाण में, **अट्ठहिं** - आठ अंगुल मिलाने से और, **तइए** - तीसरे त्रिक (मार्गशीर्ष पौष और माघ मास) में, दस-दस अंगुल मिलाने से तथा, **चउत्थे** - चौथे त्रिक (फाल्गुन, चैत्र और वैशाख मास) में, **अट्ठहिं** - आठ अंगुल मिलाने से प्रतिलेखना का समय होता है ॥ १६ ॥

भावार्थ - यदि पौन पोरिसी का परिमाण जानना हो तो बताई हुई पोरिसी की छाया में नीचे लिखे अनुसार अंगुल देने चाहिए-जेठ, आषाढ़ और श्रावण मास में छह अंगुल तथा मार्गशीर्ष, पौष और माघ में दस अंगुल, फाल्गुन, चैत्र और वैशाख में आठ अंगुल । इस प्रकार छाया बढ़ाने से पौन पोरिसी निकल आती है । इस समय वस्त्र-पत्रादि की प्रतिलेखना करे ।

रत्तिं पि चउरो भागे, भिक्खू कुज्जा वियक्खणो।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, राइभागेसु चउसु वि ॥ १७ ॥

– **वियक्खणो** - विचक्षण, **भिक्खू** - साधु, **रत्तिं पि** - रात्रि के भी, **चउरो** - चार, **भागे** - भाग **कुज्जा** - करे, **तओ** - उसके बाद, **राइभागेसु चउसु वि** - रात्रि के चारों ही भागों में

☆☆

उत्तरगुणे - उत्तरगुणों की, **कुज्जा** - वृद्धि करे अर्थात् प्रत्येक पोरिसी में उसके योग्य स्वाध्यायादि करके अपने गुणों की वृद्धि करे ॥ १७ ॥

पढमं पोरिसी सज्झायं, बीयं झाणं झियायइ ।
तइयाए णिद्दमोक्खं तु, चउत्थी भुज्जो वि सज्झायं ॥

- **पढमं** - पहले, **पोरिसी** - पहर में, **सज्झायं** - स्वाध्याय करे, **बीयं** - दूसरे पहर में, **झाणं** - ध्यान, **झियायइ** - करे, **तु** - और, **तइयाए** - तीसरे पहर में, **णिद्दमोक्खं** - निद्रा को मुक्त करे - अर्थात् नींद को रोके नहीं, किन्तु खुली छोड़ दे और **चउत्थी** - चौथे पहर में, **भुज्जो वि** - फिर, **सज्झायं** - स्वाध्याय करे ॥ १८ ॥

जं णेइ जया रत्तिं, णक्खत्तं तम्मि णहचउब्भाए ।
संपत्ते विरमेज्जा, सज्झायं पओसकालम्मि ॥ १९ ॥

- **जया** - जब, **जं** - जो **णक्खत्तं** - नक्षत्र, **रत्तिं** - रात्रि को, **णेइ** - समाप्त करता है अर्थात् जो नक्षत्र सारी रात उदित रह कर सूर्योदय के समय अस्त होता है, **तम्मि** - उस नक्षत्र के, **णहचउब्भाए** - आकाश के चौथे भाग में,
पओसकालम्मि - प्रदोष काल में,
विरमेज्जा - निवृत्त हो जावे ॥ १९

भावार्थ - जिस काल में
रहते हों, वे नक्षत्र जब आकाश
का एक पहर गया ऐसा
बन्द कर देना चाहिए ।

तम्मेव य णक्खत्ते, गयणचउब्भागसावसेसम्मि ।
वेरत्तियं पि कालं, पडिलेहित्ता मुणी कुज्जा ॥२०॥

- **तम्मेव** - उसी, **णक्खत्ते** - नक्षत्र के अर्थात् जो नक्षत्र रात्रि को पूर्ण करता है जब वह, **गयणचउब्भाग सावसेसम्मि** - आकाश के चतुर्थ भाग के चौथे भाग पर आ जाय तब, **मुणी** - मुनि, **वेरत्तियं पि** - वैरात्रिक, **कालं** - काल, **पडिलेहित्ता** - देख कर, **कुज्जा** - प्रतिक्रमण करे ॥ २० ॥

भावार्थ - जो नक्षत्र सारी रात उदित रहता है वह चलते-चलते आकाश का केवल चौथा भाग शेष रहे वहाँ, (चौथी पोरिसी में) आ पहुँचे तब समझना चाहिए कि अब पहर रात्रि शेष है और उसी समय स्वाध्याय में लग जाना चाहिए । उस पोरिसी चौथे भाग में (दो घड़ी रात शेष रहने पर) मुनि को प्रतिक्रमण चाहिए ।

पुव्विल्लम्मि चउब्भाए, पडिलेहित्ताण भंडयं ।
गुरुं वंदित्तु सज्झायं, कुज्जा दुक्खविमोक्खणं ॥

- साधु का दैनिक कर्त्तव्य - **पुव्विल्लम्मि** - पहले पहर के, **चउब्भाए** - चौथे भाग में, **भंडयं** - भण्डोपकरणों की, **पडिलेहित्ताणं** - प्रतिलेखना करके, **गुरुं** - गुरु को, **वंदित्तु** - वन्दना करे फिर, **दुक्ख-विमोक्खणं** - सभी दुःखों से मुक्त कराने वाली, **सज्झायं** - स्वाध्याय, **कुज्जा** - करे ॥ २१ ॥

पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
अपडिक्कमित्ता कालस्स, भायणं पडिलेहए ॥



- **पोरिसीए** - पहले पहर के, **चउब्भाए** - चौथे भाग में (जब पौन पोरिसी हो जाय), **तओ** - तब, **गुरुं** - गुरु महाराज को, **वंदित्ताण** - वन्दना कर के, **कालस्स** - स्वाध्याय-काल से, **अपडिक्कमित्ता** - निवृत्त न हो कर, **भायणं** - पात्रों की, **पडिलेहए** - प्रतिलेखना करे ॥ २२ ॥

भावार्थ - प्रथम पहर स्वाध्याय का समय है, उसमें जब दो घड़ी शेष रहे, तब उसे छोड़ कर स्वाध्याय के लिए जो चौदह अतिचारों का ध्यान किया जाता है, उसे न करके (क्योंकि फिर स्वाध्याय करना है) पात्रों की प्रतिलेखना करने में लग जाना चाहिए ।

मुहपत्तिं पडिलेहित्ता, पडिलेहिज्ज गोच्छगं ।
गोच्छगलइयंगुलियो, वत्थाइं पडिलेहए ॥ २३ ॥

- साधु, **मुहपत्तिं** - मुखवस्त्रिका की, **पडिलेहित्ता** - प्रतिलेखना करे फिर, **गोच्छग-लइय** - **अंगुलिओ** - पूंजणी और रजोहरण 'लइय' - लतिका - डण्डी इन सबको हाथ की अंगुलियों पर रख कर, **गोच्छगं**-रजोहरण की, **पडिलेहिज्ज** - प्रतिलेखना करे। तत्पश्चात् **वत्थाइं** - वस्त्रों की, **पडिलेहए** - प्रतिलेखना करे ॥ २३।

उड्ढं थिरं अतुरियं पुव्विं ता वत्थमेव पडिले
तो बिइयं पप्फोडे, तइयं च ।

- प्रतिलेखना करने की विधि, **उड्ढं** -
कर वस्त्र को भूमि से ऊँचा रखते हुए
पूर्वक वस्त्र को पकड़ कर, **अतुरियं** -
पहले, **ता** - तो, **वत्थमेव** - वस्त्र की,
तो - उसके बाद, **बीयं** - दूसरी बार,

खंखेरे (धीरे-धीरे झड़कावे) **च** - और, **पुणो** - फिर, **तइयं** - तीसरी बार, **पमज्जिज्जा** - यतनापूर्वक पूँजे ॥ २४॥

अणच्चावियं अवलियं, अणाणुबंधिं अमोसलिं चेव ।
छप्पुरिमा णवखोडा, पाणीपाणि-विसोहणं ॥ २५ ॥

- अप्रमाद प्रतिलेखना के छह भेद कहते हैं - १. **अणच्चावियं** - प्रतिलेखना करते समय शरीर और वस्त्र को नचावे नहीं । २. **अवलियं** - वस्त्र कहीं से भी मुड़ा हुआ न रहे और प्रतिलेखन करने वाला भी शरीर बिना मोड़े सीधा बैठे । ३. **अणाणुबंधिं** - वस्त्र को जोर से नहीं झड़के । ४. **अमोसलिं**- वस्त्र को ऊपर, नीचे या तिर्छे दीवाल आदि से न लगावे । ५. **छप्पुरिमा णक्खोडा** - प्रतिलेखना में छह पुरिम और नवखोड़ करने चाहिए । वस्त्र के दोनों हिस्सों को तीन-तीन बार खंखेरना 'छपुरिम' कहलाता है और वस्त्र को तीन-तीन बार पूंज कर तीन बार शोधना 'नवखोड' कहलाता है । **चेव** - और, ६. **पाणीपाणि विसोहणं** - वस्त्रादि पर चलता हुआ यदि कोई जीव दिखाई दे, तो उसको अपनी हथेली पर उतार कर रक्षण करना चाहिए॥ २५॥

आरभडा सम्मद्दा, वज्जेयव्वा य मोसली तइया ।
पप्फोडणा चउत्थी, विक्खित्ता वेइया छट्ठी ॥२६ ॥

- प्रमाद पूर्वक की जाने वाली प्रतिलेखना 'प्रमाद प्रतिलेखना' कहलाती है । वह छह प्रकार की है - १. **आरभडा** - विपरीत रीति से या उतावल के साथ प्रतिलेखना करना अथवा एक वस्त्र की प्रतिलेखना अधूरी छोड़ कर दूसरे वस्त्र की प्रतिलेखना करने लग जाना "आरभटा" प्रतिलेखना है । २. **सम्मद्दा**- वस्त्र के कोने मुड़े ही रहें (सल न निकाले जायं) वह 'सम्मर्दा' प्रतिलेखना है अथवा

उपकरणों के ऊपर बैठ कर प्रतिलेखना करना सम्मर्दा प्रतिलेखना है, **य** - और, ३. **तइया** - तीसरी, **मोसली** - वस्त्र को ऊपर नीचे और तिरछे दीवाल आदि पर लगाना 'मोसली' प्रतिलेखना है । ४. **चउत्थी** - चौथी, **पप्फोडणा** - जिस प्रकार धूल से भरे हुए वस्त्र को जोर से झड़काया जाता है उसी प्रकार वस्त्र को जोर से झड़काना 'प्रस्फोटना' प्रतिलेखना है ।५. **विक्खित्ता** - प्रतिलेखना किये हुए वस्त्रों को बिना प्रतिलेखना किये हुए वस्त्रों में मिला देना अथवा प्रतिलेखना करते समय वस्त्र के पल्ले आदि को ऊपर की ओर फेंकना 'विक्षिप्ता' प्रतिलेखना है और ६. **छट्ठी** - छठी, **वेइया** - प्रतिलेखना करते समय घुटनों के ऊपर नीचे और पसवाड़े हाथ रखना अथवा दोनों घुटनों को या एक घुटने को भुजाओं के बीच रखना 'वेदिका' प्रतिलेखना है । ये अप्रशस्त प्रतिलेखनाएँ हैं, इसलिए, **वज्जेयव्वा** - इनका त्याग कर देना चाहिए ॥ २६ ॥

पसिढिलपलंबलोला, एगामोसा अणेगरूवधुणा ।
कुणइ पमाणि पमायं, संकिय गणणोवगं कुज्जा ॥

- प्रमाद प्रतिलेखना के छह भेद आगे बताये हैं । इस गाथा में सात भेद और बताये जाते हैं - १. **पसिढिल** - वस्त्र को दृढ़ता से न पकड़ना, २. **पलंब** - वस्त्र को दूर रख कर प्रतिलेखना करना ३. **लोला** - वस्त्र को भूमि के साथ रगड़ना, ४. ही दृष्टि में तमाम वस्त्र को देख जाना, ५. प्रतिलेखना करते समय शरीर और वस्त्र क ६. **पमाणि पमायं कुणइ** - प्रतिलेखना में परिमाण बतलाया गया है, उसमें उपयोग करना ।७. **संकिय गणणोवगं कुज्जा** - यदि शंका उत्पन्न हो जाय तो अंगुलियों

उससे उपयोग का चूक जाना तथा ध्यान अन्यत्र चला जाना । ये सब अप्रशस्त प्रतिलेखनाएँ हैं । मुनि को इनका त्याग करके शास्त्रोक्त विधि के अनुसार प्रतिलेखना करना चाहिए ॥ २७ ॥

अणूणाइरित्त-पडिलेहा, अविवच्चासा तहेव य ।
पढमं पयं पसत्थं, सेसाणि उ अप्पसत्थाइं ॥ २८ ॥

– **पडिलेहा** – प्रतिलेखना के विषय में, **अणूणाइरित्त** - शास्त्रोक्त विधि से कम न करना और अधिक भी न करना, **तहेव य**- और, **अविवच्चासा** – विपरीत न करना, **पढमं** – यह पहला, **पयं**- भंग, **पसत्थं** – प्रशस्त (शुद्ध) है, **उ** – और, **सेसाणि** – शेष भांगे, **अप्पसत्थाइं** – अप्रशस्त हैं ॥ २८ ॥

भावार्थ – प्रतिलेखना के त्रिसंयोगी आठ भंग होते हैं । शास्त्रोक्त विधि से न कम, न अधिक और न विप्ररीत, यह पहला भंग शुद्ध है । इसी के अनुसार साधु को प्रतिलेखना करनी चाहिए। शेष सात भंग अशुद्ध हैं । उन्हें त्याग देना चाहिए ।

पडिलेहणं कुणंतो, मिहो कहं कुणइ जणवय-कहं वा।
देइ व पच्चक्खाणं, वाएइ सयं पडिच्छइ वा ॥ २९ ॥
पुढवी-आउक्काए, तेऊ-वाऊ वणस्सइ-तसाणं ।
पडिलेहणापमत्तो, छण्हं पि विराहओ होइ ॥ ३० ॥

– **पडिलेहणं** – प्रतिलेखना, **कुणंतो** – करता हुआ जो साधु, **मिहो** – आपस में, **कहं** – कथा-वार्तालाप, **कुणइ** - करता है, **वा** – अथवा, **जणवयकहं** – जनपद कथा, देशकथा आदि करता है, **पच्चक्खाणं** – दूसरे को पच्चक्खाण, **देइ** – कराता है, **व** - अथवा, **वाएइ** – दूसरे को वाचना देता है (पढ़ाता है) **वा** - अथवा, **सयं** – स्वयं, **पडिच्छड** – वाचना लेता (पढता) है वह,

पडिलेहणापमत्तो – प्रतिलेखना में प्रमाद करने के दोष का भागी होता है । इस प्रकार प्रमत्तभावपूर्वक प्रतिलेखना करने वाला साधु पुढवी – पृथ्वीकाय, आउक्काए – अप्काय, तेऊ – तेउकाय, वाऊ – वायुकाय, वणस्सइ – वनस्पतिकाय और, तसाणं – त्रसकाय, छण्हं – इन छहों कायों का, विराहओ – विराधक, होइ – होता है ॥ २९-३० ॥

पुढवी-आउक्काए, तेऊ-वाऊ-वणस्सइ-तसाणं।
पडिलेहणा आउत्तो, छण्हंपि आराहओ होइ ॥

– पडिलेहणा आउत्तो – प्रतिलेखना में उपयोग रखने वाला साधु, पुढवी – पृथ्वीकाय, आउक्काए – अप्काय, तेऊ – तेउकाय, वाऊ – वायुकाय, वणस्सइ – वनस्पतिकाय और, तसाणं – त्रसकाय, इन, छण्हं आराहओ (संरक्खओ) – छहों काय का संरक्षक एवं आराधक, होइ – होता है ॥ ३१ ॥

तइयाए पोरिसीए, भत्तं पाणं गवेसए ।
छण्हं अण्णयरागम्मि, कारणम्मि समुट्ठिए ॥ ३२ ॥

– दूसरी पोरिसी में ध्यान करना चाहिए, तइयाए – तीसरी, पोरिसीए – पोरिसी में, छण्हं – आगे कहे जाने वाले, छह कारणों में से, अण्णयरागम्मि – किसी एक, कारणम्मि – कारण के, समुट्ठिए– उपस्थित होने पर, भत्तं पाणं – आहार-पानी की, गवेसए – गवेषणा करे ॥ ३२ ॥

वेयण-वेयावच्चे, ईरियट्ठाए य [illegible]
तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्म- [illegible]।

– १ वेयण – क्षुधावेदनीय की शांति के लिए [illegible] वैयावृत्य-सेवा करने के लिए ३ ईरियट्ठाए – ईर्या

के लिए, **य** – और, **४ संजमट्ठाए** – संयम पालने के लिए, **तह** – तथा **५ पाणवत्तियाए** – दस प्राणों की रक्षा के लिए अर्थात्-जीवन-निर्वाह के लिए, **छट्ठं** – छठे, **धम्मचिंताए** – शास्त्र के पठन-आदि धर्म चिन्तन के लिए साधु आहार-पानी की गवेषणा करे ॥ ३३ ॥

णिग्गंथो धिइमंतो, णिग्गंथी वि ण करिज्ज छहिं चेव
ठाणेहिं उ इमेहिं, अणइक्कमणाइ से होइ ॥ ३४ ॥

– **धिइमंतो** – धैर्यवान्, **णिग्गंथो** – साधु, **वि** – अथवा, **णिग्गंथी** – साध्वी, **इमेहिं** – इन आगे कहे जाने वाले, **छहिं** – छह, **ठाणेहिं** – कारणों से, **ण करिज्ज** – आहार-पानी न करे, **उ** – तो, **से** – वह, **अणइक्कमणाइ होइ** – तीर्थंकर देव की आज्ञा एवं संयम का अतिक्रमण नहीं करता, अपितु उनकी आज्ञा एवं संयम का पालन करने वाला ही होता है ॥ ३४ ॥

आयंके उवसग्गे, तितिक्खया बंभचेर-गुत्तीसु ।
पाणिदया तवहेउं, सरीरवोच्छेयणट्ठाए ॥ ३५॥

– **१. आयंके** – आतंक-रोग ग्रस्त होने पर **२. उवसग्गे** – देव-मनुष्य तिर्यञ्च सम्बन्धी उपसर्ग आने पर **३. बंभचेरगुत्तीसु** – ब्रह्मचर्य-गुप्ति की, **तितिक्खया** – रक्षा के लिए **४. पाणिदया** – प्राणी-भूत-जीव और सत्त्वों की रक्षा के लिए **५. तवहेउं** – तप करने के लिए और, **६. सरीर वोच्छेयणट्ठाए** – अन्तिम समय में शरीर को छोड़ने की दृष्टि से संथारा करने के लिए । इन छह कारणों से आहार-पानी का त्याग करता हुआ साधु साध्वी तीर्थंकर देव की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता ॥ ३५ ॥

अवसेसं भंडगं गिज्झा, चक्खुसा पडिलेहए ।
परमद्धजोयणाओ, विहारं विहरए मुणी ॥ ३६ ॥



– **मुणी** – मुनि, **अवसेसं** – सभी, **भंडगं** – भंडोपकरण को, गिज्झा – लेकर, **चक्खुसा** – आँख से, **पडिलेहए** – भली प्रकार देख, फिर, **विहारं विहरए** – विहार करे अर्थात् गोचरी के लिए जावे किन्तु, **परं** – उत्कृष्ट, **अद्धजोयणाओ** – आधे योजन (दो कोस) से आगे न जावे ॥ ३६ ॥

भावार्थ – गोचरी के लिए साधु, उत्कृष्ट दो कोस तक जा कर आहार–पानी ला सकता है और यदि आहार–पानी साथ में ले कर विहार करे, तो उस आहार–पानी को दो कोस तक ले जा सकता है, आगे नहीं । आगे ले जाने से मार्गातिक्रान्त दोष लगता है ।

विवेचन – भगवती सूत्र शतक ७ उद्देशा १ में अतिक्रान्त के चार दोष बतलाये हैं – १. क्षेत्रातिक्रान्त २. कालातिक्रान्त ३. मार्गातिक्रान्त और ४. प्रमाणातिक्रान्त ।

जो कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खादिम, स्वादिम इन चार प्रकार के आहारादि को सूर्योदय से पहले ग्रहण करके सूर्योदय के बाद खाता है तो यह 'क्षेत्रातिक्रान्त दोष' कहलाता है ।

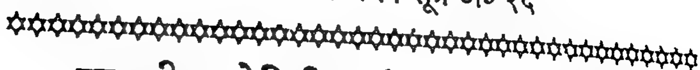
दिन के पहले प्रहर में ग्रहण किये हुए आहार आदि को चौथे प्रहर में खाना 'कालातिक्रान्त' दोष है । इससे यह स्पष्ट होता है कि साधु साध्वी पहले प्रहर में भी गोचरी जा सकते हैं तभी यह कालातिक्रान्त दोष लगने की सम्भावना रहती है अतः तीसरे प्रहर में गोचरी जाना यह एकान्त नियम नहीं हैं ।

आधा योजन अर्थात् दो कोश के उपरान्त ~ 'ए।

पानी आदि करना 'मार्गातिक्रान्त' दोष है ।

बत्तीस कवल से अधिक आहार ।तिक्र'

दोष है ।



चउत्थीए पोरिसीए, णिक्खिवित्ताण भायणं ।
सज्झायं च तओ कुज्जा, सव्वभावविभावणं ॥३७॥

- **चउत्थीए** - चौथी, **पोरिसीए** - पोरिसी में, **भायणं** - भाजन-पात्रों को, **णिक्खिवित्ताण** - रख कर, च - और, **तओ** - उसके बाद, **सव्वभावविभावणं** - सभी भावों को प्रकाशित करने वाली एवं समस्त दुःखों से छुडाने वाली, **सज्झायं** - स्वाध्याय, **कुज्जा** - करे ॥ ३७ ॥

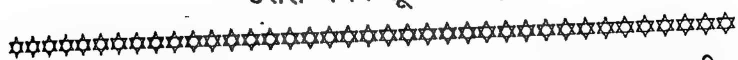
पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
पडिक्कमित्ता कालस्स, सेज्जं तु पडिलेहए ॥३८॥

- **पोरिसीए** - चौथी पोरिसी के, **चउब्भाए** - चौथे भाग में, **गुरुं** - गुरु महाराज को, **वंदित्ताण** - वन्दना करके, तु - तथा **कालस्स** - उस काल से, **पडिक्कमित्ता** - निवृत्त होकर, **तओ** - फिर, **सेज्जं** - शय्या आदि की, **पडिलेहए** - प्रतिलेखना करे ॥ ३८ ॥

पासवणुच्चार भूमिं च, पडिलेहिज्ज जयं जई ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥

- **जई** - यति-साधु, **पासवणुच्चारभूमिं च** - प्रस्रवण (लघुनीत) और उच्चार (बड़ीनीत) के स्थान को, **जयं** - यतनापूर्वक, **पडिलेहिज्ज** - देखे, **तओ** - इसके बाद, **सव्वदुक्खविमोक्खणं** - सभी दुःखों से छुड़ाने वाला, **काउस्सग्गं**- कायोत्सर्ग करे अर्थात् आवश्यक सूत्र के अनुसार प्रथम आवश्यक की आज्ञा लेकर उसमें कायोत्सर्ग करे ॥ ३९ ॥

विवेचन - स्थण्डिल भूमि के २७ मंडल टीकाकार ने दिये हैं वे इस प्रकार हैं -



गांव के अन्दर, समीप, मध्य और दूर यह तीन अध्यासनीय (सामान्य रूप से उपयोग में आने योग्य) और अनध्यासनीय (विशिष्ट प्रयोजन वश उपयोग में आने योग्य) इस प्रकार समीप, मध्य और दूर इस प्रकार प्रत्येक के दो दो भेद होने से गांव के अन्दर के छह मंडल हुए । इसी प्रकार गांव के बाहर भी समीप, मध्य और दूर के दो-दो भेद होने से गांव के बाहर के भी छह मंडल हुए । इस तरह अन्दर और बाहर के मिलाने से बारह मंडल उच्चार (बड़ी नीत) के होते हैं । इसी प्रकार प्रस्रवण (लघुनीत) के भी बारह भेद हो जाते हैं । इसी प्रकार दोनों को मिलाने से क्षेत्र के २४ मंडल होते हैं फिर रात्रि के प्रथम, मध्यम और अंतिम भाग ऐसे काल के तीन भेद मिलाने से सब २७ मंडल होते है । साधु, साध्वी इन २७ मंडलों की प्रतिलेखना करे ।

प्रश्न - दैवसिक (दिन सम्बन्धी) प्रतिक्रमण किस समय करने का विधान है ? प्रतिक्रमण किस समय प्रारम्भ करना चाहिये ? क्या सूर्यास्त होने के पहले प्रतिक्रमण के छहों आवश्यक पूरे हो जाने चाहिये ?

उत्तर - इसका समाधान यह है कि - यहाँ पर अर्थात् उत्तराध्ययन सूत्र के २६ वें अध्ययन की [illegible] सामान्य रूप से साधु साध्वियों का दिन और [illegible] या तक गया है । इसके आगे १८॥ [illegible]
विशेष प्रकार से दिन के कार्य [illegible]
कायोत्सर्ग आदि) रात्रि के [illegible]
गाथा की टीका में इस प्र[illegible]
स्थंडिलानां प्रत्युप्रे[illegible]
दिनकृत्यमभिधाय [illegible]



अर्थ - दिन के चौथे प्रहर के चौथे भाग में उच्चार प्रस्रवण भूमि-स्थण्डिल भूमि की २७ प्रकार से प्रतिलेखना करे । इसके बाद सूर्य अस्त हो जाता है तब मुनि के दिन में करने योग्य कार्य बतला कर अब रात्रि में करने योग्य कार्य बतलाये जा रहे हैं । इस टीका से यह स्पष्ट होता है कि दैवसिक प्रतिक्रमण सूर्यास्त के बाद प्रारम्भ करना चाहिये ।

इसी अध्ययन की ४३ वीं गाथा में बताया गया है कि - प्रतिक्रमण पूरा होने पर स्वाध्याय काल की प्रतिलेखना कर स्वाध्याय करे । दिन और रात की चार संध्यायें कही गई हैं । दिन में प्रातः काल तथा १२ बजे से १ बजे तक मध्याह्न काल । इसी प्रकार शाम को संध्याकाल और रात्रि में १२ बजे से १ बजे तक अर्द्ध रात्रि इन चार सन्ध्या कालों में स्वाध्याय करना निषिद्ध है । यदि कोई करे तो निशीथ सूत्र के १९ वें उद्देशक में इसका प्रायश्चित्त बतलाया है । यदि सूर्यास्त का समय प्रतिक्रमण की समाप्ति का होता तो प्रतिक्रमण समाप्त होते ही स्वाध्याय करना कैसे जाता क्योंकि वह तो सन्ध्या का समय है । इसलिये न्ध्या के अस्वाध्याय की समाप्ति के लगभग ही प्रतिक्रमण की समाप्ति का समय है । उसके बाद स्वाध्याय का समय आ जाता है ।

दशाश्रुतस्कन्ध की सातवीं दशा में बतलाया गया है कि - पडिमाधारी अप्रतिबद्ध विहारी, घोर पराक्रमी, अग्नि या सिंह के आक्रमणं से अपनी काया को विचलित नहीं करने वाले मुनि

"जत्थेव सूरिए अत्थमेज्जा तत्थेव उवायणावित्तए"

अर्थ - जहाँ सूर्यास्त हो जाय वहीं पर पडिमाधारी मुनि को ठहर जाना चाहिये । एक कदम भी आगे नहीं बढ़ना चाहिये ।



इसका यह अर्थ हुआ कि – सूर्यास्त तक पडिमाधारी मुनि विहार कर सकते हैं । जब सूर्यास्त तक विहार कर सकते हैं तो सूर्यास्त तक प्रतिक्रमण पूरा कर लेना कैसे संभव है ?

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि – 'दैवसिक' प्रतिक्रमण सूर्यास्त के बाद प्रारम्भ करना चाहिये ।

प्रश्न – रात्रि का प्रतिक्रमण कब करना चाहिये ?

उत्तर – ४६ वीं गाथा और उसकी आगे की गाथाओं में बतलाया गया है कि – रात्रि का प्रतिक्रमण सूर्योदय से पहले पूरा हो जाना चाहिये । सूर्योदय के पहले ५–४ मिनिट पहले प्रतिक्रमण (रात्रिक) पूरा हो जाना चाहिये किन्तु सूर्योदय के आधा घण्टे या इससे भी पहले तो पूरा नहीं करना चाहिये ।

देवसियं च अइयारं, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो ।
णाणम्मि दंसणे चेव, चरित्तम्मि तहेव य ॥ ४० ॥

– **णाणम्मि** – ज्ञान, **दंसणे** – दर्शन, **च, चेव तहेव, य** – और, **चरित्तम्मि** – चारित्र में लगे हुए, **देवसियं** – दिवस सम्बन्धी, **अइयारं** – अतिचार का, **अणुपुव्वसो** – अनुक्रम से, **चिंतिज्ज** – चिन्तन करे ॥ ४० ॥

पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
देवसियं तु अइयारं, आलोएज्ज जहक्कमं ॥ ४१ ॥

– **पारियकाउस्सग्गो** – कायोत्सर्ग को पार कर, **तओ** – फिर, **गुरुं** – गुरु महाराज को, **वंदित्ताण** – वन्दना करके, **देवसियं**– दिवस सम्बन्धी, **अइयारं** – अतिचारों की, **जहक्कमं** – यथाक्रम से, **आलोएज्ज** – आलोचना करे ॥ ४१ ॥

पडिक्कमित्तु णिस्सलो, वंदित्ताण तओ गुरुं
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्व–दु[illegible] मोक्खण

– **पडिक्कमित्तु** – प्रतिक्रमण करके, **णिस्सलो** – शल्यरहित हो कर, **तओ** – फिर, **गुरुं** – गुरु महाराज को, **वंदिताण** - वन्दना करे, **तओ** – तत्पश्चात्, **सव्वदुक्खविमोक्खणं** – सभी दुःखों से छुड़ाने वाला, **काउस्सग्गं** – कायोत्सर्ग, **कुज्जा** - करे ॥ ४२ ॥

पारियकाउस्सगो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
थुइमंगलं च काऊणं, कालं संपडिलेहए ॥ ४३ ॥

– **पारियकाउस्सग्गो** – कायोत्सर्ग पार कर, **तओ**- फिर, **गुरुं** – गुरु महाराज को, **वंदित्ताण** – वन्दना करके, **च** – और, **थुइमंगलं**– सिद्ध भगवान् की णमोत्थुणं रूप स्तुति मंगल, **काऊणं**- करके, **कालं** – स्वाध्याय के काल को, **संपडिलेहए** – प्रतीक्षा करे अर्थात् स्वाध्याय का समय आने पर स्वाध्याय करे ॥ ४३ ॥

पढमं पोरिसी सज्झायं, बीयं झाणं झियायइ ।
तइयाए णिद्दमोक्खं तु, चउत्थी भुज्जो वि सज्झायं ॥

– रात्रिचर्या **पढमं** – पहली, **पोरिसी** - पोरिसी में, **सज्झायं** – स्वाध्याय करे । **बीयं** – दूसरी पोरिसी में, **झाणं** – ध्यान, **झियायइ** – करे, **तु** – और, **तइयाए** – तीसरी पोरिसी में **णिद्दमोक्खं** – निद्रा को मुक्त करे अर्थात् आती हुई नींद को रोके नहीं किन्तु उसे खुली छोड़ दें तथा, **चउत्थी** – चौथी पोरिसी में **भुज्जो वि** – पुनः, **सज्झायं** – स्वाध्याय करे ॥ ४४ ॥

पोरिसीए चउत्थीए, कालं तु पडिलेहिया ।
सज्झायं तु तओ कुज्जा, अबोहंतो असंजए ॥ ४५ ॥

– **चउत्थीए** – चौथी, **पोरिसीए** – पोरिसी में, **कालं** -

काल को, **पडिलेहिया** - प्रतिलेखना कर-देख कर अर्थात् अस्वाध्याय के कारणों को देख कर, **तओ** - फिर, **असंजए** - असंयत पुरुषों को, **अबोहंतो** - न जगाता हुआ, **सज्झायं** - स्वाध्याय, **कुज्जा** - करे अर्थात् इतने ऊँचे स्वर से स्वाध्याय न करे जिससे गृहस्थ लोग जग जाय फिर वे सावद्य कार्य में लग जाय इससे मुनि को दोष लगता है । अतः स्वाध्याय आदि धीरे स्वर से करना चाहिए ।॥ ४५ ॥

पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
पडिक्कमित्तु कालस्स, कालं तु पडिलेहए ॥ ४६ ॥

- **पोरिसीए** - रात्रि की चौथी पोरिसी के, **चउब्भाए** - चौथे भाग में, **गुरुं** - गुरु महाराज को, **वंदित्ताण** - वन्दना करके, **तओ** - फिर **कालं** - प्रतिक्रमण का समय आया हुआ, **पडिलेहए** - जान कर, **कालस्स** - रात्रि सम्बन्धी काल का, **पडिक्कमित्तु** - प्रतिक्रमण करे ॥ ४६ ॥

आगए कायवोस्सग्गे, सव्वदुक्खविमोक्खणे ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥

- **तओ** - इसके बाद, **सव्वदुक्खविमोक्खणे** - सभी दुःखों से मुक्त कराने वाले, **कायवोस्सग्गे** - कायोत्सर्ग का , **आगए**- आने पर, **सव्वदुक्खविमोक्खणं** - समस्त दु । वाला, **काउस्सग्गं** - कायोत्सर्ग, **कुज्जा** - करे ॥

राइयं च अइयारं, चिंतिज्ज ।
णाणम्मि दंसणम्मि य, ॥

- **णाणम्मि** - ज्ञान में, . य

चरित्तम्मि – चारित्र में, **य** – तथा, **तवम्मि** – तप में लगे हुए, **राइयं** – रात्रि सम्बन्धी, **अइयारं** – अतिचारों का **अणुपुव्वसो** – अनुक्रम से, **चिंतिज्ज** – चिन्तन करे ॥४८ ॥

पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
राइयं तु अइयारं, आलोएज्ज जहक्कमं ॥ ४९ ॥

– **पारियकाउस्सग्गो** – कायोत्सर्ग पार कर, **तओ** – फिर, **गुरुं** – गुरु महाराज को, **वंदित्ताण** – वन्दना करके, राइयं – रात्रि सम्बन्धी, **अइयारं** – अतिचारों की, **जहक्कमं** – यथाक्रम से, **आलोएज्ज** – आलोचना करे ॥ ४९ ॥

पडिक्कमित्तु णिस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥

– **तओ** – उसके बाद, **पडिक्कमित्तु** – प्रतिक्रमण (अतिचारों आलोचना) करके, **णिस्सल्लो** – शल्य रहित होकर, **गुरुं** – महाराज को, **वंदित्ताण** – वन्दना करके, **तओ** – उसके बाद, – सभी दुःखों से छुड़ाने वाला, **काउस्सग्गं**- कायोत्सर्ग, **कुज्जा** – करे ॥ ५० ॥

किं तवं पडिवज्जामि, एवं तत्थ विचिंतए ।
काउस्सग्गं तु पारित्ता, करिज्जा जिणसंथवं ॥५१ ॥

– **तत्थ** – कायोत्सर्ग में, **एवं** – इस प्रकार, **विचिंतए** – विचार करे कि, 'आज मैं, **किं** – कौन-सा, **तवं** – तप, **पडिवज्जामि** – अंगीकार करूँ – इस प्रकार चिन्तन के पश्चात्, **काउस्सग्गं** – कायोत्सर्ग, **पारित्ता** – पार कर, **जिणसंथवं** – जिनसंस्तव करे (जिन भगवान् की स्तुति रूप 'लोगस्स उज्जोयगरे' आदि) **करिज्जा** – करे ॥ ५१ ॥



पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
तवं संपडिवज्जित्ता, करिज्जा सिद्धाण संथवं ॥५२॥

- **पारियकाउस्सग्गो** - कायोत्सर्ग पार कर, **गुरुं** - गुरु महाराज को, **वंदित्ताण** - वन्दना करे, **तओ** - उसके बाद, **तवं** - तप, **संपडिवज्जित्ता** - अंगीकार करे (प्रत्याख्यान करे) फिर, **सिद्धाण** - सिद्ध भगवान् की, **संथवं** - स्तुति, **करिज्जा** - करे अर्थात् 'णमोत्थुणं' का पाठ बोले ॥५२॥

इस प्रकार रात्रि प्रतिक्रमण के छह आवश्यक पूर्ण हुए । यहाँ आवश्यक की विधि का संक्षेप में वर्णन किया गया है । विशेष विस्तार आवश्यक सूत्र में है ।

एसा समायारी, समासेण वियाहिया ।
जं चरित्ता बहू जीवा, तिण्णा संसारसागरं ॥५३॥
॥ त्तिबेमि ॥

- **ऐसा** - यह, **समायारी** - दस प्रकार की समाचारी, **समासेण** - संक्षेप से, **वियाहिया** - कही गई है, **जं** - जिसका, **चरित्ता** - पालन करके, **बहू** - बहुत-से, **जीवा** - जीव, **संसार-सागरं** - संसार-सागर से, **तिण्णा** - तिर गये हैं । इसी प्रकार वर्तमान काल में तिर रहे हैं और आगामी काल में भी तिरेंगे ॥५३॥ **त्तिबेमि** - ऐसा मैं कहता हूँ ।

॥ छब्बीसवाँ अध्ययन समाप्त ॥



'खलुंकीय' सत्ताईसवाँ अध्ययन

थेरे गणहरे गग्गे, मुणी आसी विसारए ।
आइण्णे गणिभावम्मि, समाहिं पडिसंधए ॥ १ ॥

- **थेरे** - स्थविर, **गणहरे** - गणधर अर्थात् गुणों के समूह को धारण करने वाले, **विसारए** - विशारद-सभी शास्त्रों में कुशल, **आइण्णे** - आचार्य के गुणों से युक्त, **समाहिं** - टूटी हुई समाधि को, **पडिसंधए** - फिर से प्राप्त करने वाले, **गग्गे** - गर्ग गोत्रीय अतएव गर्गाचार्य नाम के, **मुणी** - एक मुनि, **आसी** - थे ॥ १ ॥

विवेचन - गर्गाचार्य बड़े विद्वान् और समर्थ आचार्य थे । उनके बहुत से शिष्य थे, किन्तु वे सब अविनीत और स्वच्छन्दाचारी गये । उन अविनीत शिष्यों द्वारा अपने संयम में एवं भाव-ि. में, विघ्न पड़ते देख कर वे उन्हें छोड़ कर पृथक् हो गये और भाव-समाधि में लीन रहते हुए आत्मगुणों की वृद्धि करने लगे ।

यहाँ पर स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न हो सकता कि गर्गाचार्य के सब शिष्य अविनीत कैसे हो गये ?

इसका उत्तर यह है कि अगला बड़ा शिष्य अविनीत हो तो पीछे आने वाले शिष्य उसको देख कर आगे से आगे अविनीत होते जाते हैं । जैसे की कहावत है - **"बिगडियो साधु बिगाडे टोली, सडियो पान सडावे चोली"** अर्थात् पानों की चोली (टोकरी) में कोई एक पान सड गया हो तो वह सारी टोकरी के पानों को सडा देता है । पनवाडी (पान बेचने वाला) प्रातःकाल



टोकरी के सब पानों को देखता है और सडे हुए पान को निकाल फेंकता है। इसी प्रकार साधुओं के समूह में कोई एक साधु दोष सेवी शिथिलाचारी हो तो वह सारे साधु समूह को शिथिलाचारी वना देता है । अतः आचार्य का कर्त्तव्य है की ऐसे शिथिलाचारी (जो प्रायश्चित्त देने पर भी बारबार दोष सेवन करना है) साधु को गच्छ से बाहर कर देना चाहिए । जिससे कि दूसरे साधुओं की सुरक्षा हो सके ।

वहणे वहमाणस्स, कंतारं अइवत्तइ ।
जोए वहमाणस्स, संसारो अइवत्तइ ॥ २ ॥

– गर्गाचार्य अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए कहते हैं – जिस प्रकार, **वहणे** – गाड़ी में, **वहमाणस्स** – जोता हुआ विनीत बैल, गाड़ी और गाड़ीवान् दोनों को ले कर सुखपूर्वक, **कंतारं** – कान्तार-अटवी को, **अइवत्तइ** – पार कर जाता है, उसी प्रकार, **जोए** – योग-संयम-मार्ग में, **वहमाणस्स** – प्रवृत्त होता हुआ विनीत शिष्य, स्वयं और गुरु दोनों ही, **संसारो** – संसार से, **अइवत्तइ** – पार हो जाते हैं ॥ २ ॥

खलुंके जो उ जोएइ, विहम्माणो किलिस्सइ ।
असमाहिं च वेएइ, तोत्तओ य से भज्जइ ॥ ३ ॥

– **जो** – जो गाड़ीवान्, **खलुंके** – धृष्ट और दुष्ट (गलियार-आलसी अविनीत) बैलों को, **जोएइ** – गाड़ी में जोतता है । वह उन्हें, **विहम्माणो** – मारते-मारते थक जाता है, **उ** – और. **किलिस्सइ** – क्लेशित और खेदित होता है, **च** – तथा, असमाधि (दुःख) का, **वेएइ** – अनुभव करता और

मारते, **से** - उस गाड़ीवान् का, **तोत्तओ** - चाबुक भी, **भज्जइ** - टूट जाता है ॥ ३ ॥

एगं डसइ पुच्छम्मि, एगं विंधइऽभिक्खणं ।
एगो भंजइ समिलं, एगो उप्पहपट्ठिओ ॥ ४ ॥

- कोई गाड़ीवान् क्रोधित होकर, **एगं** - ऐसे किसी एक गलियार बैल की, **पुच्छम्मि** - पूँछ, **डसइ** - दांतों से काटता है तथा, **एगं** - किसी एक बैल के, **अभिक्खणं** - वार-वार, **विंधइ** - लोहे की आर चुभा कर बींध डालता है तब, **एगो** - कोई एक गलियार बैल, **समिलं**- जुए को, **भंजइ** - तोड़ देता है और, **एगो** - कोई एक, **उप्पहपट्ठिओ** - उत्पथप्रस्थित-कुमार्ग में दौड़ जाता है । इस प्रकार गलियार बैल और गाड़ीवान् दोनों दुःखी होते हैं ॥ ४ ॥

एगो पडइ पासेणं, णिवेसइ णिविज्जइ ।
उक्कुद्दइ उप्फिडइ, सढे बालगविं वए ॥ ५ ॥

- **एगो** - कोई एक गलियार बैल, **पासेणं** - एक पसवाड़े **पडइ**- गिर जाता है, **णिवेसइ** - कोई बैठ जाता है, **णिविज्जइ** - कोई लेट जाता है, **उक्कुद्दइ** - कोई कूदने लगता है, **उप्फिडइ** - कोई मेंढ़क के समान छलांगें मारता है और, **सढे** - कोई दुष्ट बैल, **बालगविं** - तरुण गाय को देख कर उसकी ओर, **वए** - दौड़ने लगता है ॥ ५ ॥

माई मुद्धेण पडइ, कुद्धे गच्छइ पडिप्पहं ।
मयलक्खेण चिट्ठइ, वेगेण य पहावइ ॥ ६ ॥

☆☆☆

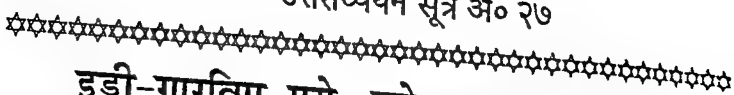
- **माई** - कोई मायावी बैल, **मुद्धेण** - माथा नीचे करके **पडइ** - गिर पड़ता है । **कुद्धे** - कोई क्रोध में आ कर, **पडिप्पहं** - प्रतिपथ-सीधा मार्ग छोड़ कर कुमार्ग में, **गच्छे** - दौड़ जाता है, **मयलक्खेण**- मृतलक्षण-कोई बैल मृत्यु होने का ढोंग करके, **चिट्ठइ** - पड़ जाता है, **य** - और कोई, **वेगेण** - वेग से दौड़ने लगता है ॥ ६ ॥

छिण्णाले छिंदइ सेल्लिं, दुद्दंतो भंजए जुगं ।
से वि य सुस्सुयाइत्ता, उज्जहित्ता पलायए ॥ ७ ॥

- **छिण्णाले** - कोई दुष्ट बैल, **सेल्लिं** - रश्मि-रस्सी को **छिंदइ** - तोड़ देता है, **दुद्दंतो** - दुर्दान्त (कठिनाई से वश में किया जा सकने वाला) कोई बैल, **जुगं** - जुए (धूंसरे) को, **भंजए** - तोड़ डालता है, **य** - और, **से वि** - फिर वह दुष्ट बैल, **सुस्सुयाइत्ता** - फुफकार मार कर, **उज्जहित्ता** - गाड़ीवान् के हाथ से छूट कर, **पलायए** - भाग जाता है ॥ ७ ॥

खलुंका जारिसा जुज्जा, दुस्सीसा वि हु तारिसा ।
जोइया धम्म-जाणम्मि, भज्जंति धिइदुब्बला ॥ ८ ॥

- **जारिसा** - जैसे, **जुज्जा** - गाड़ी में जोते हुए, **खलुंका** - धृष्ट-गलियार बैल गाड़ी को तोड़ कर एवं गाड़ीवान् को दुःखी करके भाग जाते हैं, **तारिसा** - वैसे ही, **धम्म जाणम्मि** - धर्म रूपी गाड़ी में, **जोइया** - जुते हुए, **धिइदुब्बला** - धृतिदुर्बल-अधीर कायर, **दुस्सीसा वि** - दुष्ट स्वच्छन्दी शिष्य भी, संयम-धर्म को भंग कर देते हैं ॥ ८ ॥



इड्ढी-गारविए एगे, एगेऽत्थ रस-गारवे ।
साया-गारविए एगे, एगे सुचिर-कोहणे ॥ ९ ॥

- गर्गाचार्य अपने शिष्यों के विषय में कहते हैं कि-अत्थ-अत्र-मेरे इन शिष्यों में से, **एगे** - कोई एक शिष्य, **इड्ढीगारविए** - ऋद्धि से गर्वित बने हुए हैं । **एगे** - कोई एक, **रसगारवे** - रसलोलुप बन गये हैं । **एगे** - कोई एक, **सायागारविए** - साताशील (सुख शीलिये) बन गये हैं और, **एगे** - कोई, **सुचिर-कोहणे** - चिर क्रोधी हैं ॥ ९ ॥

भिक्खालसिए एगे, एगे ओमाण-भीरुए ।
थद्धे एगे अणुसासम्मि, हेऊहिं कारणेहिं य ॥ १० ॥

- **एगे** - कोई एक शिष्य, **भिक्खालसिए** - भिक्षा लाने में आलसी बन गये हैं । **एगे** - कोई एक शिष्य, **ओमाण भीरुए** - अपमान भीरु बन गये हैं (भिक्षा मांगने में अपना अपमान समझते हैं) और, **एगे** - कोई एक, **थद्धे** - अहंकारी बन गये हैं । ऐसे शिष्यों को जब, **अणुसासम्मि** - मैं योग्य शिक्षा देता हूँ तो वे, **हेऊहिं** - अनेक हेतु, **य** - और, **कारणेहिं** - कारणों से कुतर्क करते हैं ॥ १० ॥

सो वि अंतरभासिल्लो, दोसमेव पकुव्वइ ।
आयरियाणं तु वयणं, पडिकूलेइऽभिक्खणं ॥ ११ ॥

- जब गुरु महाराज शिक्षा देते हैं तब भी, **सो वि**- वह दुष्ट शिष्य, **अंतरभासिल्लो** - बीच ही में बोल उठता है और, **दोसमेव**- गुरु महाराज का ही दोष, **पकुव्वइ** - निकालता है, **तु** - और, **अभिक्खणं** - बार-बार, **आयरियाणं** - आचार्य महाराज के, **वयणं**-वचनों से, **पडिकूलेइ** - प्रतिकूल आ करता है ॥ ११ ॥

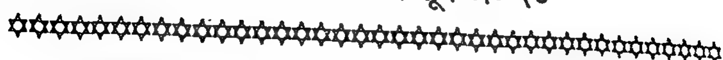


ण सा ममं वियाणाइ, ण वि सा मज्झ दाहिइ।
णिग्गया होहिइ मण्णे, साहू अण्णोऽत्थ वच्चउ ॥

– जब गुरु महाराज भिक्षा के लिए भेजते हैं, अथवा किसी ग्लान साधु के लिए विवक्षित औषधि या आहारादि लाने के लिए कहते हैं, तब अविनीत शिष्य बहाना बनाता हुआ इस प्रकार उत्तर देता है कि, **सा** – 'वह श्राविका तो, **ममं** – मुझे, **ण वियाणाइ** – पहचानती ही नहीं है, **वि** – अथवा, **सा** – वह, **मज्झ** – मुझे, **ण दाहिइ** – भिक्षा देगी ही नहीं । **मण्णे** – मैं समझता हूँ इस समय वह, **णिग्गया होहिइ** – घर से बाहर गई हुई होगी । अच्छा तो यह है कि, **अत्थ** – इस कार्य के लिए आप, **अण्णो** – किसी दूसरे, **साहू**– साधु को, **वच्चउ** – भेज दें' अथवा कोई अविनीत शिष्य ऐसा भी कह देता है कि 'आप बार-बार मुझे ही मुझे कहते हैं । मेरे सिवाय दूसरे साधु भी तो हैं, उन्हें क्यों नहीं कहते ?' इस प्रकार अविनयपूर्वक उत्तर देकर वे गुरु महाराज को खेदित करते हैं ॥ १२ ॥

पेसिया पलिउंचंति, ते परियंति समंतओ ।
राय-वेट्ठिं च मण्णंता, करेंति भिउडिं मुहे ॥ १३ ॥

– **पेसिया** – किसी काम के लिए भेजे हुए अविनीत शिष्य, काम तो नहीं करते और पूछने पर, **पलिउंचंति** – इन्कार कर देते हैं कि 'आपने मुझे उस काम के लिए कहा ही कब था ?' **ते** – वे काम से जी चुरा कर, **समंतओ** – इधर-उधर, **परियंति** – घूमते रहते हैं, **च** – यदि गुरु का कार्य करते हैं, तो उसे, **रायवेट्ठिं** – राजा की बेगार सरीखा, **मण्णंता** – मानते हुए, **मुहे** – मुख पर, **भिउडिं** – भृकुटि, **करेंति** – करते हैं अर्थात् क्रोधित होकर मुँह पर चढ़ाते हैं । १३ ॥



विवेचन - पुराने समय में जब राजाओं का राज्य था तब राज घराने में कोई काम होता तो राजा अपने किसी पुलिस (कर्मचारी) को भेजता कि पांच मजदूरों को ले आओ तो वह राज कर्मचारी बाजार में से किन्ही पांच मजदूरों को पकड कर राजमहल में ले जाता, दिन भर उन से काम करवाता और शाम को उनको कुछ भी मजदूरी दिये बिना घर भेज देता । वे मजदूर भी इस बात को जानते थे कि यहाँ से मजदूरी तो कुछ मिलना है नहीं, इसलिये बिना मन काम करते। जब राज कर्मचारी देखता तो काम करते अन्यथा बैठे रहते। इसलिये किसी से जबरदस्ती काम करवाना अथवा बिना मन काम करवाना वेठ-बेगार कहलाता है।

वाइया संगहिया चेव, भत्तपाणेण पोसिया ।
जायपक्खा जहा हंसा, पक्कमंति दिसो दिसिं ॥

- गर्गाचार्य अपने मन में विचार करते हैं कि, वाइया - मैंने इन शिष्यों को पढ़ाया-गुनाया, **संगहिया** - दीक्षित किया, **चेव** - और, **भत्तपाणेण** - आहार-पानी से, **पोसिया** - पालन पोषण किया किन्तु, **जहा** - जिस प्रकार, **जायपक्खा** - पंखों के निकल आने पर, **हंसा** - हंस, **दिसोदिसिं** - अपनी इच्छानुसार दिशा विदिशा में, **पक्कमंति** - उड़ जाते हैं । इसी प्रकार ये मेरे शिष्य भी स्वच्छन्द बन कर अपनी इच्छानुसार कार्य करते हैं ॥ १४ ॥

अह सारही विचिंतेइ, खलुंकेहिं समागओ ।
किं मज्झ दुट्ठसीसेहिं, अप्पा मे अवसीयइ ॥ १५ ॥

- **अह** - जिस प्रकार, **सारही** - सारथि-आलसी बैलों को हांकने वाला गाड़ीवान् दुःखित होता है उसी प्रकार, **खलुंकेहिं** - गलियार बैल के समान अविनीत शिष्यों से, **समागओ** - खेद को

प्राप्त हुए गर्गाचार्य, **विचिंतेइ** – विचार करते हैं कि, **दुट्ठसीसेहिं** – इन दुष्ट शिष्यों से, **मज्झ** – मुझे, **किं** – क्या लाभ है ? प्रत्युतः इनके संसर्ग से, **मे** – मेरी, **अप्पा** – आत्मा, **अवसीयइ** – खेदित और क्लेशित होती है । अतः इनके संग का त्याग कर के मुझे अपनी आत्मा का कल्याण करना ही श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥

जारिसा मम सीसाओ, तारिसा गलिगद्दहा ।
गलिगद्दहे जहित्ताणं, दढं पगिण्हइ तवं ॥ १६ ॥

– **जारिसा** – जिस प्रकार, **गलिगद्दहा** – गलियार गधे होते हैं, **तारिसा** – वैसे ही, **मम**– मेरे, **सीसाओ** – ये शिष्य हैं । इस प्रकार विचार कर गर्गाचार्य, **गलिगद्दहे** – गलियार गधों के समान अपने अविनीत शिष्यों को, **जहित्ताणं** – छोड़ कर, **दढं** – दृढ़ता पूर्वक, **तवं** – तप-संयम का, **पगिण्हइ** – पालन करने लगे ॥ १६ ॥

मिउ-मद्दव-संपण्णो, गंभीरो सुसमाहिओ ।
विहरइ महिं महप्पा, सीलभूएण अप्पणा ॥
॥ १७ ॥ त्तिबेमि ॥

– **मिउमद्दवसंपण्णो** – मृदु मार्दव
कोमलता सरलता सहित), **गंभीरो** –
सुसमाधिवन्त वे, **महप्पा** – महात्मा
शीलभूत श्रेष्ठ आचार वाले,
कर, **महिं** – पृथ्वी पर, **विहरइ** –
का पालन करके और आठ
प्त हो गये ॥ १७ ॥

॥ त

मोक्षमार्गगति अट्ठाईसवाँ अध्ययन

मोक्खमग्गगइं तच्चं, सुणेह जिणभासियं ।
चउकारणसंजुत्तं, णाण-दंसण-लक्खणं ॥ १ ॥

– **जिणभासियं** – जिनेन्द्र भगवान् द्वारा भाषित, कथित, **चउकारणसंजुत्तं** – सम्यग्ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप इन चार कारणों से संयुक्त अर्थात् इन चार कारणों से प्राप्त होने वाली, **णाणदंसणलक्खणं** – ज्ञान-दर्शन लक्षण वाली, **तच्चं** – तथ्य-यथार्थ, **मोक्खमग्गगइं** – मोक्षमार्ग गति को, **सुणेह** – सुनो अर्थात् मैं मोक्षमार्ग गति नामक अध्ययन का वर्णन करता हूँ सो तुम सुनो ॥ १ ॥

णाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एस मग्गोत्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥ २ ॥

– **वरदंसिहिं** – वरदर्शी-संसार के समस्त पदार्थों को देखने वाले सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, **जिणेहिं** – जिनेन्द्र देवों ने, **णाणं** – ज्ञान, **दंसणं** – दर्शन, **चरित्तं** – चारित्र, **च, चेव, च,** तहा – और **तवो** – तप रूप, **एस** – यह, **मग्गो त्ति** – मोक्ष का मार्ग, **पण्णत्तो** – फ़रमाया है ॥ २ ॥

णाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एयं मग्ग-मणुपत्ता, जीवा गच्छंति सुग्गइं ॥ ३ ॥

– **णाणं** – ज्ञान, **दंसणं** – दर्शन, **चरित्तं** – चारित्र, **च, चेव,** च, तहा – और, **तवो** – तप यह मोक्ष का मार्ग है । **एयं** – इस,



मग्गं - मार्ग का, **अणुपत्ता** - आचरण करके, **जीवा** - जीव, **सुग्गइं** - सुगति-मोक्ष को, **गच्छंति** - प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

तत्थ पंचविहं णाणं, सुयं आभिणिबोहियं ।
ओहिणाणं तु तइयं, मणणाणं च केवलं ॥ ४ ॥

- **तत्थ** - मोक्ष के जो चार कारण बताये गये हैं उनमें, **णाणं** - ज्ञान, **पंचविहं** - पाँच प्रकार का है, **आभिणिबोहियं** - आभिनिबोधिक (मतिज्ञान) **सुयं** - श्रुतज्ञान, **तइयं** - तीसरा, **ओहिणाणं** - अवधिज्ञान, **मणणाणं** - मनःपर्यय ज्ञान, **च** - और, **केवलं** - केवल ज्ञान ॥ ४ ॥

विवेचन - आभिनिबोधिक (मतिज्ञान) आदि पांच ज्ञानों का विस्तृत रूप से वर्णन नंदी सूत्र में तथा ठाणांग ५ उद्देशक ३ में है । जिसका हिन्दी अर्थ जैन सिद्धान्त बोल संग्रह बीकानेर के प्रथम भाग में है ।

इस गाथा में श्रुत ज्ञान का ग्रहण पहले किया है । इसका कारण यह है कि मतिज्ञान आदि ज्ञानों का स्वरूप प्रायः श्रुतज्ञान के अधीन है । इस बात को बतलाने के लिये यहां श्रुत ज्ञान का ग्रहण पहले किया गया है ।

एयं पंचविहं णाणं, दव्वाण य गुणाण य ।
पज्जवाण य सव्वेसिं, णाणं णाणीहिं देसियं ॥५ ॥

- **णाणीहिं** - ज्ञानी पुरुषों ने, **दव्वाण** - [illegible] -
गुण, **य** - और, **सव्वेसिं** - उनकी समस्त, [illegible] ओं,
णाणं - जानने के लिए, **एयं** - यह उपरोक्त, [illegible]
का, **णाणं** - ज्ञान, **देसियं** - देशित - फरमाया [illegible]



गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा ।
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे ॥६ ॥

- **दव्वं** - द्रव्य, **गुणाणं** - गुणों का, **आसओ** - आश्रय - आधार है, अर्थात् जिसके आश्रय में गुण रहते हैं उसे 'द्रव्य' कहते हैं और **गुणा** - गुण, **एगदव्वस्सिया** - अपने आधारभूत एक द्रव्य में रहते हैं, **तु** - और, **पज्जवाणं** - पर्यायों का, **लक्खणं** - लक्षण यह है कि, **उभओ** - पर्यायें द्रव्य और गुण दोनों में **अस्सिया**- आश्रित रहने वाली, **भवे** - हैं अर्थात् द्रव्य और गुण दोनों में जो रहे, उसे 'पर्याय' कहते हैं ॥ ६ ॥

धम्मो अधम्मो आगासं, कालो पुग्गल-जंतवो ।
एस लोगो त्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥७ ॥

- **धम्मो** - धर्मास्तिकाय, **अधम्मो** (अहम्मो) - अधर्मास्तिकाय, **आगासं** - आकाशास्तिकाय, **पुग्गलजंतवो** - पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और, **कालो** - काल, **एस** - यह छह द्रव्य रूप, **लोगोत्ति** - लोक है, ऐसा, **वरदंसिहिं** - वरदर्शी, केवलदर्शी, **जिणेहिं** - राग द्वेष को जीतने वाले जिनेश्वर देवों ने, **पण्णत्तो** - फरमाया है ॥ ७ ॥

विवेचन - धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और काल ...तने क्षेत्र में हैं, उतने क्षेत्र को 'लोक' कहते हैं । जहाँ आकाश के सिवाय अन्य कोई द्रव्य नहीं है, उसे 'अलोक' कहते हैं ।

धम्मो अधम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहियं ।
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल-जंतवो ॥८ ॥

☆☆

- **धम्मो** - धर्म, **दव्वं** - द्रव्य, **अधम्मो** - अधर्म द्रव्य, **आगासं** - आकाश द्रव्य ये, **इक्किक्कं** - एक-एक, **आहियं** - कहे गये हैं, **य** - और, **कालो** - काल, **पुग्गलजंतवो** - पुद्गल और जीव, ये तीनों, **दव्वाणि** - द्रव्य, **अणंताणि** - अनन्त कहे गये हैं ॥८॥

गइ-लक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाण-लक्खणो ।
भायणं सव्वदव्वाणं, णहं ओगाह-लक्खणं ॥९ ॥

- **धम्मो** - धर्मास्तिकाय, **गइलक्खणो** - गति-लक्षण वाला है, अर्थात् धर्मास्तिकाय जीव और पुद्गलों को गति करने में सहायता देता है, **उ** - और, **अहम्मो (अधम्मो)** - अधर्मास्तिकाय, **ठाणलक्खणो** - स्थिति लक्षण वाला है (अधर्मास्तिकाय जीव और पुद्गलों को ठहरने में सहायता देता है) और, **सव्वदव्वाणं** - सभी द्रव्यों का, **भायणं** - भाजन (पात्र) आधारभूत, **णहं** - नभ-आकाश, **ओगाहलक्खणं** - अवगाहन-लक्षण वाला है । (समस्त पदार्थों का आधारभूत आकाश द्रव्य है और सब को अवकाश-स्थान देना उसका लक्षण है) ॥ ९ ॥

वत्तणा लक्खणो कालो, जीवो उवओग-लक्खणो।
णाणेणं दंसणेणं च, सुहेण य दुहे

- **कालो** - काल द्रव्य, वत्त [illegible]
वाला है (जो जीव और पुद्गलों में नवीन
रूप परिणमन करता रहता है, एवं सभी
बदलता रहता है, वह 'काल द्रव्य' [illegible]
उवओगलक्खणो - [illegible])

ज्ञान-दर्शन रूप उपयोग हो उसे 'जीव' कहते हैं) वह,

णाणेणं - ज्ञान, **दंसणेणं** - दर्शन, **सुहेण** - सुख **च, य, य** - और, **दुहेण** - दुःख द्वारा पहचाना जाता है ॥ १० ॥

णाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥ ११ ॥

- **णाणं** - ज्ञान, **दंसणं** - दर्शन, **चरित्तं** - चारित्र, **तवो** - तप, **वीरियं** - वीर्य **च, चेव, च, तहा, य** - और, **उवओगो** - उपयोग, **एयं** - ये, **जीवस्स** - जीव के, **लक्खणं** - विशिष्ट लक्षण हैं, अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये जीव-तत्त्व को छोड़ कर अन्य किसी में नहीं रहते, इसलिए ये जीव के विशिष्ट (असाधारण) लक्षण हैं ॥ ११ ॥

सद्दंधयार-उज्जोओ, पभा छायाऽऽतवो इ वा ।
वण्ण-रस-गंध-फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥

- **सद्द** - शब्द, **अंधयार** - अन्धकार, **उज्जोओ** - उद्योत, **पभा** - प्रभा, **छाया** - छाया, **आतवो** - आतप-धूप (उष्ण प्रकाश) और, **वण्णरसगंधफासा** - वर्ण, रस, गंध और स्पर्श, त्ति वा ये सब, **पुग्गलाणं** - पुद्गलों के, **लक्खणं** - लक्षण हैं । इनके द्वार पुद्गल द्रव्य पहचाना जाता है ॥ १२ ॥

एगत्तं च पुहत्तं च, संखा संठाणमेव य ।
संजोगा य विभागा य, पज्जवाणं तु लक्खणं ॥ १३ ॥

- **एगत्तं** - एकत्व (इकट्ठे होना), **च** - और, **पुहत्तं** - पृथक्त्व (बिखर जाना), **संखा** - संख्या (एक, दो, तीन आदि संख्या) **च** - और, **संठाणमेव** - संस्थान (आकार), **संजोगा** -

☆☆

संयोग और, **विभागा** - विभाग (वियोग) यह, **पज्जवाणं** - पर्यायों का, **लक्खणं** - लक्षण है ॥ १३ ॥

जीवाजीवा य बंधो य, पुण्णं पावासवो तहा ।
संवरो णिज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया णव ॥ १४ ॥

- **जीवा** - जीव, **अजीवा** - अजीव, **बंधो** - बन्ध, **पुण्णं** - पुण्य, **पाव** - पाप, **आसवो** - आस्रव, **संवरो** - संवर, **णिज्जरा** - णिर्जरा, **य, य, तहा** - और, **मोक्खो** - मोक्ष, **एए** - ये, **णव** - नव, **तहिया** - यथातथ्य (तत्त्व) **संति** - हैं ।। १४ ॥

तहियाणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं ।
भावेण सद्दहंतस्स, सम्मत्तं तं वियाहियं ॥ १५ ॥

- इन उपरोक्त, **तहियाणं** - तथ्य-सत्य, **भावाणं** - जीवादि तत्त्वों का, **सब्भावे** - सद्भाव (असली स्वरूप बतलाने वाले) **उवएसणं**- उपदेश का, **भावेण** - भाव पूर्वक-अन्तःकरण से, **सद्दहंतस्स** - श्रद्धा करने वाले जीव के, **सम्मत्तं** - सम्यक्त्व (सम्यग्-दर्शन) होता है, **तं** - ऐसा, **वियाहियं** - जिनेन्द्र भगवान् ने फ़रमाया है ॥

णिसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्त बीयरुइमेव ।
अभिगमवित्थाररुई, किरिया संखेवधम्मरुई ॥ १६ ॥

- सम्यक्त्व का स्वरूप बता कर, अव उसकी
नाम बताये जाते हैं - **णिस्सग्गुवएसरुई** - १.
२. उपदेश रुचि, **आणारुई** - ३. आज्ञारुचि, ६.
४. सूत्ररुचि, ५. बीजरुचि, **अभिगमवित्थाररुई** - रुचि
७. विस्ताररुचि, **किरियासंखेवधम्मरुई** ...
९. संक्षेपरुचि और, १०. **धर्मरु...** ॥ १६ ॥



भूयत्थेणाहिगया, जीवा जीवा य पुण्णपावं च ।
सहसम्मइयासवसंवरो य, रोएइ उ णिसग्गो ॥ १७ ॥

– **सहसम्मुइया** – गुरु आदि के उपदेश के बिना स्वयमेव जातिस्मरण या प्रतिभा आदि ज्ञान द्वारा, **जीवा** – जीव, **य** – और, **अजीवा** – अजीव, **पुण्णं** – पुण्य, **च** – और, **पावं** – पाप, **आसव संवरो** – आस्रव और संवर, **य** – तथा बन्ध, निर्जरा और मोक्ष, **भूयत्थेण** – ये पदार्थ सत्य हैं, **उ** – इस प्रकार जिसने **अहिगया** – जान लिया है, उसके जो, **रोएइ** – रुचि होती है उसे, **णिस्सग्गो** – 'निसर्ग रुचि' कहते हैं ॥ १७ ॥

जो जिणदिट्ठे भावे, चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव ।
एमेव णण्णहत्ति य, णिसग्गरुइत्ति णायव्वो ॥ १८ ॥

– **जो** – जो प्राणी, **सयमेव** – गुरु आदि के उपदेश के बिना स्वयमेव जातिस्मरण एवं प्रतिभा आदि ज्ञान द्वारा, **जिणदिट्ठे** – जिनदृष्ट–राग द्वेष के विजेता तीर्थंकर देव के बताये हुए, **भावे** – [illegible]आदि पदार्थों को, **चउव्विहे**– चार प्रकार से अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, [illegible]ल, भाव से अथवा नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव से, **एमेव** – 'ये इस प्रकार ही हैं, **णण्णहत्ति** – न अन्यथा–अन्य प्रकार से नहीं हैं' इस प्रकार, **सद्दहाइ** – श्रद्धा करता है वह **णिसग्गरुइत्ति** – 'निसर्ग रुचि' वाला है ऐसा, **णायव्वो** – जानना चाहिए ॥ १८ ॥

एए चेव उ भावे, उवइट्ठे जो परेण सद्दहइ ।
छउमत्थेण जिणेण व, उवएसरुइत्ति णायव्वो ॥

– **जिणेण** – केवली भगवान् के पास से, **व** – अथवा, **परेण** – दूसरे, **छउमत्थेण** – छद्मस्थ गुरुओं से, **उवइट्ठे** – उपदेश सुन

कर जो, **एए चेव** - इन, **भावे** - जीवादि तत्त्वों की, **सद्दहइ (सद्दहाइ)** - श्रद्धा करता है वह, **उवएसरुइत्ति** - 'उपदेश रुचि' वाला है ऐसा, **णायव्वो** - जानना चाहिए ॥ १९ ॥

रागो दोसो मोहो, अण्णाणं जस्स अवगयं होइ ।
आणाए रोयंतो, सो खलु आणारुई णामं ॥ २० ॥

- **जस्स** - जिसके, **रागो** - राग, **दोसो** - द्वेष, **मोहो** - मोह और, **अण्णाणं** - अज्ञान, **अवगयं** - एक देशतः नष्ट, **होइ** - हो गया है और, **आणाए** - आचार्य की आज्ञा मात्र से ही, **रोयंतो** - जिसको जीवादि तत्त्वों को जानने की रुचि होती है, **सो** - वह, **खलु** - निश्चय से, **आणारुई णामं** - 'आज्ञा रुचि' है ॥ २० ॥

नोट - प्रज्ञापना सूत्र पद १ में 'आज्ञा रुचि' का अर्थ इस प्रकार दिया है-'जो हेतु को नहीं जानता हुआ केवल जिनाज्ञा से ही प्रवचन पर रुचि-श्रद्धा रखता है और समझता है कि जिनेश्वर भगवान् द्वारा उपदिष्ट तत्त्व ऐसे ही हैं, अन्यथा नहीं, वह आज्ञा रुचि है।'

जो सुत्तमहिज्जंतो, सुएण ओगाहइ उ सम्मत्तं ।
अंगेण बाहिरेण व, सो सुत्तरुइत्ति णायव्वो ॥ २१ ॥

- **जो** - जो, **सुत्तं** - सूत्र-श्रुत, **अहिज्जंतो** - पढ़ता हुआ, **अंगेण**- आचारांगादि अंगप्रविष्ट, **व** - अथवा, **बाहिरेण** - उत्तराध्ययन आदि अंगबाह्य, **सुएण** - सूत्रों से, **सम्मत्तं** - सम्यक्त्व, **ओगाहइ** - प्राप्त करता है, **सो** - वह, **सुत्तरुइत्ति** - 'सूत्ररुचि' है, ऐसा **णायव्वो** - जानना चाहिए । अंगप्रविष्ट तथा अंगबाह्य सूत्रों को पढ़ कर जीवादि तत्त्वों पर श्रद्धा करना 'सूत्ररुचि' है ॥ २१ ॥

एगेण अणेगाइं पयाइं, जो पसरइ उ सम्मत्तं ।
उदएव्व तेल्लबिंदू, सो बीयरुइत्ति णायव्वो ॥

- **उदएव्व तेल्लबिंदू** - जिस प्रकार जल में पड़ी हुई तैल की बूंद फैल जाती है उसी प्रकार, **जो** - जिसकी, **सम्मत्तं** - सम्यक्त्व, **एगेण** - एक जीवादि पद से, **अणेगाइं** - अनेक, **पयाइं**- पदों में, **पसरइ** - फैल जाती हैं, **सो** - वह, **बीयरुइत्ति** - 'बीजरुचि' है ऐसा, **णायव्वो** - जानना चाहिए ॥ २२ ॥

सो होइ अभिगमरुई, सुयणाणं जेण अत्थओ दिट्ठं।
इक्कारस अंगाइं, पइण्णगं दिट्ठिवाओ य ॥ २३ ॥

- **जेण** - जिसने, **इक्कारस** - ग्यारह, **अंगाइं** - अंग, **पइण्णगं** - प्रकीर्णक सूत्र, **य** - और, **दिट्ठिवाओ** - दृष्टिवाद तथा उपांग सूत्रों में जो, **सुयणाणं** - श्रुतज्ञान है, उसको, **अत्थओ** - अर्थ रूप से, **दिट्ठं** - जान लिया है, **सो** - वह, **अभिगमरुई** - 'अभिगम रुचि' **होइ** - है ॥ २३ ॥

दव्वाण सव्वभावा, सव्वपमाणेहिं जस्स उवलद्धा।
सव्वाहिं णयविहीहिं च, वित्थाररुइ त्ति णायव्वो ॥

- **जस्स** - जिसने, **दव्वाण** - द्रव्यों की, **सव्वभावा** - समस्त पर्यायों को, **सव्वपमाणेहिं** - प्रत्यक्षादि सभी प्रमाणों से, **च** - और, **सव्वाहिं** - सब, **णयविहीहिं** - नय विधि-नैगमादि नयों से, **उवलद्धा** - जान लिया है, **वित्थाररुइ त्ति** - वह 'विस्ताररुचि' वाला है, ऐसा, **णायव्वो** - जानना चाहिए ॥ २४ ॥

दंसण णाण-चरित्ते, तवविणए सच्चसमिइगुत्तीसु।
जो किरियाभावरुई, सो खलु किरियारुई णाम ॥

- **जो** - जो, **दंसणणाणचरित्ते** - दर्शन, ज्ञान, चारित्र,

☆☆

तव विणए - तप, विनय, **सच्चसमिइगुत्तीसु** - सत्य समिति और गुप्ति की, **किरियाभावरुई** - क्रियाओं का पालन करने में भावपूर्वक रुचि रखता है, **सो** - वह, **खलु** - निश्चय से, **किरियारुई णाम**- 'क्रियारुचि' है ॥ २५ ॥

अणभिग्गहियकुदिट्ठी, संखेवरुइ त्ति होइ णायव्वो।
अविसारओ पवयणे, अणभिग्गहिओ य सेसेसु ॥

- **अणभिग्गहियकुदिट्ठी** - जिसने मिथ्यामत का ग्रहण नहीं किया है तथा, **सेसेसु** - शेष-जो कपिलादि के शास्त्रों का भी ज्ञाता नहीं है, **य**-और, **पवयणे**-जो जिन-प्रवचनों में, **अविसारओ**- विशारद (प्रवीण) नहीं है, किन्तु शुद्ध श्रद्धा रखता है वह, **संखेवरुइ त्ति** - 'संक्षेपरुचि' **होइ** - होता है, ऐसा, **णायव्वो** - जानना चाहिए ॥ २६ ॥

जो अत्थिकायधम्मं, सुयधम्मं खलु चरित्तधम्मं च ।
सद्दहइ जिणाभिहियं, सो धम्मरुइत्ति णायव्वो ॥

- **जो** - जो, **जिणाभिहियं** - जिनेन्द्र भगवान् के कहे हुए, **अत्थिकायधम्मं** - धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आदि तथा उनके गति, स्थिति आदि धर्मों और, **सुयधम्मं** - श्रुतधर्म-आगम के स्वरूप एवं **चरित्तधम्मं** - सामायिकादि चारित्र धर्म की, **सद्दहइ (सद्दहाइ)** - श्रद्धा-प्रतीति करता है, **सो** - वह, **धम्मरुइ त्ति** - 'धर्मरुचि' है ऐसा, **णायव्वो**- जानना चाहिए ॥ २७ ॥

परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वा वि।
वावण्ण-कुदंसण-वज्जणा, य ॥ ॥

– **परमत्थसंथवो** – परमार्थ संस्तव – परमार्थ का परिचय करें अर्थात् जीवादि तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर उनका मनन करना, **वा** – और, **सुदिट्ठपरमत्थसेवणा** – सुदृष्ट परमार्थ सेवन-सम्यक् प्रकार से तत्त्वों के ज्ञाता आचार्य-उपाध्याय-साधु आदि की सेवा करना, **वा वि** – तथा, **वावण्णवज्जणा** – व्यापन्नवर्जन – जिसने सम्यक्त्व वमन कर दिया हो अर्थात् सम्यक्त्व से पतित हुए व्यक्तियों की संगति का त्याग करना, **कुदंसण** – कुदर्शन वर्जन – कुदर्शनियों (कुतीर्थियों की संगति) का त्याग करना। इन गुणों से **सम्मत्तसद्दहणा** – सम्यक्त्व श्रद्धान – इससे सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है और समकित की श्रद्धा की सुरक्षा होती हैं । सम्यक्त्व से पतित और कुदर्शनियों की संगति से सम्यक्त्व मलिन होती हैं. । इसलिए इनकी संगति का त्याग करना ही श्रेयस्कर हैं ये चार सम्यक्त्व की श्रद्धनां कहलाती हैं ॥ २८ ॥

णत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं, दंसणे उ भइयव्वं ।
सम्मत्त – चरित्ताइं, जुगवं पुव्वं व सम्मत्तं ॥ २९ ॥

– **सम्मत्तविहूणं** – सम्यक्त्व बिना, **चरित्तं** – चारित्र, **णत्थि**- होता, **उ** – और, **दंसणे** – सम्यक्त्व के होने पर भइयव्वं-चारित्र भजना है, **सम्मत्तचरित्ताइं** – सम्यक्त्व और चारित्र, **जुगवं** - युगपत् (एक साथ) भी हो सकते हैं, **व** – अथवा, **पुव्वं** – पहले, **सम्मत्तं** – सम्यक्त्व होता है और पीछे चारित्र होता है ॥ २९ ॥

विवेचन – सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर ही भाव चारित्र की प्राप्ति होती हैं। अतः समकित का बड़ा महत्त्व हैं। सभी जीव अनादि काल से मिथ्यादृष्टि ही हैं। जीव समदृष्टि पीछे ही बनता

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

है। मिथ्यादृष्टि के तीन भेद हैं - १. अनादि अपर्यवसित (आदि रहित और अंत रहित) ऐसा जीव अभवी होता है वह अनादिकाल से मिथ्यात्वी तो है ही उसके मिथ्यात्व का कभी भी अन्त नहीं होता। वह मिथ्यादृष्टि ही, बना रहता है। २. अनादि सपर्यवसित अर्थात् अनादि से मिथ्यादृष्टि तो है किन्तु उसके मिथ्यात्व का अंत आ जाता है ऐसा जीव भवी (भवसिद्धिक) होता है। ३. सादि सपर्यवसित अर्थात् किसी भवी जीव को औपशमिक अथवा क्षायोपशमिक समकित की प्राप्ति हुई किन्तु कालांतर में उसकी समकित चली गयी और मिथ्या दृष्टि बन गया फिर कालांतर में उसको समकित की प्राप्ति हुई । ऐसा जीव सादि सपर्यवसित मिथ्यादृष्टि कहलाता है। उसके गुणस्थान चढ़ने की चार मार्गणाएं हैं - पहले से तीसरे या चौथे या पांचवें या सातवें गुणस्थान में। पहले गुणस्थान से सीधा सातवें गुणस्थान में जाने वाले जीव को सम्यक्त्व और भाव चारित्र दोनों एक साथ प्राप्त होते हैं। किन्तु उसमें भी सम्यक्त्व की प्राप्ति पहले और भावचारित्र की प्राप्ति पीछे होती है। यही आशय इस गाथा में बतलाया गया है ।

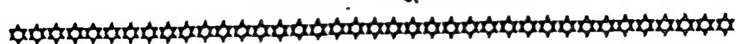
णादंसणिस्स णाणं,
णाणेण विणा ण हुंति चरणगुणा ।
अगुणिस्स णत्थि मोक्खो,
णत्थि अमोक्खस्स णिव्वाणं ॥ ३० ॥

- **अदंसणिस्स** - सम्यग् दर्शन (समकित) रहित पुरुष के, **णाणं** - सम्यग्ज्ञान, **ण** - नहीं होता, **णाणेण** - सम्यग्ज्ञान के, **विणा** - बिना, **चरणगुणा** - चारित्रगुण, **ण हुंति** - प्रगट नहीं होते, **अगुणिस्स** - चारित्रगुण-रहित मनुष्य का, **मोक्खो** - मोक्ष,

णत्थि - नहीं होता और, **अमोक्खस्स** - कर्मों से छुटकारा हुए बिना, **णिव्वाणं** - निर्वाण (सिद्धि पद) की प्राप्ति, **णत्थि** - नहीं होती हैं ॥ ३० ॥

णिस्संकिय, णिक्कंखिय,
णिव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य ।
उववूह-थिरीकरणे,
वच्छल्ल-पभावणे अट्ठ ॥ ३१ ॥

- १. **णिस्संकिय** - निःशंकित-वीतराग-सर्वज्ञ के वचनों में शंका न करना २. **णिक्कंखिय** - निष्कांक्षित-परदर्शन की आकांक्षा न करना अथवा सुख की आकांक्षा न करना और दुःख से द्वेष न करना, किन्तु सुख-दुःख को अपने किये हुए कर्मों का फल समझ कर समभाव रखना, ३. **णिव्वितिगिच्छा** - निर्विचिकित्सा-धर्म के फल में सन्देह न करना अथवा अपने ब्रह्मचर्य व्रत आदि व्रतों के पालन की दृष्टि से साधु साध्वियों का मैला शरीर और मैले कपड़े देख कर घृणा न करना, ४. **अमूढदिट्ठी** - अमूढदृष्टि-कुतीर्थियों को ऋद्धिशाली देख कर भी अपनी श्रद्धा को दृढ़ रखना, ५. **उववूह** - उपबृंहा-गुणीजनों को देख कर उनकी प्रशंसा करना एवं उनके गुणों की वृद्धि करना तथा स्वयं भी उन गुणों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना, ६. **थिरीकरणे**- स्थिरीकरण-धर्म से डिगते प्राणी को धर्म में स्थिर करना, **य** - और, ७. **वच्छल्ल** - वात्सल्य साधर्मियों के साथ वात्सल्यभाव रखना ८. **पभावणे** - प्रभावना-जैनधर्म की प्रशंसा और उन्नति के लिए चेष्टा करना, **अट्ठ** - ये आठ दर्शनाचार हैं ॥ ३१ ॥



सामाइयत्थ पढमं, छेओवट्ठावणं भवे बीयं ।
परिहारविसुद्धीयं, सुहुमं तह संपरायं च ॥ ३२ ॥
अकसायमहक्खायं, छउमत्थस्स जिणस्स वा ।
एयं चयरित्तकरं, चारित्तं होइ आहियं ॥ ३३ ॥

- अब चारित्र के भेदों का वर्णन किया जाता है :- **अत्थ** - अथ-इसके बाद चारित्र में, **पढमं** - पहला, **सामाइयं** - सामायिक, **बीयं** - दूसरा, **छेओवट्ठावणं** - छेदोपस्थापनीय, **परिहारविसुद्धीयं**- तीसरा परिहारविशुद्धि, **सुहुमं संपरायं** - चौथा सूक्ष्मसंपराय चारित्र है । **अकसायं** - कषाय के क्षय या उपशम से होने वाला, **अहक्खायं** - पाँचवाँ यथाख्यात चारित्र, **छउमत्थस्स** - ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ मुनि के, **वा** - अथवा **जिणस्स** - केवली भगवान् के, **भवे** - होता है । **एयं** - यह पाँचों प्रकार का, **चारित्तं**- चारित्र, **चयरित्तकरं** - चयरिक्त कर- संचित कर्मों के खजाने को रिक्त (खाली) करने वाला अर्थात् कर्मों का नाश करने वाला, **होइ** - है, **आहियं** - ऐसा जिनेन्द्र भगवान् ने फरमाया है ।। ३२-३३ ॥

विवेचन - इन पांच चारित्रों का विस्तृत रूप से वर्णन भगवती सूत्र के शतक २५ उद्देशक ७ में तथा ठाणांग सूत्र ५ उद्देशक २ में हैं । जिसका हिंदी अर्थ जैन सिद्धांत बोल संग्रह बीकानेर के प्रथम भाग में हैं ।

तवो य दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भंतरो तहा ।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भंतरो तवो ॥ ३४ ॥

- **तवो** - तप, **दुविहो** - दो प्रकार का, **वुत्तो** - कहा गया है,

बाहिरब्भंतरो तहा – बाह्य तप और आभ्यन्तर तप । **बाहिरो** - बाह्य तप, **छव्विहो** – छह प्रकार का, **वुत्तो** – कहा गया हैं, **एवं** - इसी प्रकार, **अब्भंतरो** – आभ्यन्तर, **तवो** – तप भी छह प्रकार का कहा गया हैं ॥ ३४ ॥

णाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्दहे ।
चरित्तेण णिगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ ॥ ३५ ॥

– आत्मा, **णाणेण** – ज्ञान से, **भावे** – पदार्थों को, **जाणइ** - जानता है, **दंसणेण** – दर्शन (सम्यक्त्व) से, **सद्दहे** – श्रद्धा करता है, **चरित्तेण** – चारित्र से, **णिगिण्हाइ** – आस्रव का निरोधरूप संवर करता है अर्थात् आते हुए कर्मों को रोकता है, **य** – और, **तवेण** – तप से, **परिसुज्झइ**–पूर्वकृत कर्मों का क्षय कर के शुद्ध होता है ॥ ३५ ॥

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ।
सव्वदुक्खपहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ॥
॥ ३६ ॥ त्तिबेमि ॥

– **महेसिणो** – महर्षि, मुनि महात्मा, **संजमेण** – संयम, **य** - , **तवेण** – तप से, **पुव्वकम्माइं** – पूर्वकृत कर्मों को, **खवित्ता**- कर के, **सव्वदुक्खपहीणट्ठा** – सभी दुःखों से रहित होने के लिए, **पक्कमंति** – ज्ञान दर्शन चारित्र में पराक्रम (पुरुषार्थ) करते हैं और उसके फलस्वरूप–सिद्धि गति प्राप्त करते हैं ॥ ३६ ॥ **त्तिबेमि** – ऐसा मैं कहता हूँ ।

।। अट्ठाइसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

उत्तराध्ययन सूत्र भाग २ सम्पूर्ण